जैन धर्म प्रकाश
The Key of Knowledge
सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थभाव विपरीतवृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव ॥
लेखक —
ब्र॰ शीतल प्रसाद

जैनधर्म प्रकाश

लेखक—

जैनधर्मभूषण, धर्मदिवाकर,

ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी

प्रकाशक—

परिषद् पब्लिशिंग हाउस, बिजनौर।

तृतीय संस्करण | सन् १९३९ ई० | न्यौछावर आठ आना
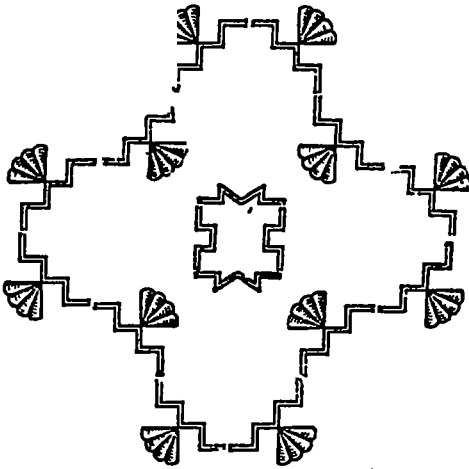
निवेदन

यह पुस्तक भारत दि० जैन परिषद् के प्रस्ताव नं० तीन मुजफ्फरनगर अधिवेशन (सन् १९२४) के अनुसार अपनी तुच्छ शक्ति से संकलन की है। इस पुस्तक में पंडित माणिक चन्द न्यायाचार्य जी ने कृपा करके अच्छी तरह पढ़कर जो अशुद्धियां बताईं, उनको यथास्थान ठीक कर दिया गया है। इस पुस्तक पर उन्होंने जो अपनी सम्मति दी है वह नीचे लिखी जाती है:—

"मेरी समझ में यह पुस्तक विशेष उपयोगी है। जैनधर्म के सिद्धांत को वर्त्तमान पद्धति से समझाने में लेखक महोदय ने कसर नहीं रक्खी। उनको, जैनधर्म का प्रसार और सच्चे मार्ग पर लोगों के आने की पवित्र भावना, पुस्तक में पद २ पर प्रतीत होती है। ऐसी पुस्तकों के प्रचार से खासा जैनधर्म का ठोस प्रचार होगा। मैं इस पुस्तक का हृदय से अभ्युदय चाहता हूं।"

आश्विन कृष्णा १५ सम्वत् १९८२	माणिकचन्द जैन, मोरेना (ग्वालियर)

इसका बहुत सा भाग राय बहादुर जगमन्दर लाल जैनी , एम० ए० लॉ मेम्बर इन्दौर व कुछ भाग विद्यावारिधि चम्पतराय

जी ने भी सुना है और पसंद किया है। उन्होंने जो त्रुटियां बताईं, उनको भी ठीक कर दिया गया है। पं० जुगलकिशोर जी को पुस्तक भेजी गई थी, परंतु आपको रचना पसंद न आई, इससे आपने विना शुद्ध किये वापिस करदी तथा न्यायाचार्य पंडित गणेशप्रसाद जी ने समयाभाव से देखना स्वीकार न किया है। हमने अपने हार्दिक भाव से पुस्तक का सङ्कलन जैन सिद्धान्तानुसार किया है। इस तीसरे संस्करण में यथावश्यक सुधार कर दिया गया है। तब भी जहां कहीं भूल हो, विद्वज्जन क्षमाभाव धारण करके सूचित करें, जिससे आगागी संस्करण में शुद्धि हो जावे।

अमरावती
फागुन सुदी ६
वीर सम्वत् २४५५

जैन समाज का सेवक—
ब्र० शीतलप्रसाद

* भूमिका *

भारतवर्ष में जैन लोग किसी समय सर्वत्र व्यापक थे। इनकी बहुत बड़ी संख्या थी जिसके प्रमाण के लिये पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर चहुं ओर हर एक प्रांत में खण्डित जिन मन्दिर और जिन प्रतिमा तथा शिलालेख के रूप में जैन स्मारक मौजूद हैं। सरकार के पुरातत्व-विभाग ने जो खोज की है उस से भी जैनियों का विस्तार व महत्व चमकता है; यद्यपि अभी रुपये में दो आने से कम खोज हुई है। यदि हजारों टीले जो अहिच्छत्र, कौसाम्बी, उड़ीसा आदि में बिना खोदे हुए पड़े हैं खुदाये जावें तो बहुत कुछ मसाला मिल सकता है।

पुरातत्व विभाग ने बौद्धों के स्मारकों को भी बहुत विस्तार के साथ प्राप्त किया है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि किसी समय भारत में बौद्धों का भी प्रभुत्व रहा था और उनके मानने वालो की एक बहुत बड़ी संख्या थी। परन्तु आज देखते हैं तो ब्रह्मा देश को छोड़कर पञ्जाब, युक्तप्रान्त, बम्बई, मालवा, मध्य-प्रदेश, बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा में, जहां बौद्धों के स्मारक बहुत अधिक हैं, अब बौद्ध मत के माननेवाले एक समुदाय रूप में नहीं दिखलाई पड़ते। न उनकी मूर्तियों की पूजा ही होती है। किन्तु अब भी भारतमें जैनी सर्वत्र फैलेहुए १२॥ लाख की संख्या में हैं व जिनके दर्शनीय मन्दिर जयपुर, इन्दौर, उज्जैन, खण्डवा,

सिवनी, जबलपुर, नागपुर, देहली, आगरा, कानपुर, लखनऊ, बनारस, प्रयाग, आरा, भागलपुर, गया, हज़ारीबाग, कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, फ़ीरोज़पुर, सहारनपुर, हाथरस, मथुरा, कोटा, झालरापाटन, बड़ौदा, अहमदाबाद, सूरत, बम्बई, शोलापुर, कोल्हापुर, बेलगांव, मैसूर, बङ्गलौर, श्रवणबेलगोल, हेलबिड, मूलबद्री, कांची, गिरनार, पालीताना, आबू आदि हज़ारों स्थानों पर मौजूद हैं। यहां ये जैन लोग नित्य भक्ति करते और धर्म साधन करते हैं।

बौद्धों का भारत में न रहना और जैनियों का बने रहना, इस प्रश्न पर यदि ध्यान से विचार किया जाय तो विदित होगा कि दोनों को हिन्दू धर्म के प्रसिद्ध प्रचारक शंकर, रामानुज, चैतन्य आदि का मुक़ाबला करना पड़ा था। इस मुक़ाबले में बहुत स्थलों पर बौद्धमत की हार हुई, क्योंकि उनके सिद्धान्त में आत्मा को स्पष्ट रूप से नित्य अविनाशी नहीं माना है। जैनमत की विजय हुई, क्योंकि जैन सिद्धान्त ने आत्मा की सत्ता को नित्य मानकर उसकी अवस्थाओं को मात्र क्षणिक या अनित्य माना है। हिन्दुओं के राज्यकीय बल के प्रभाव से बहुत से बौद्ध हिन्दुओं मे शामिल होगए—कुछ धीरे धीरे नष्ट होगए। यह राजकीय बल जैनियों की तरफ़ भी बहुत वेग से प्रयोग किया गया था, परन्तु जैनियों में अहिंसामयी नीतिपूर्ण वर्तन व व्यापार-कुशलता का इतना प्रभुत्व था कि जनता ने इन का सम्बन्ध नहीं छोड़ा व इनके सिद्धांत इतने मनमोहनीय

थे कि निष्पक्ष विद्वान् उनका आदर करते रहे तथा जैनधर्म के मानने वाले राजा लोग भी १७ वीं शताब्दी तक अपना महत्व जमाए रहे। इस कारण जैनी भारतवर्ष में बराबर डटे रहे। तो भी प्रभावशाली हिन्दू नेताओं के द्वारा लाखों जैनी जैनधर्म छोड़ बैठे। जैसे वासवाचार्य ने धाड़वाड़, बेलगांव की तरफ लाखों जैनियों को लिंगायत बना डाला।

हिंदुओं का इतना विरोध बौद्ध और जैनियों से इस कारण रहा कि ये दोनों वर्तमान प्रचलित ऋग्वेदादि वेदों को नहीं मानते हैं और न ईश्वर को जगत् का कर्ता मानते हैं तथा दोनों हिंसा का निषेध करते हैं। पशुओं की बलि का, जो हिंदू मत के ब्राह्मण यज्ञों द्वारा करते थे व जो अब भी देवी देवताओं के सामने करते हैं, जैन और बौद्ध दोनों ही इसका घोर विरोध करते रहे तथा जिस ढङ्ग से हिन्दू ब्राह्मणों ने करोड़ों देवी देवताओं की स्थापना कर रक्खी है उस का भी विरोध करते रहे। ब्राह्मणों की अवस्था बहुत काल पहिले तो बहुत संतोषरूप सात्विक रही तथा तब उनमें से अनेक जैनधर्म के पालने वाले थे। अब भी मैसूर प्रान्त में २००० से अधिक जैन ब्राह्मण हैं। परन्तु पीछे लोभ की मात्रा बढ़ने से उनको जितनी इच्छा पैसे कमाने की हुई, उतनी इच्छा धर्मप्रचार को न रही। तब ब्राह्मणों ने जैनियों को नास्तिक प्रसिद्ध करना प्रारम्भ किया और यह श्लोक बनाकर प्रचार किया कि—

"नपठेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
हस्तिनापीड्यमानोपि न गच्छेज्जिनमन्दिरम् ॥"

अर्थात्—म्लेच्छ भाषा पढ़ने और जैनधर्म के विरोध में यह शिक्षा फैलाई कि "प्राण भी जाते हो तो भी म्लेच्छों की भाषा न पढ़ो और हाथी से पीड़ित होने पर भी जैन मन्दिर में (प्राण रक्षार्थ) न जाओ।" इस विरोधी भाव के प्रचार का असर अब भी करोड़ों हिन्दुओं में मौजूद है जो अब भी जैनमन्दिरों में पग रखते हुए डरते हैं और जैनियों को नास्तिक मान कर उन को नास्तिक कहते हैं व कहीं २ कभी २ उनके रथोत्सवादि धर्म-कार्यों तक का बहुत बड़ा विरोध कर देते हैं।

कुछ अङ्गरेज लोगों ने जब भारत का इतिहास लिखना प्रारम्भ किया, तब उन्हीं ब्राह्मणों से यह जानकर कि बौद्ध और जैन नास्तिक हैं व हिंसा के विरोधी हैं व वेद को नहीं मानते हैं, दोनो को एक कोटि में रख दिया और इस कारण से कि बौद्धों के साहित्य का बहुत प्रचार था तथा भारत के बाहर बौद्धमत के अनुयायी करोड़ों हैं, इसलिये उन्होंने बिना परीक्षा किये लिख दिया कि जैनमत बौद्धमत की शाखा है। किसी ने लिख दिया कि यह जैनमत ६०० सन् ई० से चला है जब कि बौद्धमत घटने लगा था; इत्यादि।

इस पुस्तक के लिखने का मतलब यह है कि 'जैनधर्म क्या वस्तु है?' इसका यथार्थ ज्ञान मनुष्यसमाज को होजावे और वे समझ जावें कि इसका सम्बन्ध पिता पुत्र के समान न बौद्धमत

से है न हिन्दूमत से है, किन्तु यह एक स्वतन्त्र प्राचीन धर्म है जिसके सिद्धांत की नींव ही भिन्न है।

साहित्य प्रचार के इस वर्तमानयुग मे भी अब तक जैन-धर्म का ज्ञान और उसका वास्तविक रहस्य साधारण जनता को न हुआ, इसके निम्नोक्त दो मुख्य कारण हैं:—

(१) वेदानुयायी हिंदुओ का सैकड़ों वर्षों या सैकड़ो पीढ़ियों से यह मानते चले आना कि जैनधर्म नास्तिकों अर्थात् ईश्वर-को न मानने वाले वेदविरोधियो और घृणितकर्म करने वालो का एक घृणित मत है, उसमे तथ्य कुछ नहीं है, उनके मन्दिरों मे जाना व उनके नास्तिकतापूर्ण ग्रन्थों का पढ़ना या उनका उपदेश सुनना और उनकी अश्लील नंगी मूर्तियों का देखना महापाप है, इत्यादि।

(२) श्री शङ्कराचार्य व श्री रामानुजाचार्यादि के समय में तथा महमूद ग़ज़नवी आदि के आक्रमण काल मे धर्म-विरोधियों की द्वेषाग्नि ने बहुतसा जैन साहित्य नष्ट किया। तब जैनियों ने अपने बचे हुए साहित्य की रक्षार्थ अपने ग्रन्थों को तहखानों व भंडारों मे छिपा कर रखा। उस समय उन्होंने यह ठीक ही किया, परन्तु सैकड़ों वर्षों तक उन भंडारो को न खोलने से व ग्रन्थों को धूप न दिखाने से हजारो ग्रन्थ दीमकों के भक्ष्य बन गये। इसमे जैनों की कुछ तो अदूरदर्शिता, कुछ प्रमाद और कुछ वर्तमान समय की लोकस्थिति की अनभिज्ञता, ये तीन मुख्य कारण हैं। इसी से जैन साहित्य का बहु भाग आज तक भी अप्रकाशित पड़ा रहने से और जैनधर्म का रहस्य जानने की

अभिलाषा रखनेवालों तक के हाथोंमें जैन दार्शनिक ग्रन्थ पहुँचाए जाने का कोई सुभीता न होने से जैन साहित्य का यथेष्ट प्रचार नहीं हो पाता। यद्यपि जैन ग्रंथों में जैन दर्शन बहुतायत से विद्यमान है, तथापि वह इतना विस्ताररूप से अनेक ग्रन्थों में है कि जब तक भिन्न २ विषय के १०-२० ग्रथ न पढ़े जावें तब तक जैनदर्शन का आभास नहीं झलकता। साधारण जनताके लिये, जो जैनधर्म को तुच्छ, नास्तिक व अनीश्वरवादी समझ रही है, बहुत से ग्रंथों का परिश्रम करके पढ़ना, सम्भव नहीं है। इसलिये इस छोटीसी पुस्तक में सर्व साधारण के लाभ के लिये जैन दर्शन की जानने योग्य बहुतसी बातों को बता दिया गया है और यह आशा की जाती है कि जो इस पुस्तक को आदि से अन्त तक पढ़ जावेंगे उनको स्वयं यह रुचि पैदा हो जायगी कि हम जैन ग्रन्थों को देखें और लाभ उठावें।

कोई समय ऐसा था कि जब भारत में परस्पर भिन्न २ धर्मों में घृणा न थी। सब प्रेम से बैठकर वार्तालाप करते थे व जिसको जो रुचता था वह उसी को पालने लगता था। पिता पुत्र, पति-पत्नी व भाई २ का धर्म भिन्न २ रहता था, तौ भी सामाजिक प्रेम व आपस के बर्ताव में कोई अन्तर नहीं पड़ता था। तब एक धर्मवाले दूसरे धर्म के सम्बन्ध में मिथ्या आरोप नहीं लगाते थे। जिसकी जो २ मान्यता थीं, उन्हीं मान्यताओं को लेकर और उन पर ही सद्भाव से तर्क वितर्क करके खण्डन या मण्डन किया करते थे।

वर्तमान मे भी प्राय: सत्य खोज का भाव लोगो में बढ़ रहा है और लोग मिथ्या आरोपों से घृणा करने लगे हैं तथा विद्वान् लोग सब ही धर्मों के सिद्धान्तों को सुनना व जानना चाहते हैं। ऐसे समय मे जैनियो का कर्तव्य है कि वे अनेक नवीन ढङ्ग की पुस्तकों से तथा व्याख्यानों से अपने जैनधर्म का सच्चा स्वरूप जनता को बतलावें। इसी आशय को लेकर यह पुस्तक संक्षेप में लिखी गई है। उन लोगो के लिये जिनके चित्त मे जैनधर्म से अज्ञान है, हम उनके अज्ञानभाव को हटाने के लिये इस भूमिका में थोड़ा सा प्रयास इसलिये करते हैं कि वे भाई भी हमारी भूमिका पढ़कर अज्ञान छोड़कर जैनधर्म को जानने के उत्सुक हो जावें।

जैनी नास्तिक हैं—क्योंकि हमारे वेदों को नहीं मानते, यह कहना तो वैसा ही है जैसा जैनी या ईसाई या मुसलमान कह सकते हैं कि जो हमारे शास्त्र को न माने—वही नास्तिक या काफ़िर है। जब भिन्न २ मत हैं तब एक मत के धारी दूसरे के मत के शास्त्र को अपनी मान्यता की कोटि मे किस तरह रख सकते हैं ? जैनी नास्तिक हैं, क्योंकि वे ईश्वर को नहीं मानते हैं, यह बात विचारणीय है। जैन लोग परमात्मा को या ईश्वर को मानते हैं, परन्तु वे किसी एक ईश्वर को कर्ता व दुःख सुख का फलदाता नहीं मानते, जैसा मीमांसक व सांख्य ईश्वर को जगत् का कर्ता नहीं मानते। भगवद्गीता में ही एक स्थल में (अध्याय ५ श्लोक १४, १५ में) कहा है कि—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्म फल संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥
नादत्ते कस्य चित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥

अर्थात्—ईश्वर जगत् के कर्तापने को या कर्मों को नहीं बनाता है और न कर्म फल के संयोग की व्यवस्था ही करता है, मात्र स्वभाव काम करता है—परमात्मा न किसी को पाप का फल देता है न पुण्य का; अज्ञान से ज्ञान ढका है, इसी से जगत् के प्राणी मोही हो रहे है ।

बस यही मान्यता जैनियों की भी है। वे कहते हैं कि ये जीव आपही अपने भावों से पाप पुण्य कर्म बांध लेते हैं व आप ही उनका फल भोग लेते है; जैसे कोई प्राणी आप ही मदिरा पीता है, आपही उसका बुरा फल भोगता है । परमात्मा इन प्रपंच जालो में नहीं पड़ता—यदि वह जगत् के प्रपंच में बुद्धि लगावें तो नित्य सुखी व तृप्त व कृतार्थ नही रह सकता है । जैन लोग जगत् को अनादि अनंत मानते हैं और कहते हैं कि यह जगत् चेतन अचेतन पदार्थों का समुदाय है । जब यह पदार्थ मूल मे सदा से हैं व सदा रहेंगे, तब यह जगत भी सदा से है व सदा रहेगा—सत् का विनाश नहीं, असत् का जन्म नहीं । कहा है कि—Nothing is destroyed nothing is created अर्थात्—'न कुछ नष्ट होता है न बनता है', केवल अवस्थाएं बदलती है। यह जो वैज्ञानिक मत ('Scientific view) है,

वही जैनियों का मत है। परमात्मा या परमपद का धारी परम आत्मा, इच्छारहित, कृतकृत्य, शरीररहित व करने कराने के विकल्पों से रहित है। इससे वह न जगत को बनाता है न बिगाड़ता है। जगत् में बहुत से काम तो बिना चेतन के निमित्त बने हुये केवल योंही जड़ निमित्तों के मिल जाने से होते हैं; जैसे मेघ बनना, पानी बरसना आदि। बहुत से कामों को संसारी अशुद्ध जीव निरन्तर किया करते हैं। जैसे घोंसला बनाना आदि। शुद्ध प्रभु इन झगड़ों में नहीं पड़ता है।

जैन लोग परमात्मा को मानते हैं, इसीलिये वे पूजा व भक्ति अनेक प्रकार से करते हैं। उनका जो प्रसिद्ध मन्त्र है उस का पहला पद ही परमात्मा को नमस्कार वाचक है, जैसे "णमो अरहंताणं"। जैन लोग आत्मा, परमात्मा, पुण्य, पाप, यह लोक, परलोक, पुण्य-पाप का फल, सुख, दुःख, संसार व मोक्ष मानते हैं। इसलिये उनको नास्तिक कहना बिलकुल अनुचित है। जैनियों के मन्दिरों में कोई ऐसी बात नहीं है, जिससे कोई हानि हो सके, यदि कोई निर्मल दृष्टि से देखेगा तो उसको जैन मन्दिरों में बहुत अधिक शांति और वैराग्य का दृश्य मिलेगा।

आप किसी भी जैन मन्दिर में चले जाइये, वहां वेदी पर उन महान पुरुषों की ध्यानमई मूर्तियां मिलेंगी, जो परमात्मापद पर पहुँचे हैं। इनको तीर्थंकर कहते हैं। उनके दर्शन से सिवाय शान्ति और वैराग्य के कोई और भाव दर्शक के चित्त में हो ही नहीं सकता है। भगवद् गीता अ० ६ में जिस योगाभ्यास की

मूर्ति का वर्णन किया है वैसी ही मूर्ति जैन मन्दिरों में होती है।

लिखा है कि: –

समंकाय शिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥१३॥
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रतेस्थितः।
मनः संयम्य मच्चितो युक्त आसीत मत्परः ॥१४॥
युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियत मानसः।
शांतिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥१५॥

भावार्थ—शरीर, मस्तक और गर्दन सीधी रख, निश्चल हो इधर उधर न देखते हुए, स्थिर मन से नासिका के अग्रभाग के ऊपर अच्छी तरह दृष्टि रख, अन्तःकरण को अति निर्मल बनाकर निर्भय हो, ब्रह्मचर्यव्रत युक्त रह मन को संयम मे कर, मेरे (प्रभु के) ऊपर चित्त लगावे, मेरे मे लीन हो जावे। इस तरह जो योगी सदा निश्चल मन हो अपने आत्मा को जोड़ता है, वह परम शांतिरूप निर्वाण को (जो मेरे ही मे है) पाता है।

योगाभ्यास का आदर्श जैनमूर्ति हैं, जिनके दर्शन से 'संसार तुच्छ व मोक्ष श्रेष्ठ है' ऐसा भाव हो जाता है। इस के सिवाय जैन मन्दिर में इधर उधर साधुओ के व उन महान पुरुषों व स्त्रियों के चित्र मिलेंगे जिन्होंने कोई उत्तम कार्य किया था। शास्त्रों की भरी हुई अलमारी मिलेगी। जप करने की मालायें मिलेंगी—वहां प्रायः धर्मसाधन के ही पदार्थ रहते हैं।

बौद्धमत का सिद्धान्त जैनमत के समान स्पष्ट नहीं है। जैनमत का सिद्धान्त है कि पदार्थ स्वभाव से नित्य है, परन्तु अवस्थाओं को बदलने की अपेक्षा क्षणभंगुर है। बौद्धमत के संस्थापक गौतम बुद्ध थे, जो जैनमत के चौबीसवें तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी के समय में हुए थे। उस समय ही परस्पर जैन और बौद्धो में संवाद हुये। कुछ बौद्ध साधुओं ने जैनियों के पास जाने की भी मनाई की, ऐसा कथन बौद्ध ग्रन्थों में है। बौद्ध स्वयं जैनमत को भिन्न मत कहते हैं। जैन गृहस्थों को कड़ी आज्ञा है कि वे किसी भी तरह का मांस का आहार न करें। मांस न खाना उनके चरित्र के आठ मूल गुणों में से एक है जब कि बौद्धों के यहां गृहस्थों को मांसाहार के त्याग की कड़ी आज्ञा नहीं है—वे स्वयं मरे हुए पशु का मांस लेने मे दोष नहीं समझते हैं। इसी से सीलोन व ब्रह्मा में करोड़ों बौद्ध मांसाहारी हैं, जब कि जैन कोई भी प्रगटपने से मांसाहारी न मिलेगा। इसलिये जैनमत-बौद्धमत की शाखा है, यह कथन ठीक नहीं है और न यह हिन्दूमत की ही शाखा है। क्योंकि सांख्य मीमांसादि दर्शनों से इसका दार्शनिक मार्ग भिन्न ही प्रकार का है, जो इस पुस्तक के पढ़ने से विदित होगा।

जैनमत की शिक्षा सीधी और वैराग्यपूर्ण है। हर एक गृहस्थ को निम्न छः कर्म नित्य करने का उपदेश है:—

(१) देवपूजा, (२) गुरु भक्ति, (३) शास्त्र पढ़ना, (४) संयम (Self control or temperance) का अभ्यास,

(५) तप (सामायिक या संध्या या ध्यान या meditation),
(६) दान (आहार, औषधि, अभय तथा विद्या)।

उनको निम्न आठमूल गुणोंके पालने का उपदेश भी है:—

मद्य मांस मधु त्यागैः सहाणुव्रत पंचकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहीणां श्रमणोत्तमाः ॥

अर्थात्—मद्य या नशा न पीना, मांस न खाना, मधु यानी शहद न खाना, क्योंकि इनमें बहुत से सूक्ष्म जन्तुओं का नाश होता है; पांच पापो से बचना अर्थात् जान बूझकर वृथा पशु पक्षी आदि की हिंसा न करना, झूठ न बोलना, चोरी न करना, अपनी स्त्री में संतोष रखना, परिग्रह या सम्पत्ति की मर्यादा कर लेना जिससे तृष्णा घटे। इनका गृहस्थों के आठ मूलगुण उत्तम आचार्यों ने बतलाया है।

हमारे जैनेतर भाई देख सकते हैं कि यह शिक्षा भी हर एक मानव को कितनी उपयोगी है। यद्यपि और धर्मों में भी अहिंसा तथा दया का उपदेश है व मांसाहार का निषेध है, परन्तु उनका आचरण जैनियों के सदृश नहीं है। कारण यही है कि कहीं २ उनके पीछे के टीकाकारों ने इस उपदेश मे शिथिलता करदी है। हिन्दूमत में मनुस्मृति के कई श्लोको मे मांसाहार का निषेध है। जैसे—

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥

—श्लोक ४८ अ० ५

अर्थात्—बिना प्राणियों के वध किये मांस नहीं होता, वध करना स्वर्ग का कारण नहीं, इससे मांस न खावे; परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि करोड़ों हिन्दू मांस खाते हैं, क्योंकि उसी मनुस्मृति में अन्यत्र मांसाहार की पुष्टि भी है। ईसाइयों के यहां नीचे के वाक्यों में मांस खाना निषिद्ध बतलाया है, तब भी लाखों में दो चार ही मांस के त्यागी हैं:—

Behold I have given you every herb, bearing seed, which is upon the face of all the earth, and every tree in which is the fruit of a tree yielding-seed, to you it shall be meat (Genesis chap. 129)

भावार्थ—देखो मैंने तुमको बीज से पैदा होने वाले हर एक सागपात जो पृथ्वी भर पर दीखते हैं और फल देने वाले वृक्ष जिनसे बीज भी मिलते हैं, दिये हैं। यही तुम्हारे लिये भोजन होगा। और भी कहा है—

St. Paul says—It is good neither to eat flesh not to drink wine, nor anything whereby thy brother stumbleth or is made weak

(Romans 14—21)

भावार्थ—सेन्टपाल कहते हैं कि—न मांस खाना ठीक है, न शराब पीना ठीक है और न कोई ऐसा काम करना चाहिये जिससे तेरा भाई कष्ट में पड़े या निर्बल हो।

(रोमन्स १४-२१)

मुसलमानों ने भी मांसाहार का निषेध कावे की पवित्र भूमि के लिये तो अवश्यही किया है। क्योंकि उनकी पवित्र जगह मक्का मे जो कोई जाता है उसे मांस नहीं खाना होता है। जैनियों के आचरण का इतना महत्त्व है कि सरकारी जेल की रिपोर्टों में औसत दर्जे सब जातियों से कम जैन अपराधी है। सन् १८९१ की बम्बई प्रान्त की जेल रिपोर्ट इस तरह है:—

धर्म	कुल आबादी	जेलके क़ैदी	कितने पीछे एक
हिन्दू	१४६५७१७९	६७१४	१५०८ में से एक
मुसलमान	३५०१६१०	५७९४	६०४ में से एक
ईसाई	१५८७६५	३३३	४७७ में से एक
पारसी	७३९४५	२९	२५४९ में से एक
यहूदी	९६३९	२०	४८ में से एक
जैनी	२४०४३६	३९	६१६५ में से एक

सन् १९२०, १९२२, १९२३ के क़ैदियों का ब्यौरा नीचे प्रकार है:—

धर्म	१९२०	१९२२	१९२३
हिन्दू	११२५४	९०८२	८१३४
मुसलमान	७२७३	६९२२	७२०५
ईसाई	३६७	२७५	३२०
जैनी	५१	३४	२५

सन् १९२१ का हिसाब निम्न प्रकार है, जिससे प्रगट होगा कि सन् १९२१ में जैनी १। लाख में एक ही कैदी हुआ है। यह जैन गृहस्थों पर जैनचारित्र की छाप का प्रभाव है :—

धर्म	कुल आबादी	जेल के क़ैदी	कितने पीछे एक
हिन्दू	२१०३७८०८	११३५८	१८५४ मे से एक
मुसलमान	४६१५७७३	७१८२	६३२ में से एक
ईसाई	२७६७६५	३४६	७६४ में से एक
जैन	४८१३४२	४	१२०३३२ में से एक

जैनियों के पांच व्रतों में २५ दोष न लगने चाहियें। इस उपदेश को जो मानेगा उसको सरकारी पेनलकोड कानून की कोई भी फ़ौजदारी दफा नहीं लग सकती। यह कितना सुन्दर उपदेश गृहस्थो केलिये है। वे २५ दोप नीचे लिखे प्रमाण हैं :—

अहिंसाव्रत के पांच—अन्याय मे पीटना, बंदीमें डालना, अङ्ग छेदना, अधिक बोझा लादना, अन्न पान रोक देना।

सत्यव्रत के पांच—मिथ्या उपदेश देना, किसी गृहस्थ का गुप्त रहस्य कहना, झूठा लेख लिखना, अमानत को झूंठ कह कर लेना, गुप्त सम्मतियों को इशारों से जानकर प्रगट करना।

अचौर्यव्रत के पांच—चोरी का उपाय बताना, चोरी का माल लेना, राज्यविरुद्ध महसूल चुराना या नीति विरुद्ध लेन देन करना, कमती बढ़ती तौलना-नापना, खोटी वस्तु को खरी कहकर बेचना या खरी में खोटी मिलाकर खरी कहना।

ब्रह्मचर्य व्रत के पाँच—अपने कुटुम्ब की संतान के सिवाय दूसरे के विवाह शादी कराने की चिंता में पड़ना, वेश्या के साथ सम्बन्ध रखना, व्यभिचारिणी या दूसरे की स्त्री के साथ राग करना, काम के मुख्य अङ्ग को छोड़ अन्य अङ्गों से काम चेष्टा करना, काम की तीव्र लालसा रखनी।

परिग्रह प्रमाण व्रत के पांच—गृहस्थ जन्म भर के लिये क्षेत्र मकान, धन धान्य, सोना चांदी, दासी दास, कपड़ा बर्तन, इन १० वस्तुओं का प्रमाण करता है—१० के पांच जोड़े हुए; हर एक जोड़े में एक को बढ़ाकर दूसरे को कम कर लेना, यह ही पांच दोष हैं।

जो गृहस्थ इन बातो पर ध्यान रक्खेगा, उसका नैतिक चारित्र राजा प्रजा को हितकारी होगा। महाराज चंद्रगुप्त मौर्य जैन के नीतिपूर्ण राज्य व उसकी आदर्श प्रजा का वर्णन यूनानी विद्वानों ने अपनी पुस्तकों मे बड़ी प्रशंसा के साथ लिखा है। उन्होंने एक स्थल पर लिखा है कि—

"भारतवासियों का व्यवहार बहुत सरल था। यज्ञ को छोड़कर वे मदिरा कभी नहीं पीते थे। लोगो का व्यय इतना परिमित था कि वे सूद पर ऋण कभी नहीं लेते थे। व्यवहार के वे लोग बहुत सच्चे होते थे—झूँठ से उन लोगों को घृणा थी। आपस में मुकदमे बहुत कम होते थे। विवाह एक जोड़े बैल देकर होता था। सब लोग आनंद से अपना जीवन व्यतीत करते थे। शिल्प वाणिज्य की अच्छी उन्नति थी। राजा और

प्रजा में विशेष सद्भाव था। राजा अपनी प्रजा के हित-साधन मे सदैव तत्पर रहता था। प्रजा भी अपनी भक्ति से राजा को संतुष्ट किये हुए थी।" (चंद्रगुप्त मौर्य पृ० ७५ जयशङ्कर प्रसाद)

इस विषय का विशेष कथन Ancient India by Magasthenese में इस प्रकार दिया है कि "लोग पवित्र वस्तु व जल लेते थे, अनेक धातुओं को जमीन से निकाल कर वस्तुयें बनाते थे, किसानों को पवित्र समझा जाता था, युद्ध के समय में भी कोई शत्रु उनको कष्ट न देता था, सब कोई अपने ही वर्ण में विवाह करते थे व अपने पुरुषों का व्यवसाय करते थे। विदेशियों की रक्षा का पूर्ण प्रबंध था। वे अपने माल को विना रक्षक छोड़ देते थे। वे यद्यपि सादगी से रहते थे, तथापि उस समय स्वर्ण और रत्नों के पहनने का बहुत रिवाज था। सत्य और धर्म की बड़ी ही प्रतिष्ठा करते थे (Truth & Virtue they held alike in esteem)। दाल चावल खाने का अधिक रिवाज था। विद्वानों और तत्वज्ञों को राजद्वार में बड़ी प्रतिष्ठा थी।"

जैनियों को यह उपदेश है कि छान कर पानी पिओ, यह बड़ा ही उपयोगी है। इसके द्वारा पानी में जो कीड़े होते हैं उनकी रक्षा होती है और साथ ही अपने शरीर की भी रक्षा होती है अर्थात् जो रोगी कीड़े रोग कर सकते थे, वे उदर में नहीं जा सकते हैं।

जैनधर्म ने स्वतंत्रता की शिक्षा निम्न श्लोक में दी है:—

नयत्यात्मानमात्मैव जन्मनिर्वाणमेव वा ।
गुरुरात्मात्मनस्तस्मान्नान्योऽस्ति परमार्थतः ॥ ७ ॥

—समाधिशतक

भावार्थ—यह आत्मा स्वयं ही आपको चाहे संसार में ले जावे व चाहे निर्वाण में ले जावे। इसलिये वास्तव में आत्मा का गुरु आत्मा ही है। इस शिक्षा का भाव यह है कि यह आत्मा अपने ही परिणामों से पाप या पुण्य को बांध कर तथा आप अपने शुद्ध भावों से पापों का नाश कर व पुण्य को शीघ्र भोगकर मुक्त हो जाता है। जैन लोग जो परमात्मा को भक्ति व पूजा वंदना करते हैं वह मात्र इसीलिये कि अपने भावों को निर्मल किया जावे, न कि इसलिये कि किसी परमात्मा को प्रसन्न किया जावे। जैसा कहा भी है कि—

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे,
न निन्दया नाथविवान्तवैरे ।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः,
पुनातु चित्तं दुरितांजनेभ्यः ॥

—(स्वयम्भूस्तोत्र)

भावार्थ—भगवन्! आप वीतराग हैं, आपको हमारी पूजा से कोई सरोकार नहीं, आप वैर रहित हैं, आपको हमारी निंदा से कोई दुःख नहीं, तब भी आपके पवित्र गुणों का स्मरण हमारे मन को पाप के मैलों से पवित्र करता है।

जैनसिद्धांत कहता है कि अहिंसा ही परम धर्म है और

अहिंसा के दो भेद हैं—एक भाव अहिंसा, दूसरा द्रव्य-अहिंसा। राग, द्वेष, मोहादि भावों का न होना भाव अहिंसा है। जैसा कहा है कि—

> अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
> तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः॥ ४४॥
>
> —पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय

भावार्थ—निश्चय से राग द्वेषादि भावों का न होना अहिंसा है व उनका होना ही हिंसा है, यह जैनशास्त्र का सार है। भावहिंसा होकर अपने या दूसरे के द्रव्य प्राणों (शरीर के अङ्गादिकों)-का घात करना सो द्रव्य हिंसा है। इसका पूर्णतया पालन वे साधु ही कर सकते हैं जो वैरागी हैं, जिनके उत्तम-क्षमा है, जो समदर्शी हैं, जिनको कष्ट दिये जाने पर भी द्वेष नहीं होता है, वे पृथ्वी देखकर चलते हैं, सब तरह की घास आदि को भी कष्ट नहीं पहुंचाते हैं। गृहस्थी लोग "इस आदर्श पर पहुंचना चाहिये" ऐसा ध्यान में रखकर यथाशक्ति अहिंसा का अभ्यास करते हैं। वे अपनी २ पदवी में रहकर उस पदवी के योग्य कार्यों में बाधा न आवे, ऐसा ध्यान में रखकर वर्त्तन करते हैं। इस भेद को समझने के लिये हिंसा के निम्न चार भेद हैं:—

१. **सङ्कल्पी** (intentional)—जो हिंसा के ही इरादे से की जावे। जो मांसाहार के लिये व धर्म के नाम से व शौक से पशु मारते हैं वे संकल्पी हिंसा करते हैं। जैसे शिकार खेलना, पशु को बलि देना, कसाईखाने में बध करना।

२. उद्यमी—जो क्षत्री, वैश्य, शूद्र के असि (राज्य व देश रक्षा), मसि (लिखना), कृषि, वाणिज्य, शिल्प व विद्या कर्म में होती है।

३. आरम्भी—जो गृहस्थ में मकान आदि बनवाने, 'खान-पानादि के व्यवहार में होती है।

४. विरोधी—किसी विरोधी या शत्रु के साथ मुक़ाबला करते हुये जो हिंसा हो।

इनमें से एक साधारण गृहस्थ जैन को संकल्पी हिंसा छोड़नी आवश्यक है। शेष तीन प्रकार की हिंसा तब तक त्याग नहीं कर सकता, जबतक गृहकर्म में लीन है, राज्य करता है, व्यापार करता है, कारीगरी करता है, स्त्री बच्चों व धन की रक्षा करता है; बिना न्यायरूप प्रयोजन के व अत्यन्त लाचारी के युद्धादि क्रिया जैन गृहस्थ नहीं करते हैं अर्थात् न्याय व अपने देश धनादि के रक्षार्थ जैन गृहस्थ युद्धादि कर सकते हैं।

इस कथन से पाठकगण समझ सकते हैं कि जैनमत ऐसा impractical नहीं है जो पाला न जा सके। इसको नीच ऊँच स्थिति के सर्व ही मनुष्य पाल सकते हैं।

इस जैनधर्म का साहित्य बहुत विस्ताररूप में है, इसमें हज़ारों प्राकृत व संस्कृत के ग्रन्थ हैं। जिनमे प्रायः सर्व ही विषय कहे गये हैं। राजनीति, व्याकरण, न्याय, गणित, ज्योतिष, दर्शन, काव्य, अलङ्कार, मंत्रवाद, कर्मकांड, अध्यात्म आदि अनेक विषयों के बहुत से ग्रन्थ हैं। साधारणतया जैनधर्म का

ज्ञान होने के लिये ग्रन्थों के निम्न चार भाग बताये हैं। इनको चार वेद भी कहते हैं :—

१. प्रथमानुयोग—इस विभाग मे उन महान् पुरुषो व स्त्रियो के जीवनचरित्र हैं, जिन्होंने आत्मकल्याण किया था व जो आगे करेंगे। इस कल्प में इस भरतक्षेत्र मे ६३ महापुरुष हो चुके हैं। उनका संक्षिप्त वर्णन हमने इस पुस्तक मे दे दिया है। इन्हीं मे श्री ऋषभदेव, श्रीअरिष्टनेमि, श्रीपार्श्व, श्री महावीर, श्रीरामचंद्र, श्रीकृष्ण, आदि गर्भित हैं। विस्तार से जानने के लिये महापुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण आदि देखने योग्य हैं।

२. करणानुयोग—इस विभाग मे इस विश्व का नक्शा व माप व विभाग वर्णित हैं। स्वर्ग, नर्क कहां हैं? मध्यलोक कहां है? वहाँ क्या २ रचना रहा करती हैं? इस सम्बन्ध का वर्णन देखने के लिये त्रिलोकसार ग्रंथ, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि पढ़ने योग्य हैं।

३. चरणानुयोग—इसमे यह कथन है कि गृहस्थ व गृहत्यागी साधु को क्या २ धर्माचरण पालना चाहियें। इसका दर्शन इस पुस्तक में आवश्यकतानुसार कराया गया है। विशेष जानने वालों को मूलाचार, रत्नकरण्डश्रावकाचार, चारित्रसार, पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय आदि ग्रंथ देखने चाहियें।

४. द्रव्यानुयोग—इसमें सर्व तत्त्वज्ञान है व अध्यात्म कथन है, जैन लोग इस जगत को जिन छः मूल द्रव्यों का समु-

दाय मानते हैं, उन्हीं का विवेचन है। वे छः द्रव्य—[१] जीव (Soul), [२] पुद्गल (matter), [३] धर्मास्तिकाय (medium of motion), [४] अधर्मास्तिकाय (medium of rest), [५] आकाश (space), [६] काल (time) हैं। जीव और पुद्गल का मेल तो संसार है। इन दोनों का अलग होना सो मोक्ष है। पुद्गल जीव के साथ कैसे मिलता है व छूटता है, इस कथन को बताने के लिए जैन दर्शन ने निम्न सात तत्त्व गिनाए हैं:—१. जीव (soul), २. अजीव (non-soul), ३. आस्रव (पुद्गल का आना inflow of matter into soul), ४. बन्ध (पुद्गल का बंधना bondage of matter with soul), ५. संवर (पुद्गल का आते हुए रुकना check of inflow), ६. निर्जरा (पुद्गल का जीव से छूटना shedding off of matter), ७. मोक्ष (स्वतन्त्रता total liberation from matter) ।

इन सात तत्वों के विवेचन में सर्व जैन सिद्धांत आजाता है। इस पुस्तक में छः द्रव्य और सात तत्त्वों का जानने योग्य वर्णन किया है। विशेष जानने के लिये द्रव्यसंग्रह, तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, गोम्मट्टसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, परमात्माप्रकाश, समाधिशतक, इष्टोपदेश, ज्ञानार्णव आदि ग्रन्थ देखने योग्य है।

जिन पाश्चिमात्य विद्वानों ने थोड़ा भी जैनमत को और मतों से मुकाबला करते हुए पढ़ा है, उन्होंने इसके सम्बन्ध में अपने उच्च विचार प्रकट किये हैं।

पेरिस (फ्रांस) के बहुत उच्चकोटि के विद्वान् डाक्टर ए० गिरिनाट (Dr. A. Guernot) साहब ता० ३ दिसम्बर १९११ के पत्र मे कहते हैं:—

Concerning the antiquity of Jainism comparatively to Budhism, the former is truly more ancient than the latter There is very great ethical value in Jainism for men's improvement. Jainism is a very original, independent & systematical doctrine.

भावार्थ—बौद्ध से जैन की प्राचीनता का मुकाबला करते हुए कहते हैं कि ठीक है कि जैनमत बौद्ध से वास्तव मे बहुत प्राचीन है। मानव समाज की उन्नति के लिये जैनमत मे सदाचार का बहुत बड़ा मूल्य है। जैन दर्शन बहुत ही असली, स्वतन्त्र और नियमित सिद्धान्त है।

जर्मनी के महान् विद्वान् डाक्टर जोहसहर्टेल एम० ए० (Johannes Hertel M. A. Ph. D) ता० १७ जून सन् १९०८ के पत्र में कहते हैं:—

भावार्थ—मैं अपने देशवासियों को दिखलाऊंगा कि कैसे उत्तम तत्त्व और ऊंचे विचार जैनधर्म और जैन लेखकों में हैं। जैनसाहित्य बौद्धों की अपेक्षा बहुत ही बढ़िया है। मैं जितना २ अधिक जैनधर्म व जैनसाहित्य का ज्ञान प्राप्त करता जाता हूं, उतना २ ही मैं उनको अधिक प्यार करता हूँ।

इस ग्रंथ के लिखने में नीचे लिखे जैनग्रंथों से प्रामाणिकता ली गई है :—

श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत (वि० सं० ४९) प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय, समयसार, द्वादशानुप्रेक्षा।

श्री उमास्वामी कृत (वि० सं० ८१) तत्त्वार्थ सूत्र।

श्री समन्तभद्राचार्य कृत (द्वि० शताब्दि में) आप्तमीमांसा, स्वयम्भूस्तोत्र, रत्नकरण्ड श्रावकाचार।

श्री बट्‌केर स्वामी कृत (प्राचीन) मूलाचार।

श्री योगेन्द्राचार्यकृत (प्राचीन) योगसार।

श्री पूज्यपाद स्वामीकृत (तृ० श०) सर्वार्थसिद्धि, समाधिशतक।

श्री विद्यानन्द स्वामीकृत (८ वीं श०) पात्र केशरी स्तोत्र।

श्री जिनसेनाचार्यकृत (९ वीं श०) महापुराण।

श्री गुणभद्राचार्यकृत (९ वीं श०) उत्तर पुराण।

श्री वादीभचन्द्र कृत (९ वीं श०) छत्र चूड़ामणि।

श्री नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्तीकृत (१० वीं श०) द्रव्यसंग्रह, गोमटसार, त्रिलोकसार।

श्री अमृतचन्द्र आचार्य कृत (१० वीं श०) पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, तत्त्वार्थसार।

श्री असग कवि कृत (१० वीं श०) महावीर चरित्र।

श्री सकल कीर्ति कृत (१४ वीं श०) धन्यकुमार चरित्र।

श्री शुभ चन्द्र कृत (१७ वीं श०) श्रेणिक चरित्र।

पाँडे राजमल्ल कृत (१७ वीं श०) पंचाध्यायी।

ॐ

* जैनधर्म प्रकाश *

दोहा

ऋषभ आदि महावीरलों चौबीसो जिनराय ।
विघ्नहरण, मंगल करण बंदों मन वच काय ॥ १ ॥

१. जैनधर्म का उद्देश्य ।

जैनधर्म का उद्देश्य अर्थात् प्रयोजन * संसारी आत्मा के पाप पुण्य रूपी कर्म मैल को धोकर उसको संसार के जन्म मरणादि दुःखों से मुक्त कर स्वाधीन परमानन्द मे पहुँचा देना है, जिससे यह अशुद्ध आत्मा शुद्ध होकर परमात्म पद मे सदाकाल के लिए स्थिर हो जावे; यह मुख्य उद्देश्य है और गौण उद्देश्य क्षमा, ब्रह्मचर्य, परोपकार, अहिंसा आदि गुणों के द्वारा सुख प्राप्त करना है ।

---

* देशयामि समीचीनम् धर्मं कर्म निवर्हणम् ।
संसार दुःखतः सत्त्वान्यो धरत्युत्तमे सुखे ॥ (र०क०श्रा०)

भावार्थ—जो संसार के दुःखों से जीवों को छुड़ाकर उत्तम सुख में धरे ऐसे कर्म-नाशक समीचीन धर्म का उपदेश करता हूँ ।

२. यह जगत अनादि अनन्त है ।

जगत कोई एक विशेष भिन्न पदार्थ नहीं है, किन्तु चेतन और अचेतन वस्तुओं का समुदाय है । जैसे बन वृक्षों के समूह को, भीड़ मनुष्यो के समूह को, सेना हाथी घोड़े रथ पयादो के समूह को कहते है, वैसे ही यह जगत या लोक पदार्थों के समुदाय का नाम है । यह बात बाल-गोपाल सब जानते है कि जो वस्तु बनती है वह किसी वस्तु से बनती है व जो नाश होती है वह किसी अन्य वस्तु के रूप मे परिवर्तित हो जाती है । अकस्मात् बिना किसी उपादान कारण के न कोई वस्तु बनती है, न कोई नष्ट होकर सर्वथा अभावरूप हो जाती है । दूध से घी खोया मलाई बनती है; कपड़े को जलाने से राख बन जाती है; मिट्टी, चूना, पत्थरो के मिलने से मकान बन जाता है, मकान को तोड़ने से मिट्टी लकड़ी आदि पदार्थ अलग अलग हो जाते है । यह सृष्टि का एक अटल और पक्का नियम है कि सत् का सर्वथा नाश और असत् का उत्पाद कभी नही हो सक्ता, अर्थात् जो मूल पदार्थ जड़ या चेतन है उनका सर्वथा नाश नहीं होता है, तथा जो मूल पदार्थ नही है वे कभी पैदा नही हो सक्ते । सायंस या विज्ञान भी यही मत रखता है ।

किसी वस्तु का नाश नहीं होता है । यह जगत परिवर्तन-शील है, अर्थात् इसके भीतर जो चेतन और जड़ द्रव्य है वे सदा अवस्थाओ को बदलते रहते है । अवस्थाएं जन्मतीं और बिगड़ती है; मूल द्रव्य नहीं । इसलिए यह लोक सदा से है व

सदा चला जायगा तथा अकृत्रिम भी है, क्योंकि जो वस्तु आदि सहित होती है उसी के लिए कर्ता की आवश्यकता है। अनादि पदार्थ के लिए कर्ता हो नहीं सकता। यह जगत स्वभाव * से सिद्ध है अर्थात् इसके सब पदार्थ अपने स्वभाव से काम करते रहते हैं।

हर एक कार्य के लिए दो मुख्य कारण होते है—एक उपादान, दूसरा निमित्त। जो मूल कारण स्वयं कार्यरूप हो जाता है उसे उपादान कारण कहते हैं; उसके कार्य रूप होने में एक व अनेक जो सहायक होते है उनको निमित्त कारण कहते हैं। जैसे पानी से भाप का बनना, इसमें पानी उपादान तथा अग्नि आदि निमित्त कारण है। जगत मे आग, पानी, हवा, मिट्टी एक दूसरे को बिना पुरुषार्थ के अपने अपने परिणमनो के अनुसार निमित्त होकर बहुत से कार्यों में बदल जाते हैं। पानी बरसना, बहना, मिट्टी का बह जाना, कही जमकर पृथ्वी बनना, बादलो का बनना, सूर्य का प्रकाशताप फैलना, दिन रात होना, ये सब जड़ पदार्थों का विकास है। निमित्त नैमित्तिक संबन्ध चिन्तवन मे नहीं आ सकता, न जाने कौन पदार्थ अपनी

---

* लोओ अकिट्टिमो खलु अणाइ णिहणो सहाव णिप्पण्णो।
जीवा जीवेहिं भरोणिच्चो तालरूक्ख संठाणो ॥ २ ॥

—मूलाचार अ० ८

अर्थ—यह लोक अकृत्रिम है, अनादि अनन्त है। स्वभाव से ही अपने आप बना बनाया है, जीव अजीव पदार्थों से भरा है, नित्य है और ताड़ वृक्ष के आकार है।

परिस्थिति के वश विकास करता हुआ किस के किस विकास का निमित्त हो रहा है। ऐसे असंख्य परिणाम प्रतिक्षण हो रहे हैं।

बहुत से कामों में चेतन जीव भी निमित्त होते हैं, जैसे चिड़ियो से घोंसले का बनना, आदमी से मकान बनना, कपड़ा बनना आदि, तथा कहीं चेतन कार्यों में भी जड़ पदार्थ निमित्त बन जाता है, जैसे अज्ञानी होने मे भांग या मद्य आदि। इस जगत मे सदा ही काम होता रहता है। ऐसा नही है कि कभी परमाणु रूप से दीर्घ काल तक पड़ा रहे और फिर बने। जहां जल और ताप का सम्बन्ध होगा, वहां जल शुष्क हो भाफ बनेहीगा। कहीं कभी कोई बस्ती ऊजड़ हो जाती है, कहीं कभी ऊजड़ क्षेत्र बस्ती हो जाता है। सर्व जगत में कभी महा प्रलय नही होती। किसी थोड़े से क्षेत्र में पवनादि की तीव्रता से प्रलय की अवस्था कुछ काल के लिए होती है, फिर कही बस्ती जमने लगती है। यों सूक्ष्मता से देखा जाय तो सृष्टि और प्रलय सर्वदा होते रहते है। इस तरह यह जगत अनादि होकर अनन्तकाल तक चला जायगा।

२. जैनधर्म अनादि अनन्त है

जैनधर्म इस जगत मे कही न कहीं सदा ही पाया जाता है। यह किसो विशेष काल में शुरू नही हुआ है। जम्बूद्वीप * के विदेह क्षेत्र में (जिसका अभी वर्तमान भूगोल-ज्ञाताओ को पता नहीं लगा है) यह धर्म सदा जारी रहता है। वहां से महान्

* जम्बूद्वीप व विदेह का वर्णन जगत की रचना में मिलेगा।

पुरुष-सदा ही देह से रहित हो मुक्त होते है । इसी कारण उस क्षेत्र को विदेह कहते हैं । इस भरतक्षेत्र में भी यह धर्म, प्रवाह की अपेक्षा अनादिकाल से है।

यद्यपि किसी काल में कुछ समय के लिए लुप्त हो जाता है, तौ भी फिर तीर्थंकरों या मोक्षगामी केवलज्ञानी महान आत्माओ के द्वारा प्रकाश किया जाता है। जब यह धर्म आत्मा के शुद्ध करने का उपाय है तब जैसे आत्मा और अनात्मा अर्थात् चेतन और जड़ से भरा हुआ यह जगत अनादि अनन्त है, वैसे ही आत्मा की शुद्धि का उपाय यह धर्म भी अनादि-अनंत है। जगत में धान्य और धान्य की तुष रहित शुद्ध अवस्था चावल तथा धान्यका शुद्ध होने का उपाय तीनो ही अनादि है। इसी तरह संसारी आत्मा परमात्मा और परमात्मपद की प्राप्ति के उपाय भी अनादि हैं ।

४. ऐतिहासिक दृष्टि से जैनधर्म की प्राचीनता

जैसा पहिले बताया गया है, यह जैनधर्म अनादि काल से चला आ रहा है। हम यदि वर्तमान खोजे हुए इतिहास की ओर दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि जहां तक भारत की ऐतिहासिक सामग्री मिलती है वहां तक जैनधर्म पाया जाता है । इस बात के प्रमाण इस पुस्तक मे नमूने के रूप में निम्न लिखित एक दो ही दिये जाते हैं, जिससे पुस्तक बहुत बड़ी न हो जावे :—

मेजर जेनरल फर्लांग साहब (Major General J G.R. Furlong) अपनी पुस्तक "In his short studies of comparative religions P. P. 243—4" मे कहते हैं :—

All Upper, Western, North & Central India was, then say, 1500 to 800 B. C and indeed from unknown times, ruled by Turanians, conveniently called Dravids, and given to tree, serpent and the like worship........but there also existed through out Upper India an ancient & highly organised religion, philosophical, ethical & severely ascetical viz Jainism.

भावार्थ—सन् ई० से ८०० से १५०० वर्ष पहिले तक तथा वास्तव मे अज्ञात समयों से यह कुल भारत तूरानो या द्राविड़ लोगो द्वारा शाषित था, जो वृक्ष सर्प आदि को पूजा करते थे; किन्तु तबही ऊपरी भारत में एक प्राचीन उत्तम रोति से गॅठा हुआ धर्म तत्वज्ञान से पूर्ण सदाचार रूप तथा कठिन तपस्या सहित धर्म अर्थात् जैनधर्म मौजूद था।

इस पुस्तक मे ग्रन्थकार ने जैनों के ऐसे भावों का पता अन्य देशो में प्राप्त भावो मे पाया; जैसे ग्रीक आदिको मे। उसी से इनका अस्तित्व बहुत पहिले से सिद्ध किया है। दुनियां के बहुत से धर्मों पर जैनधर्म का असर पड़ा है, ऐसा बताया है।

एक अजैन विद्वान् लाला कन्नोमल थियोसोफिस्ट पत्र मास दिसम्बर १९०४ और जनवरी १९०५ मे लिखते हैं—"जैनधर्म एक ऐसा प्राचीन मत है कि जिसकी उत्पत्ति तथा इतिहास का पता लगाना बहुत ही दुर्लभ बात है"।

५. हिन्दुओं के प्राचीन ग्रन्थों में जैनों का संकेत

आजकल के इतिहासकार ऋग्वेद यजुर्वेद आदि को प्राचीन ग्रन्थ मानते हैं। उनमे भी जैन तीर्थंकरों का वर्णन है।

जैनियो के २२ वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि का नाम नीचे के मन्त्रो मे है :—

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्तिः नः पूषा विश्व वेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्ट नेमिः स्वस्ति नो वृहस्पतिर्दधातु ॥
(ऋग्वेद अ० १ अ० ६ वर्ग १६ दयानन्द भाष्य मुद्रित)

भावार्थ—महा कीर्तिवान इन्द्र विश्ववेत्ता पूषा, तार्क्ष्य रूप अरिष्टनेमि व वृहस्पति हमारा कल्याण करें ।

वाजस्य नु प्रसव आ बभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः ।
स नेमि राजा परियाति विद्वान् प्रजा पुष्टि वर्धयमानो अस्म स्वाहा ॥
(यजुर्वेद अध्याय ९ मन्त्र २५)

भावार्थ—भावयज्ञ को प्रगट करने वाले ध्यान का इस संसार के सर्वभूत जीवो के लिये सर्व प्रकार से यथार्थ रूप कथन करके जो नेमिनाथ अपने को केवलज्ञानादि आत्मचतुष्टय के स्वामी और सर्वज्ञ प्रगट करते है और जिनके दयामय उपदेश से जीवो को आत्म-स्वरूप की पुष्टिता शीघ्र बढ़ती है, उसको आहुति हो ।

अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं नवा ओ जीयो रुद्रत्वदस्ति ॥
(ऋग्वेद अ० २ अ० ७ वर्ग १७)

भावार्थ—हे अर्हन् ! आप वस्तु स्वरूप धर्मरूपी बाणो को, उपदेश रूपी धनुष को तथा आत्म चतुष्टय रूप आभूषणो को धारण किए हो । हे अर्हन् ! आप विश्वरूप प्रकाशक केवलज्ञान

को प्राप्त हो। हे अर्हन् आप इस संसार के सब जीवों की रक्षा करते हो। हे कामादि को जलाने वाले आप के समान कोई बलवान् नहीं है।

नोट—इस मन्त्र मे अर्हत की प्रशंसा है, जो जैनियो के पाँच परमेष्टी में प्रथम हैं। श्री नग्न साधु महावीर भगवान का नाम नीचे के मन्त्र में है :—

आतिथ्य रूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः।
रूप मुपसदा मेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता ॥
(यजुर्वेद अध्याय १९ मन्त्र १४)

योग वासिष्ठ अ० १५ श्लोक ८ में श्री रामचन्द्र जी कहते हैं :—

नाहं रामो न मे वांछा भावेषु च न मे मनः।
शान्ति मास्थातु मिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा॥

भावार्थ—न मैं राम हूं, न मेरी वांछा पदार्थों में है। मैं तो जिनके समान अपने आत्मामें ही शांति स्थापित करना चाहता हूँ।

बाल्मीकि रामायण १४ सर्ग बालकाण्ड श्लोक १२ महाराज दशरथ ने श्रमणों को भोज दिया। श्रमण दि० जैन मुनि को कहते हैं—"श्रमणाश्चैव भुञ्जते"।

(श्रमणाः दिगम्बराः भूषण टीका)

महाभारत बन पर्व अ० १८३ पृ० ७२७ (छपी १९०७ सूरत चन्द सोम)

हैहय वंशी काश्यप गोत्री आदि सब ने महाव्रत धारी महात्मा अरिष्टनेमि मुनि को प्रणाम किया।

नोट—यहां २२ वें तीर्थङ्कर का संकेत है, जिनका नाम ऊपर वेद के मन्त्रो मे आया है।

मार्कंडेय पुराण अ० ५३ में—ऋषभदेव ने भरत-पुत्र को राज दे वनमे जाकर महा संन्यास ले लिया।

नोट—यहां जैनियो के प्रथम तीर्थकरका वर्णन है।

भागवत के स्कन्ध ५ अ० २ पृ० ३६६–७ में जैनियो के प्रथम तीर्थकर श्रीऋषभदेव को महर्षि लिखकर उनके उपदेश की बहुत प्रशंसा लिखी है। भागवत के टीकाकार लाला शालिग्राम जी पृष्ठ ३७२ में इस प्रश्न के उत्तर में कि "शुकदेवजी ने ऋषभदेव को क्यों प्रणाम किया" लिखते हैं—"ऋषभदेवजी ने जगत को मोक्ष मार्ग दिखाया और अपने आप भी मोक्ष होने के कर्म किए, इसीलिए शुकदेव जी ने ऋषभदेव को नमस्कार किया है"।

६. जैनधर्म हिन्दूधर्म की शाखा नहीं है

जैनधर्म हिन्दूधर्म की शाखा नहीं हो सकता है। क्योकि जो जिसकी शाखा होता है उसका मूल भी वही होता है। जो हिन्दू कर्तावादी हैं उनसे विरुद्ध जैनमत कहता है कि जगत अनादि अकृत्रिम है, उसका कर्ता ईश्वर नहीं है। जो हिन्दू एक ही ब्रह्ममय जगत मानते हैं उनसे विरुद्ध जैनमत कहता है कि लोक मे अनन्त परब्रह्म परमात्मा, अनन्त संसारी आत्मा, पुद्गल आदि जड़ पदार्थ, ये सब भिन्न हैं। कोई किसी का खंड नहीं।

जो हिन्दू आत्मा या पुरुष को कूटस्थ नित्य या अपरिणामी मानते है उनसे विरुद्ध जैनधर्म कहता है कि आत्मायें स्वाभाव न त्यागते हुए भी परिणामनशील हैं, तब ही राग द्वेष भावो को छोड़ वीतराग हो सकती हैं। जैन लोग उन ऋग्वेदादि वेदों को नहीं मानते, जिनको हिन्दू लोग अपना धर्मशास्त्र मानते है। प्रोफैसर जैकोबी ने आक्सफोर्ड में जैनधर्म को हिन्दूधर्मों से मुक़ाबला करते हुए कहा है—"जैनधर्म सर्वथा स्वतन्त्र है। मेरा विश्वास है कि यह किसी का अनुकरण रूप नहीं है और इसीलिए प्राचीन भारतवर्ष के तत्वज्ञान और धर्म-पद्धति के अध्ययन करने वालों के लिए यह एक महत्व की वस्तु है।" (देखो पृष्ठ १४१ गुजराती जैन दर्शन, प्रकाशक अधिपति "जैन", भावनगर।)

७. जैनधर्म बौद्धधर्म की शाखा नहीं है

बौद्धधर्म पदार्थ को नित्य नहीं मानता है, आत्मा को क्षणिक मानता है, जब कि जैनधर्म आत्मा को द्रव्य की अपेक्षा नित्य, किन्तु अवस्था की अपेक्षा अनित्य मानता है। जैनधर्म में जो छः द्रव्य हैं, उनकी बौद्धों के यहां मान्यता नही है। इसके विरुद्ध बौद्धधर्म जैनधर्म की नक़ल जरूर है। पहले स्वयं गौतम बुद्ध जैन मुनि पिहिताश्रव के शिष्य—साधु हुए। फिर उन्होंने "मृतक प्राणी में जीव नहीं होता" ऐसी शंका होने पर अपना भिन्न मत स्थापित किया। (देखो जैन दर्शन सार, देवनन्दि कृत)

प्रोफैसर जैकौबी भी कहते हैं :—

"The Budhist frequently refer to the Nirgranthas or Jains as a rival sect, but they never, so much as hint this sect was a newly founded one. On the contrary, from the way in which they speak of it, it would seem that this sect of Nirgranthas was at Budhas time already one of long standing, or in other words, it seems probable that Jainism is considerably older than Budhism. (देखो पृष्ठ ४२ गुजराती जैन दर्शन)

भावार्थ—बौद्धो ने बार २ निर्ग्रन्थ या जैनियों को अपना मुकाबिला करने वाला कहा है, परंतु वे किसी स्थल पर कभी भी यह नहीं कहते कि यह एक नया स्थापित मत है। इसके विरुद्ध जिस तरह वे वर्णन करते हैं उससे यही प्रकट होगा कि निर्ग्रंथोका धर्म बुद्ध के समय में दीर्घकाल से मौजूद था; अर्थात् यही संभव है कि जैनधर्म बौद्धधर्म से अधिक पुराना है।

जैकोबीने आस्रव शब्द को बौद्ध ग्रंथों में पाप के अर्थ में देखकर तथा जैनग्रंथों में जिससे कर्म आते हैं व जो कर्म आत्मा मे आता है ऐसे असली अर्थ में देखकर यह निश्चय किया है कि जहां आस्रव के मूल अर्थ हैं वही धर्म प्राचीन है।

Dr. Ry Davids डा० राइ डेविड्स ने "Budhist India P. 143" मे लिखा है कि—

"The Jains have remained as an organised Community all through the history of India from before the rise of Budhism down to day."

भावार्थ—जैन लोग भारत के इतिहास में बौद्धधर्म के बहुत पहिले से अबतक एक सङ्गठित जातिरूप में चले आ रहे है।

लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक केशरी पत्र में १३ दिसम्बर १९०४ में लिखते है कि—

बौद्धधर्म की स्थापना के पूर्व जैनधर्म का प्रकाश फैल रहा था। बौद्ध धर्म पीछे से हुआ, यह बात निश्चित है।

हंटर साहिब अपनी पुस्तक इण्डियन इम्पायर के पृष्ठ २०६ पर लिखते है कि—

जैनमत बौद्धधर्म से पहिले का है। ओल्डनवर्ग ने पाली पुस्तको को देखकर यह बात कही है कि जैन और निग्रन्थ एक है। इनके रहते हुए बाद में बौद्धमत उत्पन्न हुआ।

(See Budha's life & Haey's translation 1882)

जैनधर्म इतना ही बौद्धमत से भी भिन्न है जितना भिन्न कि हम उसे किसी भी और मत से कह सकते है:—

८. बौद्धों के ग्रन्थों में जैनों का संकेत

"ऐतिहासिक खोज" (Historical Gleanings) नाम की पुस्तक में, जिसको बाबू विमल चरण ला एम० ए० बी० एल० नं० २४ सुकिया स्ट्रीट कलकत्ता ने सन् १९२२ से सम्पादन कर प्रकाशित कराया है, इस सम्बन्ध मे बहुत से प्रमाण लिखे हैं, जिनमें से कुछ यहां नीचे दिये जाते हैं:—

(१) गौत्तम बुद्ध राजग्रही मे निर्ग्रंथ नातपुत्र (श्री महावीर) के शिष्य चूलसकुल दादी से मिले थे।

(मज्झमनिकाय अ० २)

(२) श्री महावीर गौतमबुद्ध से प्रथम निर्वाण हुए।

(मज्झम निकाय साम् गामसुत व दिग्धनिकाय पातिक सुत्त)

(३) बुद्ध ने अचेलको (नग्न दिगम्बर साधुओं) का वर्णन लिखा है। (दिग्धनिकाय का कस्सप सिंह नादे)

(४) निर्ग्रंथ श्रावकों का देवता निर्ग्रन्थ है—"निगन्थ सावकानाम् निगन्थो देवताः"।

(पाली त्रिपितक निद्देश पत्र १७३-४)

(५) महावीर स्वामी ने कहा है कि शीत जल मे जीव होते हैं—"सो किर शीतोद्के सत संज्ञा होति"।

(सुमंगल विलासिनी पत्र १६८)

(६) राजग्रही में एक दफे बुद्ध ने महानम को कहा कि "इसिगिली (ऋषिगिरि स०) के तट पर कुछ निर्ग्रंथ भूमि पर लेटे हुए तप कर रहे थे। तब मैंने उनसे पूछा—क्यो ऐसा करते हो? उन्होने जवाब दिया कि उनके नाथपुत्र ने जो सर्वज्ञ व सर्वदर्शी हैं उनसे कहा है कि पूर्वजन्म मे उन्होने बहुत पाप किए हैं, उन्हीं के क्षय करने के लिए वे मन बचन काय का निरोध कर रहे हैं"। (मज्झमनिकाय जिल्द १ पत्र ९२--९३)

(७) लिच्छवों का सेनापति सीह निर्ग्रंथ नातपुत्र का शिष्य-था। (विनय पितक का महावग्ग)

(८) निर्ग्रंथ मतधारी राजा के खज़ांची के वंश में भद्रा को, श्रावस्ती के मंत्री के वंश मे अर्जुन को, बिम्बसार के पुत्र अभय को, श्रावस्ती के सश्रीगुप्त और गरहदिन्न को बुद्ध ने बौद्ध बनाया। (धम्मपाल कृत प्रमथदीपिनी व धम्मपदत्थ कथा जि० १)

(९) धनञ्जय सेठी की पुत्री विशाखा निर्ग्रंथ मिगार सेठी के पुत्र पुराणवर्द्धक को विवाही गई थी। श्रावस्ती में मिगार श्रेष्ठी ने ५०० नग्न साधुओं को आहार दान दिया।

(विसाखावत्थु धम्मद कथा जि० १)

९. जैनों की मूल मान्यताएँ

(१) यह लोक अनादि अनन्त अकृत्रिम है। चेतन अचेतन छः द्रव्यों से भरा है। अनन्तानन्त जीव भिन्न २ हैं। अनंतानन्त परमाणु जड़ हैं।

(२) लोक के सर्व ही द्रव्य स्वभाव से नित्य हैं, परन्तु अवस्था को बदलने की अपेक्षा अनित्य हैं।

(३) संसारी जीव प्रवाह की अपेक्षा अनादि से जड़, पाप पुण्य मई कर्मों के शरीर से संयोग पाये हुए, अशुद्ध हैं।

(४) हर एक संसारी जीव स्वतन्त्रता से अपने अशुद्ध भावों द्वारा कर्म बांधता है और वही अपने शुद्ध भावों से कर्मों का नाश कर मुक्त हो सकता है।

(५) जैसे स्थूल शरीर में लिया हुआ भोजन पान स्वयं रस रुधिर वीर्य बन कर अपने फल को दिया करता है, ऐसे ही पाप पुण्य मई सूक्ष्म शरीर में पाप पुण्य स्वयं फल प्रकट करके

आत्मा में क्रोधादि व दुःख सुख झलकाया करता है। कोई परमात्मा किसी को दुःख सुख देता नहीं।

(६) मुक्तजीव या परमात्मा अनन्त है। उन सबकी सत्ता भिन्न २ है। कोई किसी मे मिलता नहीं। सब ही नित्य स्वात्मानन्द का भोग किया करते हैं तथा फिर कभी संसार अवस्था मे आते नहीं।

(७) साधक गृहस्थ या साधु जन मुक्ति प्राप्त परमात्माओं की भक्ति व आराधना अपने परिणामो की शुद्धि के लिए करते है। उनको प्रसन्न कर उनसे फल पाने के लिए नहीं।

(८) मुक्ति का साक्षात् साधन अपने ही आत्मा को परमात्मा के समान शुद्ध गुण वाला जान कर—श्रद्धान कर—और सर्व प्रकार का राग द्वेष मोह त्याग कर उसी का ध्यान करना है। राग द्वेष मोह से कर्म बँधते हैं। इसके विपरीत वीतराग भावमयी आत्मसमाधि से कर्म झड़ (नाश हो) जाते है।

(९) अहिंसा परम धर्म है। साधु इसको पूर्णता से पालते हैं। गृहस्थ यथा शक्ति अपने २ पद के अनुसार पालते हैं। धर्म के नाम पर, मांसाहार, शिकार, शौक आदि व्यर्थ कार्यों के लिये जीवों की हत्या नहीं करते हैं।

(१०) भोजन शुद्ध, ताजा, मांस मदिरा मधु रहित व पानी छना हुआ लेना उचित है।

(११) क्रोध, मान, माया, लोभ, यह चार आत्मा के शत्रु हैं; इसलिये इनका संहार करना चाहिये।

(१२) साधु के नित्य छः कर्म ये हैं—सामायिक या ध्यान, प्रतिक्रमण (पिछले दोषों की निन्दा), प्रत्याख्यान (आगामी के लिए दोष त्याग की भावना), स्तुति, वंदना, कायोत्सर्ग (शरीर की ममता त्यागना)।

(१३) गृहस्थों के नित्य छः कर्म ये हैं—देव पूजा, गुरु-भक्ति, शास्त्र पठन, संयम, तप और दान।

(१४) साधु नग्न होते है; वे परिग्रह व आरम्भ नही रखते। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य, परिग्रह-त्याग, इन पांच महाव्रतों को पूर्ण रूप से पालते हैं।

(१५) गृहस्थों के आठ मूलगुण ये हैं:—मदिरा, मांस, मधु का त्याग, तथा एक देश यथाशक्ति अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व परिग्रह-प्रमाण, इन पांच अणुव्रतों का पालना।

१०. वेदान्तादि अजैन मतों की मान्यताएं और उनका जैनियों की मान्यताओं से अन्तर

(१) वेदान्त मत—इस मत का सिद्धांत है कि यह दृश्य जगत व दर्शक दोनो एक हैं। ब्रह्मरूप जगत है; ब्रह्म ही से पैदा हुआ है और ब्रह्म ही मे लय हो जायगा। (देखो वेदान्त दर्पण व्यास कृत, भाषा प्रभुदयाल, छपा वेंकटेश्वर सं० १९५९)

ब्रह्म का लक्षण है—"जन्माद्यस्य यत इति"।

(सूत्र २ अ० २)

भावार्थ—जन्म-स्थिति नाश उससे होता है।

"नित्यस्सर्वज्ञस्सर्वगतो नित्यतृप्त शुद्धबुद्ध मुक्त स्वभावो विज्ञानमानन्द ब्रह्म" (पृ० ३०)

भावार्थ—ब्रह्म नित्य है, सर्वज्ञ है, सर्व व्यापी है, सदा तृप्त है, शुद्धबुद्ध मुक्त स्वभाव है, विज्ञानमयी है, आनन्दमई है।

"आकाशस्तल्लिंगात्" (सूत्र २२ अ० १)

भावार्थ—आकाश ब्रह्म है–ब्रह्म का चिन्ह होने से।

"द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात्" (१ पाद ३)

भावार्थ—पृथ्वी जिसके आदि मे है, ऐसे जगत का आयतन है—आत्म-वाचक शब्द होने से।

"कार्यो पाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः" (वेदान्त परिभाषा परि० ७)

भावार्थ—यह जीव कार्य रूप उपाधि है, कारणरूप उपाधि ईश्वर है।

जैन सिद्धान्त मुक्तात्मा को परंब्रह्म, जगत का अकर्त्ता व संसार से भिन्न मानता है। जीवों की सत्ता भिन्न अनंत स्वतंत्र व परमाणु आदि अचेतन की सत्ता भिन्न मानता है। अद्वैत रूप एक ब्रह्म मानने मे यह दोष देता है।

"कर्मद्वैतं फलद्वैतं लोकद्वैतं च नो भवेत्।
विद्या विद्या द्वयं न स्यात् बंध मोक्ष द्वयं तथा ॥२५"
(आप्तमीमांसा)

भावार्थ—यदि ब्रह्म नित्य व तृप्त है, तब उससे कोई कार्य

नहीं हो सक्ता; यदि कोई कार्य हो तो विरोधी पदार्थ नहीं बन सक्ते, अर्थात् शुभ, अशुभकर्म, सुख दुःखरूप फल, यह लोक परलोक, विद्या अविद्या, बंध व मोक्ष कुछ नहीं हो सकते। आनन्दमय होने से उसमें मैं अनेक रूप हो जाऊं, यह भाव नहीं हो सकता। दो वस्तु होने से ही परस्पर बंध व उनका छूटना या मुक्त होना बन सक्ता है—एक ही शुद्ध पदार्थ में असम्भव है।

(२) सांख्य दर्शन और (३) पातंजलि दर्शन

इनके दो भेद हैं। एक वे, जो ईश्वर को सत्ता नहीं मानते है; आत्मा को निर्लेप अकर्ता व जड़ प्रकृति को ही कर्ता मानते हैं; अहंकार, शान्ति, बुद्धि आदि आत्मिक भावों को भी सत्त्व, रज, तम तीन प्रकृति के विकार मानते है, परन्तु फल भोक्ता आत्मा को मानते हैं। (देखो सांख्य दर्शन कपिल छपा सं० १९५७)

"अकर्तुरपि फलोपभोगो अन्नादि वत्" (१०५ अ० १)

भावार्थ—अकर्ता पुरुष है तौ भी फल भोगता है; जैसे किसान अन्न पैदा करता है और राजा भोगता है।

"अहंकारः कर्ता न पुरुषः" (५४ अ० ६)

अहंकार जो प्रकृति का विकार है वह कर्ता है; आत्मा कर्ता नहीं है।

"नानन्दाभि व्यक्तिमुक्तिर्निधर्मत्वात्" (७४ अ० ५)

भावार्थ—आत्मा में आनन्द धर्म नहीं है, इससे आनन्द की प्रगटता मोक्ष नहीं है।

जो ईश्वर को भी मानते हैं ऐसे पातञ्जलि-मान्य सांख्य ईश्वर को ऐसा कहते हैं कि—

"परमेश्वरः क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषः स्वेच्छया निर्माणकायमधिष्ठाय लौकिक वैदिक सम्प्रदाय प्रवर्तकः संसारांगारतप्यमानानां प्राणभृतामनुग्राहकश्च"

(सर्व दर्शन संग्रह पृ० २५५)

भावार्थ—परमेश्वर क्लेश, कर्म, विपाक, आशय से स्पृष्ट नहीं होता। वह स्वेच्छा से निर्माण शरीर में अधिष्ठान करके लौकिक और वैदिक सम्प्रदाय की वर्तना करता है; एवं संसाररूप अङ्गार से तप्यमान प्राणीगण के प्रति अनुग्रह वितरण करता है।

दोनो ही आत्मा को अपरिणामी मानते हैं—

"पुरुषस्यापरिणामित्वात्"

(१८ पाद ४ योग दर्शन पातञ्जलि १६०७ मे छपा)

जैनसिद्धान्त कहता है कि यदि आत्मा अपरिणामी अर्थात् कूटस्थनित्य हो व कर्ता न हो तो उसके संसार व मोक्ष नहीं हो सकता तथा जो करेगा वही भोगेगा। किसान खेती करके उसका फल कुटुम्ब-पालन भोगता है। राजा किसानो की रक्षा करके उसका फल राज्य-सुख पाता है। जड़ पदार्थ मे शांति व क्रोधादि भाव नहीं हो सकते। ये सब चेतन के ही भाव हैं। जो शुद्ध ईश्वर आशय रहित है उसमें शरीर धार कर कृपा करने का भाव नहीं हो सकता है। कहा है—

नित्य त्वैकान्त पक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते ।
प्रागेव कारकाभावः क्वप्रमाणं क्वतत्फलम् ॥३७॥
(आप्तमीमांसा)

भावार्थ—यदि सर्वथा नित्य माना जायगा तो उसमे विकार नहीं हो सकते। तब कर्ता पना आदि कारक न होंगे, न उसमें यथार्थ ज्ञान होगा, न उसका फल होगा कि यह त्यागो और यह ग्रहण करो। जैन दर्शन ईश्वर को सदा आनन्दमय और परका अकर्ता मानता है। जीव ही स्वयं पाप पुण्य बांधते व स्वयं ही मुक्त होते है, किसी ईश्वर की कृपा से नहीं।

(४) नैयायिकदर्शन और (५) वैशेषिकदर्शन

ये दोनों प्रायः एक से है। दोनों ईश्वर को कर्मों का फलदाता मानते है।

"ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्य दर्शनात् ॥ १९ ॥"
(न्यायदर्शन पृ० ४१७ सं० १९४९ में छपा)

भावार्थ—पुरुषों के कर्मों का अफल होना देखने व जानने से ईश्वर कारण है। ईश्वर के आधीन कर्म का फल है।

- "अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुख दुःखयोः ।
ईश्वरः प्रेरितो गच्छेत् स्वर्गेवा श्वभ्रमेव वा ॥ ६ ॥"

मुक्तात्मानां विद्येश्व रादीनाञ्च यद्यपि शिवत्वमस्ति तथापि परमेश्वर पारतंत्र्यात्स्वातंत्र्यंनास्ति।
(पृ० १३४—१३५ सर्वदर्शन संग्रह)

भावार्थ—यह जन्तु अज्ञानी है। इनका सुख दुःख स्वा-

धीनता रहित है। ईश्वर की प्रेरणा से स्वर्ग या नर्क में जाते हैं। मुक्ति प्राप्त जीव व विद्या के ईश्वर शिव रूप हैं, तथापि परमेश्वर के वश हैं, वे स्वतन्त्र नहीं है।

अनच्छिन्न सद्भावं वस्तु यद्देशकालतः।
तन्नित्यं विभुचेच्छन्तीत्यात्मनो विभु नित्यतेति ॥
(१९ सर्व दर्शन संग्रह पृ० १३९)

भावार्थ—किसी देश व काल में आत्मा निरोधरूप नहीं है। आत्मा व्यापक है और नित्य है।

"विभवान महानाकाशस्तथाचात्मा" (२२ अ० ७ वैशेषिकदर्शन पृ० २४७ छपा १६४६)

भावार्थ—यह आकाश महान् विभु है; वैसा ही यह आत्मा है।

जैन दर्शन कहता है कि यदि संसारी जीवों को कर्म का फल देना ईश्वर के आधीन है तो उनको कुमार्ग गमन से रोकना भी उसके आधीन होना चाहिये। जब ईश्वर सर्वज्ञ, सर्व व्यापी, दयालु व सर्वशक्तिमान् है, तो उसे अपनी प्रजा को कुपथ से अवश्य रोक देना चाहिये; जैसे देश का राजा शक्ति के अनुसार ज्ञान होने पर दुष्टो का निग्रह करता है, परन्तु जगत मे ऐसा नहीं देखा जाता। इससे उसकी प्रेरणा कर्म के फल मे आवश्यक नहीं है।

आत्मा यदि सर्वथा नित्य हो तो उसमे विकार नहीं हो सकते। विकार बिना राग द्वेष नहीं हो सकते, न रागद्वेष से

छूटकर मुक्त हो सकता है। सर्व व्यापक आत्मा हो तो स्पर्श का ज्ञान सर्वस्थानो का एक काल मे होना चाहिये। सो होता नहीं; किन्तु शरीर मात्र के स्पर्श का ज्ञान एक काल में होता है, इमसे आत्मा शरीर प्रमाण है। यदि आत्मा मुक्त हो गया तो फिर उसका ईश्वर के परतंत्र होना संभव नहीं है। मुक्त का अर्थ स्वाधीन है।

(६) **मीमांसा दर्शन**—यह दर्शन भी ईश्वर की सत्ता नहीं मानता है। यह शब्द को तथा वेदों को अनादि अपौरुषेय मानता है। यज्ञादि कर्म को ही धर्म मानता है।

"वेदस्य अपौरुषेयतया निरस्त समस्त शङ्का कलंकांकुरत्वेन स्वतः सिद्धम्'। (सर्वदर्शनसंग्रह पृ० २१८)

भावार्थ—सर्व शंकारूपी कलंक के अँकुर नाश होने पर वेद बिना किसी का किया हुआ सिद्ध है।

जैन दर्शन कहता है कि जो शब्द होठ तालु आदिसे बोले जाते हैं, उनका रचने वाला कोई पुरुष ही होना चाहिये। बिना रचना के उनका व्यवहार नहीं हो सकता। वे लिखने पढ़ने में आते हैं। ज्ञान को प्रवाहरूप अनादि कह सकते हैं, किन्तु प्रगटता किसी पुरुष विशेष से होती है ऐसा मानना चाहिये। शब्द नित्य नहीं हो सकता, क्योंकि वह दो जड़ पदार्थों के संबंध से भाषा वर्गणानाम जड़ पुद्गल की एक अवस्था विशेष है। अवस्था सब क्षणिक है। जिन पुद्गलों से शब्द बना है, वे मूल में नित्य हैं। अहिंसारूप यज्ञ, पूजा आदि स्वर्ग के कारण हो

सकते है, पशु हिंसारूप नहीं; परन्तु मुक्ति का कारण तो एक शुद्ध आत्मसमाधि है; वहां क्रियाकाण्ड की कल्पना ही नहीं रहती है।

(७) बौद्ध दर्शन—बौद्ध भी ईश्वर को जगतकर्ता नहीं मानता तथा किसी पदार्थ को नित्य न मानकर सबको क्षणिक मानता है। "यत् सत तत् क्षणिकं" (सर्वदर्शन संग्रह पृ० २० छपा सं० १९६२)।

भावार्थ—जो जो सत् पदार्थ हैं सब क्षणभंगुर हैं। जैन दर्शन कहता है कि सर्वथा क्षणिक मानने से एक आत्मा अपने किये पुण्यपाप के फलका भोक्ता न रहेगा, न वह मोक्ष अवस्था में बना रहेगा। पर्याय पलटने की अपेक्षा क्षणिक मान सकते है, किन्तु तिस पर भी वस्तु का मूल स्वभाव नहीं जाता, इससे उसे नित्य भी मानना चाहिये।

नोट—पाली ग्रन्थों में बौद्ध धर्म को और रूप ही कहा है। स्पष्ट कथन नहीं है। निर्वाण को अविनाशी कहा है।

(८) थियोसोफ़ी—एक मत है जो अपने को हिन्दू-मत सरीखा कहता है। वह कहता है कि जड़ से उन्नति करते २ मनुष्य होता है। चेतन व जड़ दो मूल पदार्थ भिन्न २ नहीं हैं, तथा मनुष्य मरकर कभी पशु नहीं होगा। हर एक प्राणी उन्नति ही करता है।

देखो—First Principles of Theosophy by C Jinrajdass M. A. 1921 Adyar—Madras इस पुस्तक में लिखा है—

The great Nebula—It is a chaotic mass of matter in an intensely heated condition millions and millions of miles in diameter. It is a Vague cloudy mass full of energy. *It revolves into another nebula* then solar system, then hydrozen, iron & others will be there. They will enter into certain combinations & then will come the first appearance of life. We shall have a protoplasm, Ist form of life, then it takes form of vegetable, then animals & soon lastly man.

A soul once become human cannot reincarnate in animal or vegetable forms. (P. 42.)

भावार्थ—एक बहुत बड़ा गड़बड़ मय जड़ (पुद्गल) का पिण्ड है जो बहुत ही ऊष्ण है व करोड़ो मीलो का उसका व्यास है। यह एक मेघ समूह सदृश शक्तियो का समूह है। यह घूमते २ दूसरा समूह होकर फिर सूर्य का परिकर हो जाता है, फिर उसी से हैड्रोजन वायु, लोहा व दूसरे पदार्थ हो जाते हैं। फिर कुछ मिलाप होते २ प्रथम जो जीवन शक्ति प्रकट होती है, इसको प्रोटोप्लैज्म कहते हैं। इसी से बनस्पति काय बनती है, फिर उन्नति करते २ वही पशु फिर यही मनुष्य हो जाता है।

आत्मा मनुष्य की दशा से पशु या बनस्पति को अवस्था में कभी नहीं गिरता है।

इस पर जैन दर्शन कहता है कि जड़ से चेतन शक्ति नहीं पैदा हो सकती है, क्योंकि उपादान कारण के समान कार्य होता है। आत्मा स्वतन्त्र नित्य पदार्थ है तथा जब मनुष्य अधिक पाप

करे तब क्यों न वह पशु हो जावे। जगत में हर एक आत्मा अपने भावों के अनुसार उन्नति वा अवनति दोनो करता रहता है।

(६) **आर्य समाजी**—यह भी ईश्वर को फलदाता व कर्ता मानते हैं। मुक्ति होने पर भी जीव अल्पज्ञ रहता है। वह फिर संसार में आता है। जीव परमात्मा के सदृश है, ऐसा नहीं मानते हैं। (देखो सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ९)

"मुक्ति में जीव विद्यमान रहता है। जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है, उसी में मुक्त जीव बिना रुकावट के विज्ञान आनन्द पूर्वक स्वतंन्त्र विचरता है"। (२५२ पृष्ठ)

"जीव मुक्ति पाकर पुनः संसार मे आता है"। (२५४ पृष्ठ)

"परमात्मा हमें मुक्ति में आनंद भुगाकर फिर पृथ्वी पर माता पिता के दर्शन कराता है" (२५५ पृ०)

"महाकल्प के पीछे फिर संसार में आते हैं। जीव की सामर्थ्य परिमित है। जीव अनंत सुख नहीं भोग सकते" । २५६ पृष्ठ)। जीव अल्पज्ञ है। (पृ० २६२)

"परमेश्वर के आधार से मुक्ति के आनंद को जीवात्मा भोगता है। मुक्ति में आत्मा निर्मल होने से पूर्ण ज्ञानी होकर उसको सर्व सन्निहित पदार्थों का ज्ञान यथावत् होता है" (पृ० २६७)।

जैन दर्शन—कहता है कि ऊपर के कथनों मे परस्पर विरोध है। एक स्थान मे आत्मा को परिमित ज्ञानी व दूसरे स्थान मे पूर्ण ज्ञानो व निर्मल कहा है। आत्मा स्वभाव से पर-

मात्मा के तुल्य है । कर्म बंध के कारण कमी है; उस कमी के जाते ही वह परमात्मा के समान स्वतंत्र हो जायगा। परमात्मा बिना किसी दोप के मुक्त जीव को क्यो कभी संसार में भेजता है। यदि भेजता है तो जेव कर्मबंध सहित रहेगा, मुक्त नहीं कहा जा सकेगा। परमात्मा निर्विकार है, उसमे संसार प्रपंच करने का विकार नहों हो सकता है ।

(१०) **पारसी या जरथोश्ती धर्म**—इस मत की मान्यता हिंदुओं के उस मत से मिलती है जो मात्र एक ईश्वर को ही अनादि-अकृत्रिम मानते हैं व उससे ही सृष्टि की उत्पत्ति मानते हैं। यह मत जड़ और चेतन दोनो को मानता है, पर उनकी उत्पत्ति एक ईश्वर से मानता है। जीव पाप पुण्य का फल मरण पीछे भोगता है । अंत मे उसी ईश्वर में समा जाता है। यह लोग पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु को इसलिये पवित्र मानते है कि इनसे सर्व वस्तुएं बनती हैं। मांसाहार मदिरापान से यह विरुद्ध है। बनस्पति मे जीव मानते है; वृथा उन को भी सताने की मनाई करते हैं। रजस्वला स्त्री ३ से ९ दिन तक यथा संभव अलग बैठती है । प्रसूत वाली स्त्री ४० दिन तक अलग रहती है । जिससे सब कुछ हुआ व जो सबसे बड़ा है उसे शैदानशैद कहते है। जनेऊ के स्थान मे यह कमर में डोरा वांधते हैं। देखो पुस्तक—"The Parsi religion as contained in Zand Avesta by John Wilson D. D. (1843) Bombay"

"The one holy and glorious God, the lord of

creation of both worlds has no form, no equal, creation & support of all things is from that lord .... Loftysky, earth, moon & stars have all been created by him and are subject to him. ..... that lord was the first of all & there was nothing before him & he is always and will always remain....The names of God are specially three—Dadar (giver or creator), Ahurmazd (wise Lord), Aso (holy)"

(Ch. II. P. 106—7 in Manja Zati Zartusht by Edal Dara).

भावार्थ—एक पवित्र और ऐश्वर्यवान प्रभु है। वह दोनों दुनियाँ की सृष्टि का स्वामी है। उसकी सूरत नहीं है, न उसके समान कोई है। सर्व पदार्थों की उत्पत्ति और रक्षा उसी प्रभु से है। उच्च आकाश, पृथ्वी, चंद्र व सितारे सब उससे पैदा हुए हैं व उसके आधीन हैं। वह ईश्वर सबसे पहले था। उसके पहिले कुछ नहीं था। वह हमेशा है और हमेशा रहेगा।

ईश्वर के विशेष नाम तीन है—दादर (देने वाला या पैदा करने वाला), अहुरमज्द (बुद्धिमान प्रभु), असो (पवित्र)।

They worship fire, sun, moon, earth, winds & water (P. 191).

"Whatever God has created in the world we worship to it." (P. 212)

भावार्थ—ये लोग अग्नि, सूर्य, चंद्र, पृथ्वी, वायु और जल को पूजते हैं। जो कुछ ईश्वर ने दुनिया में पैदा किया है उसे हम पूजते हैं।

Woman who bears a child must observe restriction 40 days. She must remain in seclusion (P. 212).

भावार्थ—बच्चे वाली स्त्री को चालीस दिन रुकावट रखनी व एकान्त मे रहना चाहिए ।

"He will not be acceptable to God who shall thus kill any animal. Angel Asfandarmad says "O holy man, such is the command of God that the face of the earth be kept clean from blood, filth & Carrion."

Angel amardad says about vegatable "It is not right to destroy it uselessly or to remove it without a purpose"..........

Let every one bind his waist with sacred girdle, since the kushti is the sign of pure faith. (See Zart-usht-namah--p. 495)

भावार्थ—जो इस तरह किसी पशु को मारेगा उसको ईश्वर नही स्वीकार करेगा। फरिश्ता अस्फन्दार्मद ने कहा है कि "ऐ पवित्र मनुष्य ! ईश्वर की यह आज्ञा है कि पृथ्वी का मुख रुधिर, मैल तथा मुर्दा मांस से पवित्र रक्खा जावे ।" अमरदाद फरिश्ता बनस्पतियों के लिए कहता है कि "इसे वृथा नष्ट करना व वृथा हटाना ठीक नही है । हर एक को अपनी कमर में पवित्र कमरबन्द पहनना चाहिये । यह कुश्ती पवित्र धर्म का चिन्ह है" ।

"According to thy state of mind.. so will thou

suffer or enjoy. From good, thou wilt find a good result, and none ever reaped honour from evil action" (P. 517)

भावार्थ—अपने मत की स्थिति के अनुसार तुम दुख या सुख भोगोगे। भलाई से अच्छा फल पाओगे। किसी ने बुरे काम से सम्मान नहीं पाया है।

"जो कोई जानवरों को मारने की भलामन करता है उसको होरमजद बुरा समझते हैं" (अवस्ता गाथा ३२-१२ ट्रैक्ट नं० १२ पारसी वेजीटेरियन टेम्परेन्स सोसायटी नं० २४-२८ पारसी बाजार स्ट्रीट फोर्ट बम्बई)

"दाना और अनाज मनुष्यों की खूराक है, घास चारा जानवरों के लिये खूराक है" (अवस्ता वन्दीदाद ५ : २० ऊपर का ट्रैक्ट)

नोट—जैनधर्म में जगत अनादि अनंत अकृत्रिम माना है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश, यह ६ मूल द्रव्य अनादि अनन्त हैं। परमात्मा निर्विकार ज्ञानानन्दमई है, वह न पैदा करता है और न नष्ट करता है। अमूर्तीक परमात्मा से मूर्तीक जगत बिना समान उपादान कारण के नहीं हो सकता; यही बड़ा भारी अन्तर है।

ईसाई व मुसलमान मत कर्तावाद में गर्भित हैं। इस तरह दुनिया के प्रचलित मतों से जैन दर्शन की भिन्नता है जो आगे के कथन से पाठकों को भली प्रकार प्रगट हो जायेगी। यहां तो संक्षेप में बताई गई है।

११. मोक्ष का स्वरूप व महत्व

"बन्ध हेत्व भावनिर्जराभ्यां कृत्स्न कर्म विप्र मोक्षोमोक्षः"
(तत्वार्थसूत्र अध्याय १०। २)

भावार्थ—कर्म-बंध के सब कारणों के मिट जाने पर तथा पूर्व में बांधे हुए पाप पुण्य मई कर्मों की निर्जरा या त्याग हो जाने पर सर्व प्रकार के कर्मों से जो छूट जाना है, वही मोक्ष है।

मोक्ष-प्राप्त आत्मायें सिद्ध कहलाती हैं। उनमें आत्मा के अनन्त गुण सब प्रगट हो जाते हैं। उनका निवास लोक के अग्रभाग में रहता है। वे अपने अन्तिम शरीर के आकार प्रमाण निश्चल आत्मस्थ रहते है *।

---

* आठ कर्म संसारी जीवों के थे, उनके चले जाने पर नीचे लिखे आठ गुण प्रकट हो जाते हैं:—

ज्ञानावरण हानान्ते केवलज्ञान शालिनः।
दर्शनावरणच्छेदा दुद्यत्केवल दर्शनः॥ ३७ ॥
वेदनीय समुच्छेदाद व्यावाधत्त्व माश्रिताः।
मोहनीय समुच्छेदात्सम्यक्त्व मचलंश्रिताः॥ ३८ ॥
नामकर्मं समुच्छेदात्परमं सौक्ष्म्यमाश्रिताः।
आयुः कर्मं समुच्छेदादवगाहन शालिनः॥ ३९ ॥
गोत्र कर्म समुच्छेदात्सदाऽगौरव लाघवाः।
अन्तराय समुच्छेदादनन्तवीर्यं माश्रिताः॥ ४० ॥
दग्धे बीजे यथात्यन्तं प्रादुर्भवति नांकुरः।
कर्म बीजे तथा दग्धे न रोहति भवांकुरः॥ ७ ॥

मुक्तावस्था में आत्माऐं निरंतर परम आनंद मे मग्न रहती हैं। उनके कोई चिन्ता, रागादिभाव नहीं होते है। एक योगी जैसे संसार के प्रपंच से हटा हुआ एकांत में स्वरूप की समाधि मे गुप्त रह कर स्वात्मानंद का लाभ करता है उसी तरह वे निरंतर स्वात्मा में लीन रहते हुए आत्मानंद का लाभ करते हैं।

वे परम पवित्र, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा परम निराकुल हैं। वे किसी को न बनाते न बिगाड़ते, न किसी को सुखी व दुखी करते हैं। कहा है—

अट्ठविय कम्म वियला सोदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठ गुण किदकिचा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा॥

(गोम्मटसार जीवकांड)

भावार्थ—सिद्ध आत्माऐं आठ कर्म रहित, परमशीतल,

आकार भावतोऽभावो न चैतस्य प्रसज्यते।
अनन्तर परित्यक्त शरीराकार धारिणः॥ १५॥

(तत्वार्थसार—मोक्षतत्व)

भावार्थ—ज्ञानावरणीय कर्मों के नाश से अनन्त ज्ञान, दर्शनावरणीय के नाश से अनन्त दर्शन, वेदनीय के नाश से बाधा रहित पना, मोहनीय के नाश से अचल सम्यक्त्व या श्रद्धान, नाम कर्म के नाश से परम सूक्ष्मता, आयुकर्म के नाश से अवगाहन गुण, गोत्र कर्म के नाश से हलके भारीपने से रहितपना और अन्तराय के नाश से अनन्तवीर्य, यह सब गुण सिद्धों के प्रगट हो जाते हैं। जैसे जला हुआ बीज फिर नहीं उगता है वैसे कर्म बंध के कारणों के मिट जाने पर सिद्ध जीव के फिर संसार नहीं होता है। शरीर के छूट जाने पर उनका आकार बना रहता है, वह छोड़े हुये शरीर के प्रमाण होता है।

निर्मल, अविनाशी, आठ गुण सहित, कृतकृत्य तथा लोक के अग्रभाग में रहने वाले होते हैं।

१२. मोक्ष का मार्ग रत्नत्रय है

ऊपर कहे हुए मोक्ष के पाने का उपाय सम्यग्दर्शन (सच्चा विश्वास), सम्यग्ज्ञान (सच्चाज्ञान) और सम्यक् चारित्र (सच्चा आचरण) इन तीनों की एकता होना है ❀। इसी को **रत्नत्रय धर्म** कहते हैं। बिना रुचि के ज्ञान पक्का नहीं होता। बिना पक्के ज्ञान के पक्का आचरण नहीं होता। पर्वत के शिखर पर जाने के मार्ग का श्रद्धान व ज्ञान होने पर जब उस पर चलेंगे तब ही शिखर पर पहुंच सकेंगे। तीनो के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता है; तब मोक्ष की सिद्धि भी नहीं हो सकती है।

इस रत्नत्रय के दो भेद हैं—(१) निश्चय रत्नत्रय (२) व्यवहार रत्नत्रय। अपने ही आत्मा के असली स्वभाव का श्रद्धान, ज्ञान तथा उसमें लीनता निश्चय रत्नत्रय है तथा जीवादि सात तत्वो का व सच्चे देव, गुरु, धर्म का श्रद्धान व ज्ञान तथा साधु या श्रावक गृहस्थ का हिंसादि पापो से छूटना व्यवहार रत्नत्रय है। मोक्ष के लिए साक्षात् साधन निश्चय रत्नत्रय है जब कि उसका निमित्त या सहायक साधन व्यवहार रत्नत्रय है †।

❀ सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः ॥ १ ॥
(तत्वार्थसूत्र १ अ०)

† आयारादी णाणं जीवादी दंसणं च विण्णेयं।
छज्जीवाणं रक्खा भणदि चरित्तं तु ववहारो ॥ २९४ ॥

१३. निश्चयनय व्यवहारनय †

जब तक हम अपने आत्मा को न पहिचानेंगे तब तक हम आत्मा का ज्ञान व विश्वास नहीं कर सकते। आत्मा का ज्ञान निश्चयनय और व्यवहारनय दोनों से करना चाहिए। जो पदार्थ का असली स्वभाव वर्णन करे वह निश्चयनय है। जो पदार्थ को किसी कारण से भेद रूप कहे या उसकी अशुद्ध अवस्था का वर्णन करे वह व्यवहारनय है। एक रुई का बना हुआ रूमाल मैला हो गया है। जो निश्चयनय से यह जानता है कि रूमाल रुई का बना स्वभाव से सफेद है और व्यवहारनय से जानता है कि यह मैल चढ़ने से मैला है

आदाखु मज्झणाणे आदा मे दंसणे चरित्तेय।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे ॥ २९५ ॥

(समयसार)

भावार्थ—जीवादि का श्रद्धान, आचारांगादि का ज्ञान व पृथ्वी आदि छः कायों की रक्षा, व्यवहार रत्नत्रय है। आत्मा ही का ज्ञान, श्रद्धान, चारित्र व वही त्याग रूप है, संवर रूप है, योग रूप है, ऐसा स्वानुभव निश्चय रत्नत्रय है।

† निश्चयमिह भूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थम्।
भूतार्थ बोध विमुखः प्रायः सर्वोऽपि संसारः ॥
व्यवहार निश्चयौयः प्रबुध्य तत्त्वेन भवति मध्यस्थः।
प्राप्नोति देशनायाः सएवफल मविकलं शिष्यः ॥

(पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय ८)

भावार्थ—निश्चयनय सत्य असली पदार्थ को व व्यवहारनय

वही रूमाल को धोकर साफ कर सकता है। उसी तरह से जो निश्चयनय से अपने आत्मा के स्वभाव को परमात्मा के समान शुद्ध ज्ञानानंदमय अमूर्तीक अविकार जानता है और व्यवहारनय से पाप पुण्यमय कर्मों के बन्धन के कारण "मेरा आत्मा अशुद्ध है" ऐसा जानता है वही आत्मा की शुद्धि का प्रयत्न कर सकता है। इस लिए यह दोनो नय या अपेक्षा जरूरी हैं। नाटक में एक ब्राह्मण का पुत्र राजा का पार्ट खेलते हुए व्यवहारनय से अपने को राजा तथा निश्चयनय से अपने को ब्राह्मण जान रहा है, तब ही वह पार्ट होने के पीछे राजपना छोड़ असली ब्राह्मण के समान आचरण करने लगता है।

१४. प्रमाण, नय और स्याद्वाद

जिस ज्ञान से पदार्थ को पूर्ण जाने वह प्रमाण है व जिस ज्ञान से उस के कुछ अन्श को जाने वह नय है।

प्रमाण सम्यग्ज्ञान अर्थात् संशय, विपर्यय (उल्टे) व अनध्यवसाय (बेपरवाही) रहित ज्ञान को कहते हैं, उसके निम्न पांच भेद हैं:—

(१) **मतिज्ञान**—जो स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और

अभूतार्थ स्वरूप को बताती है—अर्थात् जो दूसरे निमित्तों से द्रव्य का विभाव परिणाम हुआ है, उसको व्यवहारनय बताती है। ये संसारी प्राणी प्रायः सच्चे असली वस्तु के स्वरूप को नहीं जानते हैं। जो कोई व्यवहार निश्चय दोनों को ठीक ठीक समझ कर वीतरागी हो जाता है वही शिष्य जिनवाणी के पूर्ण फल को पाता है।

कर्ण तथा मन से सीधा पदार्थ को जाने । जैसे कान से शब्द सुनना, रसना से रोटी को चखना आदि।

(२) श्रुतज्ञान—मतिज्ञान पूर्वक जो जाना है उसके द्वारा अन्य पदार्थ को जानना श्रुतज्ञान है। जैसे रोटी शब्द से आटे की बनी हुई रोटी का ज्ञान ।

ये दोनों ज्ञान परोक्ष प्रमाण हैं क्योंकि इन्द्रियों की तथा मन की सहायता से होते हैं।

(३) अवधिज्ञान—जिससे आत्मा स्वयं द्रव्य क्षेत्रादि की मर्यादा से रूपी पदार्थों और संसारी जीवो को, भूत और भविष्य के व दूर क्षेत्र को जान लेता है।

(४) मनःपर्ययज्ञान—जिससे आत्मा स्वयं दूसरे के मन मे तिष्ठे, किन्हीं भी सूक्ष्म रूपी-पदार्थों को जान लेता है।

(५) केवलज्ञान—जिससे सर्व पदार्थों की सर्व पर्यायो को एक समय में बिना क्रम के आत्मा जानता है।

ये पिछये तीन ज्ञान प्रत्यक्ष हैं, अर्थात् आत्मा बिना पर की सहायता के जानता है। ❀

नयों के बहुत भेद हैं। लोक में व्यवहार चलाने के लिये सात नय प्रसिद्ध है—

(१) नैगमनय—जो भूत भविष्यत की बात को संक-

❀ मति श्रुतावधि मनःपर्यय केवलानि ज्ञानम् ॥९॥ आद्ये परोक्षम् ॥११॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥ (तत्वार्थ सूत्र अ० १)

रूप करके वर्तमान में कहे। जैसे कहना कि आज श्री महावीर स्वामी मोक्ष गये।

(२) **संग्रहनय**—जो एक बात से उस जाति के बहुत से पदार्थों का ज्ञान करा दे। जैसे जीव चेतना मय है, इस मे सर्व जीवों का कथन हो गया।

(३) **व्यवहारनय**—संग्रहनय से जो कहा उसके भेदो का कहना जिससे हो। जैसे जीव संसारी और मुक्त दो तरह के हैं।

(४) **ऋजुसूत्रनय**—जो वर्तमान अवस्था को कहे। जैसे राजा को राजा कहना।

(५) **शब्दनय**—जो व्याकरण की रीति से शब्द को कहे। जैसे पुल्लिग द्वारा शब्द को स्त्री के अर्थ में कहना।

(६) **समभिरूढ़नय**—जो शब्द का अर्थ न घटते हुए भी किसी पदार्थ के लिये ही किसी शब्द को लोक मर्यादा के अनुसार प्रयोग करे। जैसे गाय को गौ कहना।

(७) **एवंभूतनय**—जिस पदार्थ के लिये जितने शब्द हो उनमें से जब वह जिस शब्द के अर्थ के अनुसार क्रिया करता हो तब वह ही कहना। जैसे दुबली स्त्री को शब्द अबला कहना। †

स्याद्वाद—स्यात् अर्थात् किसी अपेक्षा से वाद अर्थात् कहना सो स्याद्वाद है। एक पदार्थमें बहुतसे विरोधी सरीखे

---

† नैगम संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढैवंभूतानयाः ॥ ३३ ॥ (तत्वार्थ सूत्र अ० १,)

स्वभाव भी होते है। इन सबका वर्णन एक समय में हो नहीं सकता। एक २ ही स्वभावका होसकता है। तब जिस स्वभाव को कहना हो उसमे स्यात् यानी कथंचित् या किसी अपेक्षा से (from some point of view) यह ऐसा है कहना सो स्याद्वाद है। जैसे एक पुरुष एक ही समय मे पिता, पुत्र, भाई, भानजा, मामा आदि अनेक रूप है, तब कहना कि स्यात् पिता है अर्थात् किसी अपेक्षा से (अपने पुत्र की दृष्टि से पिता है, स्यात्पुत्रः; किसी अपेक्षा से (अपने पिता की दृष्टि से) पुत्र है। स्यात् भ्राता; अपने भाई की अपेक्षा भाई है; इत्यादि।

इसी तरह यह आत्मा अस्ति स्वभाव, नास्ति स्वभाव, नित्य स्वभाव, अनित्य स्वभाव, एक स्वभाव, अनेक स्वभाव आदि विरोधी सरीखे स्वभावो का धारक है। इनमें से हर एक दो स्वभावो को समझाने के लिये इस तरह कहेंगे—

स्यात् अस्ति स्वभावः—अर्थात् किसी अपेक्षा से (अपने आत्मामई द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव या स्वरूप की दृष्टि से) आत्मा मे अपनी सत्ता या मौजूदगी है।

स्यात् नास्ति स्वभावः—अर्थात किसी अपेक्षा से (पर-द्रव्यों के द्रव्य क्षेत्रादि की दृष्टि से) आत्मा में पर द्रव्यों की असत्ता यानी ग़ैर मौजूदगी है।

स्यात् नित्य स्वभावः—अर्थात् किसी अपेक्षा से (अपने द्रव्यपने और गुणों के सदा बने रहने के कारण) आत्मा-नित्य या अविनाशी स्वभाव है।

स्यात् अनित्य स्वभाव:—अर्थात अपनी अवस्थाओ के बदलने को अपेक्षा आत्मा अनित्य या क्षणिक स्वभाव है।

स्यात् एक स्वभाव:—अर्थात आत्मा एक अखण्ड है, इससे एक स्वभाव है।

स्यात् अनेक स्वभाव:—अर्थात् आत्मा अनन्तगुणो को सर्वांश रखता है, इससे अनेक स्वभाव है।

इन्हीं दो स्वभावों को समझाने के लिये **सातभंग** कहे जाते है, जो शिष्य के सात प्रश्नों के उत्तर हैं। जैसे :—

(१) क्या आत्मा नित्य है ? उत्तर—हाँ ! आत्मा सदा बना रहता है इससे नित्य है।

(२) क्या आत्मा अनित्य है ? उत्तर – हां ! आत्मा अवस्थाओं को बदलता रहता है, इससे अनित्य भी है।

(३) क्या आत्मा नित्य अनित्य दोनों है ? उत्तर—हां ! आत्मा एक समय में नित्य अनित्य दोनो स्वभावों को रखता है। जैसे—सोने की अंगूठी तोड़ कर बाली बनाई जावे, तब क्योंकि सोना वही है, इससे वह नित्य है; परंतु अंगूठी बदल कर बाली बन गई, इससे अवस्था क्षणिक है। यहां दोनो बातें एक समय में ही मौजूद हैं।

(४) क्या हम दोनो को एक साथ नहीं कह सकते ? उत्तर—हां, शब्दों मे शक्ति न होने से दोनो एक साथ नहीं कह सकते; इसी से आत्मा अवक्तव्य स्वरूप है।

(५) क्या अवक्तव्य होते हुए नित्य है ?—उत्तर हां, जिस समय अवक्तव्य है उसी समय नित्य भी है।

(६) क्या अवक्तव्य होते हुए अनित्य है ? उत्तर—हां, जिस समय अवक्तव्य है उसी समय अनित्य भी है।

(७) क्या जिस समय अवक्तव्य है उसी समय नित्य अनित्य दोनों है ? उत्तर—हाँ, जिस समय अवक्तव्य है उसी समय नित्य अनित्य भी है।

इसी को इन शब्दों में कहेंगे—

(१) स्यात् आत्मा नित्य स्वभावः (२) स्यात् अनित्य स्वभावः (३) स्यात् नित्यानित्य स्वभावः (४) स्यात् अवक्तव्य स्वभावः (५) स्यात् नित्यः अवक्तव्य स्वभावः (६) स्यात् अनित्यः अवक्तव्य स्वभावः (७) स्यात् नित्यानित्यः अवक्तव्य स्वभावः। *

---

* वाक्येष्वनेकान्तद्योती गम्यम्प्रतिविशेषकः ।
स्यान्निपातोऽर्थ योगित्वात्तव केवलिनामपि ॥ १०३ ॥
स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात्किंवृत्तचिद्विधिः ।
सप्त भंग नयापेक्षो हेयादेय विशेषकः ॥ १०४ ॥
(आप्तमीमांसा)

भावार्थ—स्यात् एक अव्यय है जिसके अर्थ 'किसी अपेक्षा से' है। यह स्यात् शब्द वाक्यों में जोड़ने से यह दिखलाता है कि इस पदार्थ में अनेक धर्म या स्वभाव हैं तथा वह वाक्य से जिस स्वभाव को कहता है उसकी मुख्यता करता है और स्वभावों को गौण करता है ऐसा आप्त—केवली—महाराजों का मत है। यह स्याद्वाद सिद्धान्त सर्वथा एकान्त का त्याग कराने वाला है अर्थात् वस्तु अनेक धर्म स्वभाव है,

जब तक स्याद्वाद से पदार्थ को न समझेंगे, तब तक हम पदार्थ को ठीक नहीं समझ सकते। यदि हम ऐसा कहें कि आत्मा बिलकुल नित्य ही है, तब वह जैसा का तैसा रहेगा, रागद्वेषी न होगा। न कर्मों को बांधेगा, न संसार मे भ्रमण करेगा, न मुक्त होगा और यदि कहें कि आत्मा बिलकुल अनित्य ही है तब क्षणमात्र मे नष्ट होने से उसका पाप पुण्य भी नष्ट होगा, वह अपने कार्य के फल को नहीं पा सकेगा, फिर यह ज्ञान भी न रहेगा कि मैं बालक था—सो ही मैं जवान हूं। इसलिये जब ऐसा माना जायगा कि आत्मा द्रव्य व गुणों की दृष्टि से नित्य है, परन्तु अवस्था बदलने की अपेक्षा अनित्य है; तब कोई विरोध नहीं आ सकता है।

तब ही यह कहना होगा, कि यद्यपि मैं बालकपने को छोड़कर युवा हो गया हूँ, तथापि मै हूं वही, जो बालक था। ऐसा मानने से ही यह आत्मा रागद्वेषी होता हुआ जब रागद्वेष अवस्था को छोड़ता है तब वीतरागी होकर, आप स्वयं अशुद्ध भावो से शुद्धभाव में बदल कर मुक्त हो जाता है। नित्यानित्य मानने से ही यह कह सकते हैं कि श्रीमहावीर स्वामी का आत्मा जो गृहस्थ अवस्था में क्षत्री नाथवंशी था, सो अब सिद्ध पर-

---

ऐसा न मानकर एक रूप ही है, इस मिथ्याभाव को हटाने वाला है। इसी से किसी अपेक्षा से ऐसा है, ऐसी विधि करने वाला है तथा मुख्य गौण की अपेक्षा से सात भंग से कहने वाला है। जिस बात को उस समय ज़रूरी समझता है उसको ग्रहण करता है, दूसरी बातों को उस समय छोड़ देता है।

मात्मा हो गया है। इसी तरह यदि पदार्थ मे अपना भावपना तथा दूसरो का अभावपना न हो तो हम उस पदार्थ को दूसरो से भिन्न समझ ही नहीं सकते। हम जानते हैं कि हम अमरचंद है किन्तु खुशालचंद, दीनानाथ, कृष्णचंद्र, लक्ष्मणलाल आदि नही हैं-अर्थात् हमारे में अमरचंदपने का भाव है, किन्तु खुशहालचंद आदि का अभाव है इससे हम भाव अभाव या अस्ति नास्ति स्वरूप एक ही काल मे हैं। "हम आत्मा हैं" ऐसा तब ही कह सकते हैं, जब यह ज्ञान हो कि हमारे आत्मा मे हमारी आत्मापने का अस्तित्व है, किन्तु अपनी आत्मा के सिवाय अन्य सर्व आत्माओं का व अनात्माओं का हम मे नास्तित्व है। पदार्थ का सच्चा ज्ञान कराने के लिये यह सिद्धान्त दर्पण के समान है। जैसा श्री राजवार्तिक में कहा है—

"स्वपरादानापोहन व्यवस्था पाद्यंखलु वस्तुनो वस्तुत्वम्"

भावार्थ—वस्तु का वस्तुपना यही है जो अपनेपने को ग्रहण किये हुए है और तब ही परपने से रहित है।

१५. स्याद्वाद पर अजैन विद्वानों का मत

कुछ अजैन शास्त्रों में स्याद्वाद का ठीक स्वरूप न बता कर और उसे संशयवाद व विपरीतवाद कह कर खण्डन किया गया है, परन्तु जिन आधुनिक अजैन विद्वानों ने इस पर मनन किया है उन्होंने इसकी बहुत प्रशंसा की है। जैसे डॉ० हर्मनजैकोबी, स्व० शतीशचन्द्र विद्याभूषण, प्रोफेसर आनन्दशंकर ध्रुव प्रिन्सिपल हिन्दू विश्वविद्यालय काशी, आनरेबल डा० गङ्गा-

नाथझा महामहोपाध्याय वाइस चैन्सलर अलाहाबाद यूनिवर्सिटी, महात्मा मोहनदास कर्मचंद गांधी, पूना के प्रसिद्ध सर रामकृष्ण गोपाल, डाक्टर भण्डारकर एम० ए० आदि। डॉ० भण्डारकर ऐसा कहते हैं—

There are two ways of looking at things—one called *DRAVYARTHIKNAYA* and the other *PARYAYARTHIKNAYA*. The production of a jar is the production of something, not previously existing; if we take the latter point of view, i. e. as Paryaya or modification; while it is not the production of something not previously existing, when we look at it from the former point of view, i. e. as a Dravya or substance.

So when a soul becomes through his merits or demerits, a god, a man or a denizen of hell, from the first point of view, the being is the same, but from the second he is not second, i. e. different in each case. So that you can confirm or deny something of a thing at one and the same time.

This leads to the celebrated *Sapta Bhangi Naya* or the seven modes of assertion.

You can confirm existence of a thing from one point of view (Syad Asti), deny it from another (Syad Nasti), and affirm both existe-

nce and non-existence with reference to it at different times (Syad Astinasti). If you should think of affirming both existence and non-existence at the same time from the same point of view, you must say that thing can not be spoken of (Syad Avaktavya)………It is not meant by these modes as that there is no certainty or that we have to deal with probabilities only, as some scholars have thought. All that is implied is that every assertion which is true is true only under certain conditions of space, time etc.

भावार्थ—पदार्थों के विचार करने के दो मार्ग हैं—एक द्रव्यार्थिकनय दूसरा पर्यायार्थिकनय। जैसे मिट्टी का घड़ा बना, तब जो पहिले न था सो बना, ऐसा कहेंगे तो यह हम अवस्था की अपेक्षा कहेंगे तथा जब हम ही द्रव्य की दृष्टि से विचारेंगे तो कहेंगे कि यह पहले न था, सो नहीं है; किन्तु वही मिट्टी है। इसी तरह जब कोई जीव अपने पाप पुण्य के कारण देव, मनुष्य या नारकी होता है, वह द्रव्य की दृष्टि से वही है, किन्तु पर्याय की दृष्टि से भिन्न भिन्न ही है। इस तरह तुम एक ही समय में किसी वस्तु मे विधिनिषेध सिद्ध कर सकते हो। इस को समझाने के लिये **सप्तभङ्गीनय** है या कहने के सात मार्ग हैं। तुम किसी अपेक्षा से किसी वस्तु की सत्ता कह सकते हो, यह **स्यादस्ति** है; दूसरी अपेक्षा से उस का निषेध कर सकते हो, यह **स्यान्नास्ति** है; विधि और निषेध दोनों

क्रम से कह सकते हो, यह स्यादस्तिनास्ति है; यदि दोनों अस्ति नास्ति को एक साथ एक समय में कहना चाहो तो नहीं कह सकते, यह स्यादवक्तव्य है………… ……। इन भङ्गों के कहने का मतलब यह नहीं है कि इन मे निश्चयपना नहीं है या हम मात्र संभव रूप कल्पनाएं करते है। जैसा कुछ विद्वानो ने समझा है, इस सब से यह भाव है कि जो कुछ कहा जाता है वह किसी द्रव्य, क्षेत्र, कालादि की अपेक्षा से सत्य है। (जैनधर्मनी माहिती हीराचन्द नेमचन्द कृत सन् १६११ में छपी पत्र ५६)

डाक्टर जैकोबी कहते हैं—"इस स्याद्वाद से सर्व सत्य विचारों का द्वार खुल सकता है" (देखो जैन दर्शन गुजराती जैन पत्र भावनगर सं० १९७० पत्र १३३)

प्रोफैसर फणिभूषण अधिकारी एम० ए० हिन्दू विश्व· विद्यालय बनारस अपने व्याख्यान ता० २६ अप्रैल सन् २५ ई० में कहते हैं—

It is this intellectual attitude of impartia· lity, without which no scientific or philosophical researches can be successful, is what Syadvad stands for.

भावार्थ—यह निष्पक्ष बुद्धिवाद है जिसके बिना कोई वैज्ञा· निक या सैद्धान्तिक खोजें पूर्ण नहीं हो सकतो है; इसीलिए स्याद्वाद है।

Even learned Shankaracharya is not free from the charge of injustice that he has done to

the doctrine.........It emphasis the fact that no single view of the universe or of any part of it would be complete by itself.

भावार्थ—विद्वान शङ्कराचार्य भी उस अन्याय के दोष से मुक्त नहीं है जो उन्होंने इस सिद्धान्त के साथ किया है। यह स्याद्वाद इस बात पर जोर देता है कि विश्व की या इस के किसी भाग की एक ही दृष्टि अपने से पूर्ण नहीं है।

There will always remain the possibilities of viewing it from otherstand-points.

भावार्थ—उस पदार्थ मे दूसरी अपेक्षाओं से देखने की संभावनाएं सदा रहेगी।

१६. सम्यग्दर्शन का स्वरूप

सम्यग्दर्शन इस आत्मा का एक ऐसा गुण है जिसके प्रकट होने पर आत्मा के स्वरूप का ज्ञान होकर आत्मानन्द का लाभ होता है। जहां आत्मा के स्वरूप के स्वाद की रुचि हो जाती है वही निश्चय-सम्यग्दर्शन है। इस की प्राप्ति के लिये मोक्षमार्ग मे प्रयोजनीय जीवादि सात तत्त्वों का श्रद्धान तथा इस श्रद्धान के लिये सच्चे देव, गुरु, धर्म या शास्त्र का श्रद्धान व्यवहार-सम्यग्दर्शन है।

निश्चय सम्यग्दर्शन के बाधक अनन्तानुबन्धी (जो बहुत गाढ़े चिपके रहने वाले हैं) क्रोध, मान, माया लोभ तथा मिथ्या-दर्शन, यह पांच कर्म हैं। जब इन का असर हटता है,

तब ही निश्चय-सम्यग्दर्शन हो जाता है । इस कार्य के लिए तत्वों का विचार उपयोगी है। मुख्यता से आत्मतत्व का विचार करने योग्य है। ×

१७. जैनों के लिये पूजनीय देव, शास्त्र, गुरु

तत्वज्ञान होने के लिये यह आवश्यक है कि हमको उस आदर्शआत्मा का ज्ञान हो जो तत्वज्ञान की पूर्ण मूर्ति हो; ऐसी

× धर्मः सम्यक्त्व मात्रात्मा शुद्ध स्वानुभवोऽथवा ।
तत्फलं सुखमत्यक्ष मक्षयं क्षायिकं चयत् ॥४३२॥

(पंचाध्यायी द्वि०)

भावार्थ—सम्यग्दर्शनमई आत्मा ही धर्म है अथवा वह शुद्ध आत्मा का अनुभव है । इसी का फल आत्मीक, अविनाशी सुख का लाभ है ।

छप्पंचणव विहाणं अत्थाणं जिणवरो वइट्ठाणं ।
आणाए अहिगमेणय सद्दहणं होइ सम्मत्तं ॥५६०॥

(गोम्मटसार जीवकांड)

भावार्थ—छः द्रव्य, पांच अस्तिकाय व नव पदार्थों का जैसा जिनेन्द्र भगवान ने उपदेश किया है उसी प्रमाण आज्ञा से अथवा प्रमाण नय के द्वारा समझ कर श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है । इन सब का स्वरूप आगे कहा जायगा ।

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम् ।
त्रिमूढापोढमष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥४॥

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार)

भावार्थ—यथार्थ देव, शास्त्र, गुरु का तीन मूढ़ता और आठ मद छोड़कर व आठ अङ्ग सहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है ।

ही आत्मा को देव कहते है। इम संसारी प्राणियों में अज्ञान और क्रोध, मान, माया, लोभ ये दोष लगे है। जिनके पास यह दोष नहीं हैं वे हो सर्वज्ञ सर्वदर्शी और वोतराग परम शान्त देव हैं। उनके दो भेद है; एक सकल या शरीर सहित परमात्मा, दूसरे निकल या शरीर रहित परमात्मा। सकल परमात्मा को अरहन्त कहते हैं। वे जीवन्मुक्त परमात्मा आयु पर्यन्त धर्मोपदेश करते हैं। जब शरोर रहित हो जाते है तब वे शुद्ध आत्मा सिद्ध परमात्मा कहलाते हैं। *

अरहन्त शरीर सहित होते हैं तब ही उनसे धर्म का उपदेश मिल सकता है। शरीर रहित परमात्मा वचन रूप उपदेश नहीं दे सकता है।

---

* णट्ठ चदु घाइ कम्मो दंसण सुहणाण वीरियमइयो।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो॥
(द्रव्यसंग्रह)

भावार्थ—जिन्होंने ज्ञानावरणीय, दर्शनावर्णीय, मोहनीय और अन्तराय, इन चार घातिया कर्मों का नाश कर दिया है और जो अनन्त-दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख, अनन्तबलधारी हैं, परम सुंदर शरीर मे विराजित हैं, वीतराग आत्मा हैं, सो अरहन्त हैं; ऐसा विचारना चाहिये।

णट्ठट्ठ कम्म देहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरुसायारो अप्पा सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो॥
(द्रव्यसंग्रह)

भावार्थ—जिन्होंने आठों कर्मों को और शरीर को नष्ट कर दिया है, जो लोक अलोक के ज्ञाता दृष्टा हैं, पुरुषाकार आत्मा है व लोक के शिखर पर विराजमान हैं, सो ही सिद्ध है।

जो परमात्मा होने के लिये अज्ञान और कषायो के मेटने का उद्यम करते हों और रात दिन इसी आत्मोन्नति में लीन हों, अपने पास वस्त्र पैसा बर्तन न रखते हो, नग्न हों, मात्र जीव रक्षा के लिये मोर पंख की पीछी और शौच के लिये जल लेने को काठ का कमंडल रखते हों, वे ही साधु गुरु है। इनमे जो अन्य साधुओ को मार्ग पर चलाते है, उन साधुओ को आचार्य कहते है। जो साधु शास्त्र ज्ञान कराते है, उनको उपाध्याय कहते हैं। शेष साधु मात्र साधु कहलाते हैं। †

ऐसे ही साधु की सङ्गति से सच्चे धर्म का उपदेश मिल सकता है। इन साधुओ ने अरहन्त के उपदेश के अनुसार जो शास्त्र रचे हों, जिनमें आत्मोन्नति का ही उपदेश हो, वे ही सच्चे शास्त्र हैं। जो उपदेश तीर्थंकरो ने दिया, उसको सुनकर उनके मुख्य शिष्य गणधर ऋषि ने उसको बारह अङ्गो मे ग्रंथरूप रचा। उन अङ्गों के नाम ये है :—

(१) आचाराङ्ग—जिसमें मुनियो का आचरण है। इसके १८००० पद हैं।

---

† विषयाशावशातीतो निरारंभोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी सः प्रशस्यते ॥ १०

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार)

भावार्थ—जो पाँचों इन्द्रियो (स्पर्शन रसनादि) की इच्छाओं से दूर है, आरंभ व परिग्रह से रहित है, आत्मज्ञान व आत्मध्यान व तप में लीन है, वही तपस्वी गुरु है।

(२) सूत्रकृताङ्ग—इसमे सूत्ररूप से ज्ञान और धार्मिक रीतियों का वर्णन है। पद ३६००० हैं।

(३) स्थानाङ्ग—एक से ले अनेक भेद रूप जीव पुद्गलादि का कथन है। ४२००० पद हैं।

(४) समवायाङ्ग—इसमें द्रव्यादि की अपेक्षा एक दूसरे में सहयोग का कथन है। १६४००० पद हैं।

(५) व्याख्या प्रज्ञप्ति—इसमें ६०००० प्रश्नों के उत्तर हैं। २२८००० पद हैं।

(६) ज्ञातृधर्मकथाङ्ग—इसमें जीवादि द्रव्या का स्वभाव, रत्नत्रय व दशलक्षणरूप धर्म का स्वरूप तथा सांसारिक ज्ञानी पुरुषों सम्बन्धी धर्म कथाओं का निरूपण है। इसमें ५५६००० पद हैं।

(७) उपासकाध्ययनाङ्ग—इसमें गृहस्थों का चरित्र है। ११७०००० पद हैं।

(८) अन्तःकृद्दशाङ्ग—इसमें हर एक तीर्थङ्कर के समय जो दश दश मुनी उपसर्ग सह कर केवली हुए, उनका चरित्र है। २३२८००० पद हैं।

(९) अनुत्तरौपपादिकदशाङ्ग—इसमें हर एक तीर्थङ्कर के समय जो १० दश दश साधु उपसर्ग सह कर अनुत्तर विमानों में जन्मे, उनकी कथा है। ९२४४००० पद हैं।

(१०) प्रश्नव्याकरणाङ्ग—इसमें त्रिकाल सम्बन्धी अनेकानेक प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देने की विधि और उपाय

बताने रूप व्याख्यान तथा लोक और शास्त्र में प्रचलित शब्दों का निर्णय है। इसमे ९३१६००० पद हैं।

(११) विपाक सूत्राङ्ग—इसमें कर्मों के बन्ध व फलादि का कथन है। १८४००००० पद हैं।

(१२) दृष्टिप्रवादाङ्ग—इसमे ३६३ मतों का निरूपण व खंडन है। पूर्व आदि का कथन है। इसमें १०८६८५६००५ पद हैं।

जिनवाणी में ३३ व्यञ्जन, २७ स्वर व ४ अयोगवाह (जिह्वा मूलीय उपध्मानीय, अनुस्वार और विसर्ग) इस तरह सर्व ६४ अक्षरों को, असंयोगी, दो संयोगी, तीन संयोगी को आदि लेकर ६४ संयोगी तक जोड़ने से कुल अक्षरों का जोड़ ६४ दुओं (६४ ×२) को आपस मे गुणा करने से जो आवे उसमें एक कम करने से जितने अक्षर हो वे अक्षर १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ हैं। एक पद के १६३४८३०७८८८ अपुनरुक्त अक्षर हैं। इस लिये सर्व अक्षरों को भाग करने से कुल पद ११२८३५८००५ है। इन ही में १२ अङ्ग बांटे गये हैं। शेष ८०१०८१७५ अक्षरों में अङ्गवाह्य उत्तराध्ययन आदि १४ प्रकीर्णक है। यह लिखने मे नहीं आ सकते हैं। इनकी तो विशिष्ट ज्ञानी को व्युत्पत्ति ही होती है और इसी व्युत्पत्ति के अनुसार अन्तरङ्ग में पाठ भी हो जाता है। जैसे परीक्षा देने वाले छात्र को उत्तर कापी लिखने समय सर्व पुस्तक की व्युत्पत्ति जिह्वा पर रहती है। लिखित पुस्तकों से व्युत्पत्ति अत्यधिक है, अपरिमित है; किन्तु इन अङ्गो का अन्श लेकर लाखो शास्त्र रचे जाते है, अर्थात् सम्पूर्ण द्वादशाङ्ग तो

लिखने में आ नहीं सकता—थोड़ा सा लेख्य अन्श ही लिखा जाता है। ‡

श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे जो आचाराङ्ग नाम के अंग हैं, वे मूल नहीं हैं। उन की रचना श्रीयुत देवर्द्धिगण ने वीर सं० ९०० के अनुमान बल्लभीपुर (गुजरात) में की थी। दिगम्बर सम्प्रदाय में जिनवाणी चार भेदों में मिलती है।

(१) **प्रथमानुयोग**—इस मे २४ तीर्थंकरों आदि ६३ शलाका पुरुषों का इतिहास है।

(२) **करणानुयोग**—इस में गणित, ज्योतिष, लोका लोक, जीवों के भाव, कर्म बन्ध के भेद आदि का कथन है।

(३) **चरणानुयोग**—इस ं गृहस्थों के तथा मुनि के आचरण का वर्णन है।

(४) **द्रव्यानुयोग**—इस मे छः द्रव्य, सात तत्व आदि का कथन है।

ये ही जैनियों के चार वेद हैं। (देखो श्री "वृहत् जैन शब्दार्णव" भाग १, पृष्ठ १२१ कालम दूसरा)।

अब तक जो ग्रन्थ दि० जैनों में मिलते हैं, वे विक्रम सं ४९ मे प्रसिद्ध श्री कुंद कुंद महाराजकृत **पंचास्तिकाय, प्रवचनसार,**

---

‡ यह कथन न्यायाचार्य पं० माणिकचन्द जी द्वारा प्राप्त हुआ है। इन अङ्गों आदि की और भी विस्तृत व्याख्या देखने के लिये देखो "श्री वृहत् जैन शब्दार्णव कोष" भाग १, शब्द "अङ्ग प्रविष्ट श्रुतज्ञान" व "अङ्ग वाह्य श्रुतज्ञान" पृष्ठ ११९—१२१। (मिलने का पता—"चैतन्य" प्रेस, बिजनौर यू० पी०)।

समयसार, नियमसार, अष्ट पाहुड़ आदि हैं व उनके शिष्य सं० ८१ में प्रसिद्ध श्री उमास्वामीकृत तत्वार्थसूत्र मोक्ष शास्त्र अति प्राचीन है। आप्तमीमांसा, रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदि के कर्ता श्री स्वामी समन्तभद्र व इन दोनो आचार्यों के वचन परम माननीय हैं।

प्रथमानुयोग के प्रसिद्ध ग्रन्थ श्री जिनसेनाचार्य कृत महापुराण, द्वि० जिनसेन कृत हरिवंश पुराण, रविषेण आचार्य-कृत पद्मपुराण आदि हैं।

करणानुयोगके प्रसिद्ध ग्रंथ श्रीधवल, जयधवल, महा-धवल तथा श्री गोम्मटसार, त्रिलोकसार आदि हैं।

चरणानुयोग के प्रसिद्ध ग्रन्थ श्रीमूलाचार, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, चारित्रसार आदि हैं।

द्रव्यानुयोगके प्रसिद्ध ग्रन्थ समयसार, परमात्मप्रकाश सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक आदि हैं। *

ऊपर कहे प्रमाण देव शास्त्र गुरु का विश्वास करना,

---

* शास्त्र का लक्षण—

आप्तोपज्ञ मनुल्लंघ्यम दृष्टेष्ट विरोधकम्।
तत्वोपदेश कृत्सार्वं शास्त्रं का पथ घट्टनम् ॥ ९ ॥

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार)

भावार्थ—शास्त्र वह है जो आप्त अरहंत देव का कहा हो, खंडनीय न हो, प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण से बाधित न हो, आत्म-तत्वका उपदेशक हो, सर्व हितकारी हो व मिथ्या मार्ग का खण्डन करने वाला हो।

और जो इन गुणोंसे रहित हो उनको नहीं मानना, सो व्यवहार सम्यग्दर्शन है। इसी श्रद्धान के बलसे शास्त्राभ्यास करने से सात तत्वों का ज्ञान होता है। हमे इन तीनों को भक्ति सच्चे भावो से करना चाहिए। यही मोक्षमार्ग का सोपान है।

१८. देवपूजा का प्रयोजन

श्री अरहंत और सिद्ध परमात्माका पूजन करना अर्थात उनके गुणानुवाद गाना इसलिए नहीं है—कि हम उनको प्रसन्न करें। वे तो वीतराग है—न हमारी प्रशंसा से राजी हो हमे कुछ देते हैं, न हमारी निन्दासे नाराज हो हमारा कुछ बिगाड़ करते हैं। उनका पूजन केवल अपने भावों की शुद्धि के लिए ही किया जाता है।

यह नियम है कि गुणोके मननसे अपने भाव गुण-प्रेमी होते हैं व अवगुणोंके मनन से अपने भाव दोषी होते हैं। हमारे भावों से ही हमारा भला बुरा होता है। ये देव परम वीतराग हैं। इनकी भक्ति से हमारे भावो मे शान्ति आती है। भक्ति मई शान्तभावों से हमारे पाप कटते हैं और पुण्य का लाभ होता है। वास्तव मे जैनियो की देवपूजा वीर पूजा (Hero-Worship) है।

पूजा के दो भेद है—द्रव्यपूजा, भावपूजा।

जल चन्दनादि द्रव्यो का आश्रय लेकर भेंट चढ़ाना द्रव्यपूजा है। गुणोंका विचारना भाव पूजा है। गृहस्थो के लिये द्रव्य पूजा के द्वारा भाव पूजा का होना सुगम है। गृहस्थो का

चित्त सांसारिक बाधाओं मे खिंचा रहता है। इसलिए उनके मन को देवभक्ति मे जोड़ने के लिए आठ द्रव्यों के द्वारा आठ प्रकार भावनायें करनी योग्य हैं। जैसे—

१. जलसे—आगे भेंटरूप चढ़ाकर यह भावना करनी कि जन्म, जरा, मरण का रोग दूर हो।

२. चन्दन से—भव की आताप शान्त हो।

३. अक्षत से—अविनाशी गुणों का लाभ हो।

४. पुष्प से—काम विकार का नाश हो।

५. नैवेद्य से—क्षुधा रोग की शांति हो।

६. दीप से—मोह अन्धेरे का नाश हो।

७. धूप से—आठों कर्मों का नाश हो।

८. फल से—मोक्षरूपी फल प्राप्त हो।

यद्यपि पूजा की सामग्री धोने में कुछ आरम्भ करना होता है, परन्तु इस आरम्भ का गृहस्थी त्यागी नहीं है। इस आरम्भ के दोष के मुक़ाबले मे भावो की निर्मलता अत्यधिक होती है। जैसे किसी गाने वाले का मन बाजे की सुरताल की सहायता से लगता है, तब बाजों को बजाने का आरम्भ गानविद्या में मन लगने की अपेक्षा बहुत कम है। ❀

❀ न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ विवान्त वैरे।
तथापि ते पुण्य गुणस्मृतिर्नः, पुनातु चित्तं दुरितांजनेभ्यः ॥ ५७ ॥
पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य, सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।
दोषायनालं कणिका विषस्य नदूषिका शीत शिवाम्बुराशौ ॥ ५८ ॥
(स्वयम्भूस्तोत्र)

१६. मूर्तिस्थापन का हेतु

जो गृहस्थ देव-पूजा करें और जिस की पूजा करें उस की उपस्थिति न हो तो पूजा में उचितभाव नहीं लग सकता। भक्ति, बिना भक्ति योग्य वस्तु (Object of devotion) के भीतर से उमड़ती नहीं है। यदि जीवन्मुक्त परमात्मा या अरहन्त साक्षात मिलें तो हमें उनकी सेवा मे पूजा करनी चाहिये। यदि वह नहीं मिलें तो उनकी वैसी ही ध्यानाकार मूर्ति स्थापित कर उस मूर्ति के द्वारा परमात्मा की भक्ति करनी चाहिये। हमारे भावों में जैसा असर साक्षात् अरहन्त के ध्यान-मय वीतराग शरीर के दर्शन से होगा, वैसा ही असर उनकी ध्यानमय प्रतिष्ठित वीतराग मूर्ति के दर्शन से होगा। वास्तव मे ध्यान कैसा होता है व ध्यान के समय शान्ति कैसी होती है, इसको साक्षात् बताने वाली जैन लोगो की वस्त्राभरण रहित शांत

भावार्थ—आप वीतराग हैं, आपको हमारी पूजामे कोई अर्थ (प्रयोजन) नहीं है। हे नाथ! आप वैर रहित हैं इस से हमारी निन्दा से आप में द्वेष नहीं हो सकता, तो भी आपके पवित्र गुणों का स्मरण हमारे मनको पापरूपी मैल से साफ कर देता है। जो पूजने योग्य जिनेन्द्र को पूजा द्रव्य द्वारा करता है उसका अल्प आरम्भी दोष बहुत पुण्यके बंध होने की अपेक्षा बहुत ही अल्प है—हानिकर नहीं है, जिस तरह विष की एक कणी क्षीर समुद्र के जलको विषमय नहीं कर सकती।

मूर्ति है। जैसे जलादि द्रव्य भेंट देना, भावो की उज्ज्वलता मे कारण है; वैसे यह मूर्ति भी साधक है। ❀

❀ इत्यपृच्छदसौ चाह सत्यमिति वचस्तदा।
शृणु राजन्! जिनेन्द्रस्य चैत्यं चैत्यालयादिवा ॥ ४८ ॥
भवत्य चेतनं किंतु भव्यानां पुण्य बन्धने।
परिणाम समुत्पत्ति हेतुत्वात्कारणं भवेत् ॥ ४९ ॥
रागादि दोष हीनत्वादायुधा भरणादि कात्।
विमुख्यस्य प्रसन्नेन्दु कांति हासि मुखश्रियः ॥ ५० ॥
अपतिताक्षसूत्रस्य लोका लोक विलोकिनः।
कृतार्थत्वात्परित्यक्तजटादेः परमात्मनः ॥ ५१ ॥
जिनेन्द्रस्यालयांस्तस्य प्रतिमाश्चप्रपश्यतां।
भवेच्छुभाभिसंधानप्रकर्षो नान्यतस्तथा ॥ ५२ ॥
कारण द्वय सान्निध्यात्सर्वं कार्यं समुद्भवः।
तस्मात्तत्साधु विज्ञेयं पुण्य कारण कारणम् ॥ ५३ ॥

(उत्तर पुराण पर्व ७३)

भावार्थ—प्रतिमा सम्बन्धी प्रश्न करने पर मुनि कहने लगे—हे आनन्दराजा! यद्यपि यह जिनेन्द्र का प्रतिमा व मन्दिर अचेतन है तौ भी शुभ भावों की उत्पत्ति में निमित्त होने से पुण्यबंध में कारण हैं। जिनेन्द्ररागादि दोष रहित हैं; शस्त्र, आभूषण वर्जित हैं, प्रसन्न चन्द्रसमान मुख की शोभा को रखते है, इन्द्रियों के ज्ञान से रहित हैं, लोक अलोक को देखने वाले हैं, कृतकृत्य हैं, जटा आदि से रहित हैं; ऐसे परमात्मा की प्रतिमा व मंदिर के दर्शन करने से जैसे भावों की उत्कृष्टता होती है वैसी अन्य मूर्ति आदि से नहीं होती। सर्व कार्य अन्तरङ्ग, बहिरङ्ग, दो कारणों से होते हैं। इसलिये यह अच्छी तरह समझलो कि यह मूर्ति पुण्य प्राप्ति के कारण शुभभावों के होने में निमित्त कारण है।

२०, मूर्ति स्थापना सदा से है नवीन नहीं

लोक में किसी को पहिचानने के लिये नाम रखना जरूरी है। वैसे उसके पास न होते हुये उसके स्वरूप को जानने के लिये उसकी मूर्ति या तस्वीर जरूरी है। मकान बनाना, चित्रपट खींचना, पत्र लिखना, ये सब बातें जगत में जहां जहां व जब जब कर्मभूमि होती है, आवश्यक हैं। जगत मे सदा ही से क्षत्रिय व वैश्यादि के कर्म हैं। इसलिये सांकेतिक चिन्हों को भी प्राप्ति सदा ही से है। घट को लिखा देखकर घट का बोध हो जाता है। यदि पहिले नक़शा न खींचा जाय तो मकान नहीं बन सकता है। दूर देश में बैठे हुये स्त्री पुरुषों के स्वरूप का ज्ञान चित्रों से होता रहता है। इसलिये जब भक्ति मार्ग सदा से है, तब भक्ति योग्य Object of Worship भी सदा से है; कोई नवीन कल्पना नहीं है। सं० ८१ मे प्रसिद्ध श्री उमास्वामी महाराज ने लोक-व्यवहार के लिये स्थापना को "नाम स्थापना द्रव्य भाव तस्तन्न्यासः" (तत्त्वार्थ सूत्र अ० १ सूत्र ५) इस सूत्र से स्वीकार किया है। संवत् लेख रहित प्राचीन जैन मूर्तियां भूमि से निकला करती हैं। विक्रम की पहिली शताब्दी से पहिले की दिगम्बर जैन मूर्तियाँ मथुरा व लखनऊ के अजायबघर में हैं। खंडगिरि उदयगिरि (उड़ीसा) की हाथी गुफा में सन् ई० से १५० वर्ष पहिले के जैन राजा खारवेल या मेघवाहन द्वारा अङ्कित लेख है। उसकी १२ वीं व तेरहवी

लाइन में है कि राजा ने मगध देश के नन्द राजा से ऋषभदेव, जैनियों के प्रथम तीर्थङ्कर की मूर्ति को ला कर अपने बनाये मन्दिर में स्थापित किया। * इससे यह सिद्ध है कि इस के पहिले से ऋषभदेव की प्रतिमाएँ बनती थीं! बङ्गाल बिहार में अनेक स्थानों में हजारों वर्ष की प्राचीन दि० जैन मूर्तियां मिलती हैं। स्वरूप के ज्ञान के लिए ऐसी सहकारी वस्तु का होना किसी विशेष काल में कल्पित नहीं है।

२१. सात तत्व व उनकी संख्या का महत्व

जो सच्चे देव, शास्त्र, गुरु की श्रद्धा कर के भक्ति करता है, उस को शास्त्रों के द्वारा सात तत्वों को जान कर श्रद्धान करना आवश्यक है; क्योंकि इनके द्वारा निश्चय आत्मरुचि मई सम्यग्दर्शन का लाभ होता है। उनके नाम हैं—१ जीव २. अजीव ३. आस्रव ४ बन्ध ५. संवर ६. निर्जरा ७ मोक्ष। †

इन का ही ज्ञान मोक्षमार्ग का ज्ञान कराने वाला है। जीव से यह बोध होता है कि हम चैतन्यरूप आत्मा हैं। अजीव से ज्ञान होता है, कि हमारे शरीरादि अचेतन पदार्थ सब मुझ से भिन्न अजीव हैं, क्योंकि वह निश्चय से शुद्ध हो करके

---

* बङ्गाल बिहार उड़ीसा प्राचीन स्मारक पृ० १२८

† जीवाजीवास्रव बन्ध संवर निर्जरा मोक्षास्तत्वम्।

(तत्वार्थ सूत्र अ० १ सूत्र ।

भी व्यवहार से कर्म बन्ध के कारण अशुद्ध हैं। इसलिये हम को यह जानना जरूरी है कि कर्मों के पिण्ड जो जड़ अचेतन हैं किस तरह आत्मा के पास आते हैं और ठहर जाते हैं, इन दोनों बातों को बताने वाले आस्रव (आना) और बन्ध (बन्धना या ठहरना) हैं। हम अपनी अशुद्धि को कैसे मेटें, इस के लिए संवर बतलाता है कि नवीन बन्ध को रोकने का उपाय करो। निर्जरा तत्व बतलाता है कि बांधे हुए कर्मों को शीघ्र कैसे दूर कर दिया जाय। सर्व कर्मों से छूट कर मुक्त होने पर शुद्ध आत्मा अपने स्वरूप में बना रहता है इस को बताने वाला मोक्ष तत्व है। जैसे नाव में पानी आकर ठहरता है तब नाव समुद्र ही में गोते खाती है और जब पानी आने का छिद्र बन्द करके भरे हुये पानी को उलच दिया जाता है तब नाव शीघ्र समुद्र पार पहुच जाती है। जीव नाव है, अजीव जल है, आस्रव जल के आने का छिद्र है, बन्ध जल का ठहरना है, संवर छेद को बन्द करना है, निर्जरा जल को उलचना है, मोक्ष नाव का छूट कर द्वीप में पहुँचना है, अर्थात् सिद्ध जीव का सब से ऊपर पहुँच जाना है। इन सात तत्वों से हम को अपने उद्धार का उपाय प्रकट हो जाता है। इसलिये इन का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। इनमें हमें व्यवहार नयसे जीव, संवर, निर्जरा और मोक्ष को गृहण करने योग्य और शेष तीन को त्यागने योग्य मानना चाहिए तथा निश्चय नय से आत्म तत्व को ही ग्रहण करने योग्य मानना चाहिए, क्योंकि

इन सात तत्वों में जड़ चेतन दो ही पदार्थ है। निश्चय से जड़ से चेतन भिन्न है, यही श्रद्धान ठीक है।

२२. जीव तत्व का स्वरूप

जीव उसे कहते हैं जिसमें चेतनपना (Consciousness) हो। चेतना इस का लक्षण है। जो कोई चेतता है—अर्थात् देखता जानता है, वही जीव है। इस जीव के सम्बन्ध मे नौ बातें जानने योग्य हैं:—

(१) यह अपने प्राणों से सदा जीता रहता है। निश्चय नय से इस के एक ज्ञान चेतना प्राण है, जो कभी नहीं मिटता है। व्यवहारनय से संसारी जीव को अपेक्षा इसके चार प्राण होते है। जिनके कारण एक शरीर मे जीता रहता है व जिनके वियोग का नाम मरण कहलाता है वे चारप्राण है—१ आयु, १ श्वासोच्छ्वास, पाँच इन्द्रियां (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण), तीन बल (मन, वचन, काय), ये सब दश हो जाते हैं।

संसार में जीव छः प्रकार के है:—

१. एकेन्द्रिय स्थावर—जैसें पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक वायुकायिक, बनस्पतिकायिक। इनके शरीर पृथ्वी आदि रूप होते हैं। भीतर जीव होता है। जब तक ये बढ़ते रहते है व फूलते फलते रहते हैं तब तक ये सजीव या सचित कहलाते हैं, जब ये सूख जाते हैं या हवा न पाकर मुरझा जाते है तब ये अजीव और अचित कहलाते हैं। खान की व खेत की गीली मिटटी, कुए का पानी आदि सचित हैं।

सूखी मिट्टी, गर्म पानी अचित हैं। वर्तमान सायंस ने पृथ्वी व वनस्पति (Vegetable) में जीवपने की सिद्धि करदी है। अभी तीन मे नहीं की है सो यदि विज्ञान की उन्नति हुई तो इनमे भी प्रमाणित हो जायगी। जैन सिद्धान्त जो कहता है वह इस तरह पर है कि इनके चार प्राण होते हैं—१ स्पर्शन इन्द्रिय जिससे छूकर जानते हैं, १ काय बल, १ आयु, १ श्वासोछ्वास।

२. द्वीन्द्रिय जीव—जैसे लट, शङ्ख, कौड़ी आदि। इनके छः प्राण होते हैं। १ रसनाइन्द्रिय और १ वचनबल अधिक हो जाता है।

३. तेन्द्रिय जीव—जैसे चींटी, खटमल आदि। इनके सात प्राण हैं। घ्राण इन्द्रिय अधिक होजाती है।

४. चौइन्द्रिय जीव—जैसे मक्खी, भौंरा, पतङ्ग आदि। इनके आठ प्राण है। चक्षु इंद्रिय अधिक होजाती है।

५. पंचेन्द्रिय मन रहित—जैसे समुद्र के कोई २ जातिके सर्प। इनके ६ प्राण होते हैं। एक कर्ण इन्द्रिय अधिक हो जाती है।

६. पंचेन्द्रिय मन सहित—जैसे हिरण, गाय, भैंस, बकरा, कबूतर, काक, चील, मच्छ, आदि २ पशु पक्षी, सब आदमी, नारकी व देव। इनके १० प्राण होते हैं। एक मन बल अधिक हो जाता है।

जिससे तर्क वितर्क किया जावे व कारण कार्य का

विचार किया जावे वह मन है। जो संकेत समझ सकें व शिक्षा ग्रहण कर सके वह मनवाला पंचेन्द्रिय जीव है।

(२) यह जीव उपयोगवान है, ज्ञान दर्शन स्वरूप है। निश्चयनय से शुद्ध ज्ञान दर्शन को रखता है। व्यवहारनय से मतिज्ञान आदि पांच ज्ञान; मति, श्रुति, विभंग तीन अज्ञान तथा चक्षु-अचक्षु अवधि केवल, ये चार दर्शन रखता है। इसी से हम जीव को पहिचानते हैं। जैसे जो शास्त्र पढ़ता है वह श्रुतज्ञान का काम कर रहा है, इससे जीव है।

सामान्यपने अवलोकन को दर्शन कहते हैं, विशेष जानने को ज्ञान कहते हैं। आंख से देखना 'चक्षुदर्शन' है। आंख को छोड़कर शेष चार इंद्रिय व मनसे देखना 'अचक्षु दर्शन' है। आत्मा स्वयं रूपी पदार्थ को जिससे देखे वह 'अवधि-दर्शन' है। जिससे सब देखा जावे वह 'केवल दर्शन' है। जब इंद्रिय और पदार्थ की भेंट होती है, तब दर्शन होता है; फिर जो जाना जाय वह ज्ञान है। ज्ञान का वर्णन प्रमाण-नयके अध्यायमे किया गया है।

(३) यह जीव कर्त्ता है—निश्चयनय से यह अपने ज्ञान भाव व वीतराग भाव का ही कर्त्ता है, व्यवहारनय से यह रागद्वेष मोहादि भावो का कर्त्ता व उन भावों के निमित्त से पाप पुण्यमई कर्मों का बांधने वाला है व घटपट आदि का कर्त्ता है।

(४) यह जीव भोक्ता है—निश्चयनय से अपने शुद्ध-ज्ञानानंद का भोगता है, व्यवहारनय से पाप पुण्य के फलरूप सुख दुःखों को भोगता है।

(५) यह जीव अमूर्तीक है—निश्चयनय से इसमे कोई स्पर्श, रस, गंध, वर्ण (जो गुण परमाणुओ मे होते है) नहीं हैं, इससे यह अमूर्तीक है; परंतु जड़ कर्म का बंधन हरएक संसारी आत्मा के अंश २ मे है। इसलिये व्यवहारनय से यह मूर्तीक है।

(६) यह जीव आकारवान है—इस आकाश में जो कोई वस्तु जगह पायगी उसका आकार होना चाहिये। आकार लम्बाई चौड़ाई आदि को कहते हैं। जीव भी एक पदार्थ है, इस लिये आकारवान है; परन्तु यह आकार चेतनमई है, जड़ रूप नहीं है। निश्चयनय से एक जीव असंख्यात प्रदेश रखता है, अर्थात् तीन लोक के बराबर है। प्रदेश क्षेत्र का वह सबसे छोटा अंश है, जिसको एक अविभागी परमाणु घेरे। व्यवहारनय से यह शरीर के प्रमाण आकारवान है। छोटे शरीर मे छोटा व बड़े मे बड़ा हो जाता है। इसमें कर्म के फल के निमित्त से सकुड़ना फैलना होता है। शरीर में रहते हुए कभी शरीर से बाहर फैलकर आत्मा का आकार फैलता व फिर सकुड़ कर शरीर प्रमाण हो जाता है, ऐसी दशा को समुद्घात कहते हैं। वेदना कषाय आदि के निमित्त से कभी कभी ऐसा हो जाता है। क्योंकि हमको सर्वांग स्पर्शका ज्ञान होता है व शरीरसे बाहर स्पर्शका ज्ञान नहीं होता है, इससे सिद्ध है कि हमारा आत्मा शरीर प्रमाण है।

समुद्घात सात होते हैं :—

१. वेदना—कष्ट को भोगते हुए शरीर से बाहर फैल कर हो जाना।

२. कषाय—क्रोधादि के निमित्त से फैलना।

३. मारणान्तिक—कोई कोई मरने के पहले जहां जाना हो उस को फैल कर स्पर्श कर आता है, फिर मरता है।

४. वैक्रयिक—देव नारकी आदि अपने शरीर को छोटा बड़ा कर लेते व देवगण एक शरीर के अनेक शरीर बनाकर आत्मा को फैलाकर प्रवेश कराते और काम लेते हैं।

५. तैजस—किसी मुनि के क्रोधवश बाएं कन्धे से बिजली का शरीर आत्मा सहित निकलता है जो नगरादि को भस्म करता है, यह अशुभ तैजस है। किसी मुनि के दया वश दाहिने कन्धे से शुभ तैजस निकलता है जो दुःख के कारणों को मेट देता है, यह शुभ तैजस है।

६. आहारक—किसी तपस्वी मुनि के मस्तक से एक स्वेत सूक्ष्म पुरुषाकार शरीर आत्मा सहित निकल कर शङ्का दूर करने व असंयम दूर करने के लिये किसी केवली व श्रुतकेवली के पास जाता है।

७. केवल—जिस अरहन्त परमात्मा के आयु कर्म की स्थिति कम हो व नाम, गोत्र, वेदनीय की स्थिति बहुत हो तो उनकी स्थिति को आयु की स्थिति के समान करने के लिये आत्मा के प्रदेश तीन लोक में फैलते हैं।

(७) यह जीव आप ही अपने पाप पुण्य के अनुसार संसार भ्रमण किया करता है।

(८) यही जीव यदि पुरुषार्थ करे तो स्वयं सिद्ध भी हो सकता है।

(९) यह जीव शरीर छोड़ने पर यदि शुद्ध हो तो अग्नि की शिखा के समान ऊपर को जाता है और लोक के अग्रभाग मे ध्यानाकार विराजमान हो जाता है, परन्तु संसारी जीव कर्म बन्ध के कारण चार विदिशाओं को छोड़ कर ऊपर नीचे, पूर्व पश्चिम, दक्षिण उत्तर, ६ दिशाओं मे अपनी २ गति में जाते हैं—टेढ़े नहीं जाते हैं। मरण के पीछे दूसरे शरीर में जाते हुए टेढ़े नही जाते, सीधे ही जाते हैं। तीन दफे से अधिक नहीं मुड़ते। †

ये जीव अनन्तानन्त हैं। हर एक जीव की सत्ता यानी मौजूदगी भिन्न २ रहती है। कोई किसी का खण्ड नहीं है, न कोई किसी से मिलता है। जीवो के दो भेद हैं—संसारी और मुक्त। दोनों ही अनेक हैं। ※

जैन सिद्धांत में जीव भी एक द्रव्य है।

२३. द्रव्य का स्वरूप

जो सत् हो अर्थात् जिसको सत्ता अर्थात् मौजूदगी

---

† नौ विशेषणों की गाथा

जीवो उवओ गमओ अमुत्ति कत्ता संदेह परिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्स सोड्ढ गई ॥ २ ॥
जाणदि पस्सदि सव्वं इच्छदि सुक्खं विभेदि दुक्खादो।
कुव्वदि हिदमहिदं वा भुंजदि जीवो फलं तेसिं ॥ १२२ ॥
(द्रव्य संग्रह, पंचास्तिकाय)

भावार्थ—यह जीव सर्व पदार्थों को देखता जानता है। यह संसारी जीव सुख चाहता है, दु:खों से डरता है, अपना स्वयं भला या बुरा करता है व स्वयं उनका फल भोगता है।

※ संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥ (तत्वा० सू० अ० २)

सदा बनी रहे, उसको द्रव्य कहते हैं। सत् उसे कहते हैं जिसमें एक ही समय में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य पाये जावें अर्थात जिस में पिछली अवस्था का नाश होकर नई अवस्था जन्में, तो भी मूल द्रव्य बनी रहे। जैसे स्वर्ण का कड़ा तोड़ कर कुण्डल बनाया; इस में कड़े की अवस्था का नाश होकर ही कुण्डल जन्मा है, परन्तु स्वर्ण बना ही रहा। अथवा जैसे कोई बालक युवा हुआ; यहाँ बालक अवस्था का व्यय, युवा अवस्था का जन्म तथा ध्रौव्य वह मनुष्य जीव है। एक चने के दाने को जिस समय मसल कर चूरा जाता है, उसी समय चनेपन का नाश और चूरेपन का जन्म होता है व जो परमाणु चने के थे वे उसके आटे में मौजूद हैं।

हरएक द्रव्य द्रवणशील है, परिणमनशील है—अर्थात अवस्थाओं को बदलता है। जिस में अवस्था नहीं बदले, वह द्रव्य किसी कामको नहीं कर सकता। यदि जीव कूटस्थ नित्य हो तो अशुद्ध से कभी शुद्ध नहीं हो सकता व यदि परमाणु कूटस्थनित्य हो तो उससे मिट्टी, पानी, हवा, वनस्पति आदि नहीं बन सकते। यदि अवस्था बदलते हुए मूल वस्तु नष्ट हो जावे तो कोई भी वस्तु नहीं ठहर सके। इस कारण द्रव्य को गुणपर्यायवान् भी कहते हैं।

गुण द्रव्यके भीतर व्यापक उसके साथ सदा पाये जाते हैं। उन्हीं गुणों में जो अवस्थायें बदलती है उनको पर्याय कहते हैं, जो क्रम क्रम से होती हैं। गुणों का और उनके सम-

दायरूप द्रव्यका सदा ध्रौव्य या अविनाशीपना रहता है, किंतु पर्यायों में उत्पाद व्यय होता रहता है। †

ऐसे मूल द्रव्य इस लोकमें छः प्रकार के हैं—जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काय। इनमें जीव चेतन है; शेष पांच अचेतन हैं।

२४. द्रव्यों के सामान्यगुण

इन छः प्रकार के द्रव्यों में कुछ गुण ऐसे है जो हर एक द्रव्य में पाये जाते हैं। उनको सामान्य गुण (Common qualities) कहते हैं। उन में से प्रसिद्ध निम्न छः हैं:—

(१) अस्तित्वगुण—जिस से द्रव्य अपनी सत्ता सदा रखता है।

(२) वस्तुत्वगुण—जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य में अनेक गुण व पर्याय निवास करते हैं व जो निरर्थक नहीं है।

(३) द्रव्यत्वगुण—जिससे द्रव्य परिणमन किया करता है। या अवस्थायें बदलता है।

(४) प्रदेशत्वगुण—जिससे द्रव्य कोई न कोई आकार रखता है।

---

† दव्वं सल्लक्खणियं उप्पाद व्वयधुवत्त संजुत्तं।
गुण पज्ज वा जंतं भणंति सव्वण्हू ॥ १० ॥

(पंचास्तिकाय)

भावार्थ—द्रव्य का लक्षण सत् है सो उत्पाद, व्यय, ध्रुव पनेकर सहित है। उसीको गुणपर्यायवान् सर्वज्ञ देव कहते हैं।

(५) अगुरुलघुत्वगुण—जिससे द्रव्य अपने स्वभाव को कभी हीन व अधिक नहीं करता है; जितने गुण है उनको अपने में बनाये रखता है व जिसके कारण एक गुण या पर्याय दूसरे गुण या पर्याय रूप नहीं हो सकता।

(६) प्रमेयत्वगुण—जिससे द्रव्य किसी के द्वारा जाना जा सके।

२५. जीव द्रव्य के विशेष गुण

जीव द्रव्य के विशेष गुण चेतना अर्थात् ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य चारित्र या वीतरागता, सम्यक्त्व या सच्चा श्रद्धान आदि है।

हरएक जीव स्वभाव से सर्वज्ञ; सर्वदर्शी, अनन्तसुखी, अनन्तबली, परमशान्त, परमश्रद्धावान है।*

ये गुण सिवाय जीवों के और पांच द्रव्यो में से किसी मे नहीं पाये जाते है। संसारी जीवो मे कर्मों के बन्धन होने के कारण ये विशेष गुण पूर्ण प्रकट नहीं होते।

२६. जीव को तीन प्रकार अवस्था

इस जगत मे जीवो की निम्न तीन अवस्थाएँ होती है :—

---

* सुद्ध सचेयण बुद्ध जिण, केवलणाण सहाउ।
सो अप्पा अणुदिण मुणहु, जइ चाहउ सिवलाहु ॥२६॥

भावार्थ—आत्मा शुद्ध चेतनामय, बुद्ध, वीतरागी, केवलज्ञान स्वभाव है। जो मोक्ष चाहते हो तो रात दिन इसी का मनन करो। (योगसार)

१. बहिरात्मा—जो शरीर आदि रूप व क्रोधादिरूप व अज्ञान व अल्प-ज्ञानरूप अपने आत्मा को जानते है तथा जो संसार के सुखों में रागी हैं, सच्चे परमात्मा या आत्मा को नहीं जानते हैं।

२. अन्तरात्मा—जो अपने आत्मा को पहिचानते है, अतीन्द्रिय स्वाधीन आनन्द के खोजी हैं, संसार शरीर भोगों से विरक्त है। यदि गृह में रहते हैं तो जल में कमल समान उदासीन रहते हैं। यदि साधु हो जाते हैं तो सर्व धनादि परि-ग्रह छोड़ आत्मध्यानरूपी यज्ञ में कर्मों का होम करते हैं। इन्हीं को महात्मा कहते हैं।

३. परमात्मा—जो शुद्ध आत्मा है, जगत के प्रपञ्च जाल व चिता से रहित हैं, जिनके ज्ञान मे सर्व द्रव्यो की सर्व पर्यायें झलक रही है तो भी दीप शिखा के समान किसी से प्रीति अप्रीति नहीं करते; निरन्तर स्वात्मानन्द में मग्न रहते हैं।*

---

* बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्व देहिषु।
उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद्बहिस्त्यजेत् ॥ ४ ॥
बहिरात्मा शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिरान्तरः।
चित्तदोषात्म विभ्रान्तिः परमात्मातिनिर्मलः ॥ ५ ॥

(समाधिशतक)

भावार्थ—आत्मा के तीन भेद है—बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा। इनमें से अन्तरात्मा होकर व बहिरात्मापना त्याग कर परमात्मा होने का यत्न करो।

जो शरीरादि में आत्मा का भ्रम रखता है वह बहिरात्मा है,

२७. परमात्मा अनन्त हैं

परमात्मा एक नहीं है, किंतु अनंत हैं; क्योंकि इस अनादि अनन्त जगत में जो कोई आत्मा अपने को शुद्ध कर लेता है वही परमात्मा के पद में पहुंच जाता है। इसलिये अनन्त परमात्मा भिन्न २ अपने २ ज्ञानानन्द में इस तरह मग्न रहते हैं जिस तरह अनेक साधु एक स्थल पर बैठे आत्मध्यान कर रहे हो। यद्यपि गुणों की अपेक्षा सब बराबर है। सब ही अनन्तज्ञानी, वीतरागी, परमसुखी है, तथापि अपनी २ सत्ता की अपेक्षा भिन्न २ है। भक्त जन चाहे एक परमात्मा को, चाहे अनेक परमात्माओ को लक्ष्य कर भक्ति करें, उनके भावों मे शुद्धिरूप फल समान होगा; क्योंकि गुणों की ही भक्ति से गुणों की निर्मलता होती है। †

२८. जगत का कर्ता व सुख दुःख के फल का दाता परमात्मा नहीं हो सकता

परमात्मा शुद्ध स्वात्मानन्द मे लय रहते हैं। उनके भाव

जो रागादि से भिन्न आत्मा को जानता है वह अन्तरात्मा है, जो परम शुद्ध है वह परमात्मा है।

† णठ्ठठ्ठकम्मबंधा अठ्ठमहागुणसमण्णिया परमा।
लोयग्गठिदा णिच्चा सिद्धा जे एरिसा होंति ॥७२॥

(नियमसार)

भावार्थ—आठों कर्म रहित व आठ महागुण सहित अविनाशी अनन्त सिद्ध लोक के अग्रभाग में विराजित रहते हैं।

मे संकल्प विकल्प उठ ही नहीं सकते, क्योंकि जहां विचार की तरंगें होगी, वहां आत्मसमाधि नहीं रहेगी और न आत्मानन्द का भोग होगा ।।

संकल्पादि मन के द्वारा होते हैं। परमात्मा के न मन है, न वचन है, न काय। तब फिर "जगत को बनाऊं व किसी को सुख दुःख दूं" यह भाव कैसे शुद्ध, निरंजन आत्मा मे उठ सकता है ?

परमात्मा कृतार्थ है। उसके कोई शुभ अशुभ कामना नहीं उठ सकती है। यदि परमात्मा को कर्ता माना जावे तो किसी समय जगत के प्रवाह का अभाव मानना पड़ेगा, क्योंकि जो नहीं होता है वही किया जाता है। सो अनादि अनन्त चलने वाला जगत अपनी विचित्रता को छोड़ कर कभी एक रूप नहीं था; न हो सकता है।

जो परमात्मा को जगत-कर्ता मानते हैं वे उसको सर्व-व्यापक और निराकार मानते हैं। सर्वव्यापक में हलन चलन नहीं हो सकता, निराकार से साकार नहीं हो सकता। निर्विकार के इच्छा नहीं हो सकती। इसी तरह परमात्मा को न्याय करके सुख दुःख देने की भी जरूरत नहीं है। जो ऐसा मानते हैं वे परमात्मा को राजा के समान व अपने को प्रजा के समान मान कर कहते हैं। यदि कोई सर्व शक्तिमान, न्यायी दयावान व सर्व-व्यापक सर्वज्ञ परमात्मा राजा के समान जगत का शासन करे तो जगत में कोई कुमार्ग में नहीं

जा सकता, क्योंकि वह ज्ञानबल से प्रजा के मन की बात जान-कर अपनी विचित्र शक्ति से उसके मन को फेर देवे। जैसे राजा किसी को यह जान कर कि यह प्रजा द्रोही है, तुरन्त उसको रोक देते हैं। यदि वह दयावान व शक्तिशाली होकर रोके नहीं, पीछे दण्ड देदे, तो यह बात राज्य धर्म के विरुद्ध है। क्योंकि कुमार्ग का प्रचार जगत मे वहुत अधिक है; इससे सिद्ध होता है कि परमात्मा हमारे बीचमें अपने को नही उलझाता है। हम जैसे स्वयं अग्नि उठाते व स्वयं जलते हैं, स्वयं नशा पीते व स्वयं बेहोश हो जाते हैं; वैसे ही संसारी जीव स्वयं पाप पुण्य बांधते व स्वयं उनका फल पाते रहते हैं। परमा-त्मा न कर्ता है, न भोगादि दण्ड देता है। *

---

* स्वयंसृजति चेत्प्रजाः किमितिदैत्यविध्वंसनं
सुदुष्टजन निग्रहार्थमिति चेदसृष्टिर्वरम् ।
कृतात्म करणीयकस्य जगतां कृतिर्निष्फला
स्वभावइति चेन्मृषा सहि सुदुष्ट एवाऽप्यते ॥ ३३ ॥
(पात्रकेसरि स्तोत्र)

भावार्थ—यदि परमात्मा स्वयं प्रजाको पैदा करता है तो फिर असुरों का विध्वंस क्यो करता है? यदि कहो कि दुष्टों के निग्रह व सुष्टों के पालन के लिये तो यही ठीक था कि वह उनकी रचना हो नहीं करता। जो कृतकृत्य होते हैं उनसे जगत का बनना यह बेमतलब काम है। कोई बुद्धिमान प्रयोजन बिना कोई काम नहीं करता। यदि कहो कि उसका स्वभाव है, यह भी मिथ्या ही है क्योंकि सर्जन, पालन, नाश, बिना रागादि दोष के नहीं हो सकता; सो परमात्मा में संभव नहीं है।

२६. अजीवतत्व-पांचद्रव्य

जिस मे चेतना नहीं है, वह अजीव है। अजीवतत्व मे पाँच द्रव्य गर्भित हैं—१. पुद्गल २. धर्मास्तिकाय ३. अधर्मास्तिकाय ४. आकाश और ५. काल । इन मे केवल पुद्गल ही मूर्तीक है। शेष चार अमूर्तीक हैं।

१. पुद्गल—जिस मे रूखा, चिकना, ठंडा, गर्म, हलका, भारी, नरम, कठोर, ये आठ स्पर्श व सफेद, काला, पीला, लाल, नीला, ऐसे पांच वर्ण व खट्टा, मीठा, चर्परा, तीखा, कषायला, ये ५ रस व सुगन्ध, दुर्गंध, यह दो गंध, इस प्रकार कुल बीस गुण की अवस्थायें पाई जावें, उसको पुद्गल कहते हैं। ये ही स्पर्श, रस गंध, वर्ण, पुद्गल के विशेष गुण हैं।

जो कुछ हम अपनी पांचो इन्द्रियों से ग्रहण करते है सब पुद्गल हैं । ये पांचों इन्द्रियां और यह हमारा शरीर भी पुद्गल है, कर्मों का बन्धन भी पुद्गल रूप है। कर्म वर्गणाएं अनन्त परमाणुओं के बने हुए स्कन्ध है, सूक्ष्म हैं। इससे इन्द्रियगोचर नहीं हैं। इन्हीं से कर्म बनते हैं—बहुत से सूक्ष्म पुद्गल इंद्रियों से ग्रहण मे नहीं आते हैं।

२ धर्मास्तिकाय— यह लोक व्यापी अमूर्तीक द्रव्य है जिस का विशेष गुण जब जीव और पुद्गल अपनी शक्ति से गमन करें तब बिना प्रेरणा के उनकी सहाय करना है।

३. अधर्मास्तिकाय—एक लोक व्यापी अमूर्तीक द्रव्य है जिस का विशेष गुण जब जीव पुद्गल अपनी शक्ति से ठहरते हैं तब बिना प्रेरणा के उनकी सहाय करना है।

४. आकाश—एक सबसे बड़ा अनंत अमूर्तीक द्रव्य है, जिस का विशेष गुण सर्व द्रव्यों को उदासीन भाव से स्थान देना है।

५. कालद्रव्य—अमूर्तीक एक परमाणु या प्रदेशके बराबर गणना में असंख्यात हैं। इनको कालाणु भी कहते हैं। इन का विशेष गुण सब द्रव्यों की अवस्थाओं के पलटने मे उदासीन भावसे सहायक होना है। समय, विपल, पल आदि इस काल द्रव्य की पर्यायें या अवस्थायें हैं जिन को व्यवहार काल कहते हैं।

नोट—काल द्रव्य और उसकी पर्यायों की विस्तृत व्याख्या आदि जानने के लिये देखो "श्री वृहत् जैन शब्दार्णव" भाग १ में शब्द 'अङ्क-विद्या' का नोट ८, पृष्ठ ११० से ११२ तक।

जीव और पुद्गल तो हमको प्रत्यक्ष प्रगट हैं, परन्तु चार द्रव्यों का ज्ञान होने के लिए हमको इस सिद्धान्त पर विचार करना चाहिये कि जगत में हर एक काम के लिये उपादान और निमित्त दो कारणो की आवश्यकता पड़ती है। जो स्वयं कार्य में परिणमन करता है उसे उपादान कारण व जो उसके सहायक होते हैं उनको निमित्त कारण कहते हैं। जैसे सुवर्ण को मुद्रिका बनी; इस में सुवर्ण उपादान कारण है और सुनार के औजार आदि निमित्त कारण हैं।

जीव और पुद्गल हलन चलन करते हैं और ठहरते हैं,

स्थान पाते हैं तथा अवस्थाओं को बदलते हैं। जैसे एक आदमी या एक पक्षी चलता है, चलते २ रुकता है, जगह पाता है व हर समय अवस्था बदलता है। धूला कभी उडता है, कभी ठहरता है, जगह पाता है या अवस्था को बदलता है, ये चार काम वे दोनों अपनी ही शक्ति से करते हैं। इस लिये इनके उपादान कारण तो ये स्वयं हैं और निमित्त कारण चार भिन्न २ कार्यों के चार द्रव्य हैं; सो क्रम से धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल हैं। लोकाकाश मर्यादा रूप है। आकाश अनन्त है। यदि धर्म अधर्म द्रव्य न माने जावें तो जीव और पुद्गल एक लोक की मर्यादा मे न रह कर अनन्त आकाश मे बिखर जावेंगे। * क्योंकि आकाश अनन्त होने से वे जीव तथा पुद्गल चलते २ अनन्त आकाश में जा सकते हैं। परन्तु वे नहीं जाते, क्योंकि जहां तक जगत है वहां तक ही धर्म अधर्म द्रव्य है, इसलिए जगत में ही चलते व ठहरते हैं।

---

* स्पर्श रस गन्ध वर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३ अ० ५ ॥
गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ अ० ५ ॥
आकाशस्यावगाहः ॥ १८ अ० ५ ॥
वर्तनापरिणाम क्रिया परत्वापरत्वेच कालस्य ॥ २२ अ० ५ ॥
(तत्त्वार्थ सूत्र)

भावार्थ—जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण हों वे पुद्गल हैं। गमन कराना धर्म का व स्थिति कराना अधर्म का व अवकाश देना आकाश का गुण है, पलटाना काल का गुण है। अवस्था चाल तथा कमती बढ़ती समय लगने से व्यवहार-काल का ज्ञान होता है।

३०. पाँच अस्तिकाय—विभाववान् और क्रियावाद दो द्रव्य

हर एक द्रव्य म एक सामान्य गुण प्रदेशत्व है जिस से हर एक द्रव्य का कुछ न कुछ आकार होता है। द्रव्यो का आकार नापने के लिए प्रदेश एक माप है। जितने आकाश को पुद्गल का वह परमाणु जिसका दूसरा भाग नही हो सकता रोकता है, उसको प्रदेश कहते है। इस माप से नापा जावे तो हर एक जीव में असंख्यात प्रदेश, धर्म द्रव्य में असंख्यात, अधर्म मे असंख्यात और आकाश मे अनन्त प्रदेश हैं। लोक के भी असंख्यात प्रदेश हैं। इसी के बराबर धर्म अधर्म व एक जीव के प्रदेश हैं।

पुद्गलका सबसे छोटा हिस्सा परमाणु होता है, परन्तु बहुत से परमाणु मिलकर स्कन्ध बनते है। वे स्कन्ध कोई संख्यात, कोई असंख्यात, कोई अनन्त परमाणुओ के होते हैं, इस से पुद्गल के तीन प्रकार प्रदेश होते हैं। क्योंकि जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश मे एक से अधिक प्रदेश होते है, इसलिए इन पाँच को जैन सिद्धान्त मे अस्तिकाय कहा है।

काल द्रव्य लोकके एक २ प्रदेश मे अलग अलग रत्नों के समान फैले हुए हैं। इसलिये वे सब एक प्रदेशी ही हैं, यद्यपि गणना में असंख्यात है। अतएव काल द्रव्य को काय में नहीं गिना है। यह ध्यान में रहे कि जैन सिद्धान्त में माप २१

तरह की बताई है। किसी हद तक संख्यातके जघन्य, मध्यम उत्कृष्ट भेद समाप्त हो जाते हैं। फिर असंख्यातके ९ भेद फिर अनन्त के ९ भेद होते हैं। सब से बड़ी संख्या उत्कृष्ट अनन्तानन्त है।

नोट—संख्यात, असंख्यात और अनन्त की विस्तृत व्याख्या व भेदादि जानने के लिये देखो "श्री वृहत् जैन शब्दार्णव" भाग १ में शब्द 'अङ्कगणना' पृष्ठ ८६ से १०३ तक।

इन छः द्रव्यो मे धर्म, अधर्म, आकाश एक एक है, काल असंख्यात हैं। जीव और पुद्गल अनन्त हैं। चार द्रव्य स्थिर रहते हैं, केवल जीव पुद्गल मे ही हलन चलन क्रिया होती है। इसलिये ये ही क्रियावान है तथा इनही मे वैभाविक शक्ति है। संसारी जीव कर्म-बन्ध के निमित्त से रागद्वेषादि विभाव भावो में परिणमन कर जाते हैं। जैसे स्फटिक मणि लाल, पीले डांक के सम्बन्ध से लाल, पीले रङ्ग रूप परिणमन कर जाती है तथा पुद्गल जीव के रागद्वेषादिभावो का निमित्त पाकर आठ कर्मरूप हो जाते हैं व पुद्गल के परमाणु चिकनापन, रूखापन तथा परस्पर मिलने रूप कारणों से स्कन्ध रूप होजाते हैं। स्कन्ध टूटकर फिर परमाणु होजाते हैं। इस तरह जीव पुद्गल मे ही विभावपना होता है, शेष चार द्रव्य अपने स्वभावमे ही स्वभावरूप सदृश परिणमन करते हुए ही रहते हैं। यदि जीव पुद्गल में विभावरूप होने की शक्ति

नहीं होती तो संसार न होता । न संसार का त्याग कर मोक्ष होता ।*

३१. पुद्गल के अनेक भेद कैसे बनते हैं

पुद्गल के मूल भेद दो हैं । परमाणु और स्कन्ध । पर·

---

* प्रदेश

जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणु वट्टद्धं ।
तं खु पदेसंजाणे सव्वाणुठ्ठाणदाणरिहं ॥ २७ ॥

भावार्थ—जितने आकाशको अविभागी पुद्गल परमाणु घेरे, उसको प्रदेश जानो । इस में सूक्ष्म अनेक परमाणु भी समा सकते है । जैसे जहाँ एक दीप प्रकाश हो, वहां अनेक दीप प्रकाश भी समा सकते हैं ।

प्रदेश की संख्याः—

होंति असंखा जीवे धम्मा धम्मे अणंत आयासे ।
मुत्ते तिविह पदेसा कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥ २५ ॥

भावार्थ—एक जीव, धर्म, अधर्म में असंख्य, आकाश मे अनन्त, पुद्गल में तीन प्रकार प्रदेश होते हैं । काल का एक ही प्रदेश हैं इससे काय नहीं है । (द्रव्य संग्रह)

भाववन्तौ क्रियावन्तौ द्वावेतौ जीव पुद्गलौ ।
तौच शेष चतुष्कंच षडेते भाव संस्कृताः ॥ २५ ॥

भावार्थ—जीव पुद्गल क्रियावान (चलनरूप) भी हैं और परिणमन शील भी हैं । शेष चार केवल भाववान हैं, क्रियावान नहीं हैं ।

अस्ति वैभाविकी शक्तिस्तत्तद् द्रव्योप जीविनी ॥ ७४ ॥
(पंचाध्यायी अ० ८)

भावार्थ—पुद्गल जीव में वैभाविकी शक्ति है ।

माणु अविभागी होता है; उस में एक समय मे ५ विशेष गुण झलकते हैं। ठण्डा गरम मे से एक, रूखे चिकने मे से एक, एक रस, एक गन्ध, एक वर्ण। दो या अधिक परमाणुओं के मिलने पर स्कन्ध या बड़े स्कन्ध से छूटकर छोटे स्कन्ध बनते रहते हैं। परमाणु या स्कन्ध जब दूसरे परमाणु या स्कन्ध से बँधते हैं तब रूखे या चिकने गुण के कारण से बँधते है। जब चिकनाई या रूखेपन का अन्श एक दूसरे से दो अंश अधिक होगा तब रूखा रूखे से, चिकना चिकने से व रूखा चिकने से बँधकर एक मेल हो जायगा व जिसमें अधिक गुण होंगे वह दूसरे को अपने रूप कर लेगा। एक अंश चिकनाई या रूखापन जिस परमाणु में जिस समय रहेगा वह किसी से बँधेगा नहीं। जैसे किसी स्कन्ध में ७९० अन्श चिकनाई है, दूसरे में ७९२ अन्श है, तब ही ये दोनों मिल कर एक बन्ध रूप हो जायंगे। *

---

* वर्तमान सायंस को यह पता लगाना है कि चिकनाई या रूखे पने के अन्शों की जांच कैसे की जावे। स्वाभाविक नियम जैन शास्त्रों में ऐसा कहा है—

णिद्धावा लुक्खा वा अणु परिणामा समावा विसमा वा।
समदो दुराधिगाजदि वज्झन्तिहि आदि परिहीणा ॥

(प्रवचनसार अ० २ गा० ७३)

भावार्थ—चिकने या रूखे परमाणु सम या विसम हों दो गुण अधिक होने से बंध जाते हैं। जघन्यगुण वाला नहीं बंधता है। आठ दश आदि सम, नौ सात आदि विसम हैं।

इसी बन्ध के नियम से अनेक जाति के स्कन्ध बनते रहते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के परमाणु भिन्न भिन्न नहीं हैं। मूल पुद्गल परमाणुओं से बने हुए ही यह विचित्र स्कन्ध है तथा यह परस्पर बदल जाते हैं। जैस हैड्रोजन आक्सीजन हवा मिल कर जल हो जाता है व जल से हवा हो जाती है, पानी जम कर सख्त बर्फ हो जाता है, बर्फ का पानी हो जाता है। मेघ की बूंद सोप के पेट में पड़ कर पृथ्वीकाय मोती बन जाता है, इत्यादि।

हर एक स्कन्ध मे एक समय में सात गुण पाये जाते हैं; हलका या भारी, रूखा या चिकना, ठण्डा या गर्म, नर्म या कठोर; ऐसे ४ स्पर्श, रस १, गन्ध १, वर्ण १। इस बंध के नियमानुसार हमें ५ तरह के स्कन्ध प्रकट दीखते हैं।

१—स्थूल स्थूल (Solid)—जो टुकड़े होने पर बिना तीसरी चीज़ के न मिलें। जैसे पत्थर, लकड़ी, कागज़।

२—स्थूल द्रवपदार्थ (Liquids)—जो अलग करने पर मिल जावें। जैसे दूध, पानी, शरबत।

३—स्थूल सूक्ष्म—जो आंखों से दीखे, परन्तु हाथों से न पकड़ा जा सके। जैसे धूप, छाया, प्रकाश।

४—सूक्ष्म स्थूल—जो आंखो से न दीखे, परंतु और इन्द्रियों से जाना जावे। जैसे हवा, शब्द आदि।

५—सूक्ष्म—जो किसी भी इन्द्रिय से न जाना जावे। उनके कार्यों से उनका अनुमान किया जाय। जैसे तैजस वर्गणा

(Electric Molecule) कार्मण वर्गणा (Karmic Molecule) आदि।

६—सूक्ष्मसूक्ष्म भेद पुद्गल का परमाणु है। ‡

इन्हीं स्कन्धो के २२ भेद गोम्मटसार मे कहे है, उनमे से पाच प्रकार के स्कन्धों से हमारा खास सम्बन्ध है जिनका वर्णन आगे है।

३२. पुद्गलमय पांच शरीरों के कार्य

संसारी जीवों के निम्न लिखित पांच तरह के शरीर होते हैं :—

औदारिक—जो एकेन्द्रिय से ले मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यंचो (पशुओं) तक के स्थूल शरीर है।

वैक्रियिक—जो बदला जा सके; यह देव और नारकियो का स्थूल शरीर है।

---

‡ बादर बादर बादर बादर सुहमंच सुहम थूलंच ।
सुहमञ्च सुहम सुहमं धरादियं होदि छब्भेयं ॥ ६०२ ॥
(गोम्मटसार जीवकाण्ड ७२)

इस गाथा का अर्थ ऊपर आ गया।

सद्दो बन्धो सुहमो थूलो संठाण भेद तम छाया ।
उज्जोदादव सहिया पुग्गल दव्वस्स पज्जाया ॥ १६ ॥
(द्रव्य संग्रह)

भावार्थ—शब्द, बँध, सूक्ष्म, स्थूल, शरीराकार, खण्ड, अन्धकार, छाया, उद्योत, आतप, ये दश पुद्गल की अवस्थाओं के दृष्टान्त हैं।

आहारक—यह श्वेत रङ्ग का पुरुषाकार एक हाथ ऊंचा किसी तपस्वी मुनि के दशम द्वार मस्तक से निकल कर केवली महाराज के दर्शन को जाकर लौट आता है।

ये तीन शरीर आहारक वर्गणाओ से बनते हैं।

तैजस—एक बिजलीमई सूक्ष्म शरीर है, जो सर्व संसारी जीवो के पाया जाता है। यह तैजस वर्गणाओ से बनता है।

कार्मण—यह पाप पुण्यरूप आठकर्म मई सूक्ष्मशरीर सर्वसंसारी जीवों के कार्मण वर्गणा से बनता रहता है।

इस समय हमारे पास तीन शरीर हैं—**औदारिक** जिस के छूटनेका नाम ही मरण है। **तैजस** और **कार्मण** ये प्रवाहरूप से साथ २ रहते है, मुक्ति होते हुए ही छूटते है।

ये पांचो शरीर एक दूसरे से सूक्ष्म हैं, परंतु परमाणु अधिक २ है। तैजस व कार्मण दो शरीरो को लिये हुए जीव एक स्थूल शरीर से दूसरे में एक या दो या तीन समय के बीच मे लगातार बिना किसी रुकावट के तुरंत पहुंच जाते है। सबसे छोटे काल को समय कहते है। जितनी देर मे एक परमाणु एक कालाणु से पासवाली कालाणु पर मन्दगति से जाता है वह समय है। एक पलक मारने में असंख्यात समय बीत जाते है। ❀

❀ औदारिक वैक्रियिकाहारक तैजस कार्मणानिशरीराणि ॥ ३६ ॥ परम् परम् सूक्ष्मम् ॥ ३७ ॥ प्रदेशतोऽसंख्येय गुणम् प्राक् तैजसात् ॥ ३८ ॥ अनन्त गुणेपरे ॥ ३९ ॥ अप्रतीघाते ॥ ४० ॥ अनादि सम्बन्धेच ॥ ४१ ॥ सर्वस्य ॥ ४२ ॥ (त० सू० अ० २)

३३. मन और वाणी का निर्माण

जीवों के शब्द व बचन भी भाषावर्गणा जाति के स्कन्धों से बनते हैं। ये स्कन्ध भी सर्वत्र फैले हुए हैं। हमारे होठ तालु के संबंध से भाषावर्गणा से शब्द बन जाते है तथा उनको तरंगें वहां तक जाती हैं जहां तक धक्का अपना बल रखता है। शब्द भी मूर्तीक जड़ है, क्योंकि वह रुक जाता है। ऐसा ही सायन्स ने भी सिद्ध किया है। मन आंख कान की तरह एक विशेष कमल के आकार हृदय के स्थान में मनोवर्गणा जाति के पुद्गल स्कन्धों से बनता है जो बहुत सूक्ष्म हैं व लोकमें भरे हैं। जिन जीवों के यह मन होता है, वे ही इसके द्वारा तर्क वितर्क कर सकते हैं व शिक्षादि ग्रहण करसकते हैं। ‡

---

‡ शरीर वाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ १७ ॥

(त० सू० अ० ५)

भावार्थ—शरीर, वाणी, मन, स्वासोछ्वास बनाना पुद्गलों का काम है।

विकसिताष्टदल पद्माकारेण हृदयान्तर्भागे भवति,
तत्परिणमणकारण मनोवर्गणा स्कन्धानाम् आगमनात्।
(गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा २२९ संस्कृत टीका)

भावार्थ—द्रव्य मन खिले हुए आठ पत्तों वाले कमल के आकार हृदय के अन्दर होता है। उस मन के बनने के कारण मनोवर्गणा जाति के स्कन्ध आते है।

द्रव्यमनःपुद्गला· मनस्त्वेन परिणताइति पौद्गलिकम्।

(सर्वार्थसिद्धि अ० ५ सू० १९)

भावार्थ—जो पुद्गल मनरूप से परिणमन करते हैं उनको द्रव्य

३४. आस्रव तत्व

जिन आत्मा के भावों से व हरकतों से पाप पुण्य मई कार्मण वर्गणा खिचकर बंध के लिये आती हैं उनको भावास्रव कहते हैं और कर्मवर्गणाओ का जो आगमन है उसको द्रव्यास्रव कहते हैं। ‡

भावास्रव के पांच मुख्य भेद हैं :—

(१) मिथ्यात्व—झूठा विश्वास। इसके पांच भेद हैं:—

१. एकान्त—पदार्थ मे नित्य अनित्य दो स्वभाव होने पर भी एक ही मानना। आत्मा को सर्वथा शुद्ध या सर्वथा अशुद्ध ही मानना।

२. विनय—सत्य असत्य का ज्ञान न करके सर्व ही विरोधी सिद्धान्तो से अपना लाभ मान के उनकी विनय करना। जैसे बिना विचारे अरहन्त, बुद्ध, कृष्ण, शिव, राम, ईसामसीह, मुहम्मद आदि सब ही को पूजना।

३. संशय—यह शङ्का रखनी कि जैन सिद्धांत ठीक है या बौद्ध या सांख्य या नैयायिक। किसी का भी विश्वास न होना।

मन कहते हैं। ऐसा ही कथन राजवार्तिक में इसी सूत्र की व्याख्या में है।

‡ आसवदि जेणकम्मंपरिणामेणप्पणो स विण्णेओ।
भावासवो जिणुत्तो कम्मासवणं परो होदि ॥ २९ ॥

(द्रव्यसंग्रह)

४. विपरीत—बिल्कुल धर्म विरुद्ध बात मे धर्म मान लेना। जैसे पशुओं की बलि से पुण्य होना।

५. अज्ञान—धर्म के सिद्धांत को समझने की चेष्टा न करके देखा देखी मूर्खता से धर्म मे चलना।

यह पांच तरह का मिथ्यात्व प्रगट है तथा शुद्धज्ञानानन्दमई आत्मा का विश्वास न करके सांसारिक विषय सुख की श्रद्धा रखनी भी मिथ्यात्व है।

(२) अविरति—पांच प्रकार है—हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, पदार्थों में ममता या परिग्रह।

(३) प्रमाद—आत्महित में अनादर, इस प्रमाद के भेद १५ भेदों मे से ८० प्रकार बनते हैं—५ इंद्रिय, ४ क्रोधादिकषाय, ४ विकथा (स्त्री, भोजन, देश, राजा), १ निद्रा, १ स्नेह।

इनको परस्पर गुणा करने से ८० भेद होते हैं। १ प्रमाद भाव में १ इंद्रिय, १ कषाय, १ विकथा तथा निद्रा और स्नेह ये पांचों पाये जावेंगे। जैसे किसी ने जिह्वा के लोभ से चोरी करने का भाव किया, इसमें जिह्वा इंद्रिय, लोभ कषाय, भोजन विकथा, निद्रा व स्नेह पांचों हैं।

(४) कषाय—क्रोध, मान, माया, लोभ; चार प्रकार।

(५) योग—तीन प्रकार मन, वचन, काय का हलन चलन।

इस तरह भावास्रव के ३२ भेद हैं। ❋

❋ मिच्छत्ता विरदिपमाद जोगकोहादओऽथविण्णेया।
पण पण पण दह तिय चदु कमसोभेदादु पुव्वस्स ॥ ३० ॥
(द्रव्य संग्रह)

वास्तव में आत्मा में एक योग शक्ति है जो पुद्गलों को खींचती है। जिस समय मन, वचन, काय की क्रिया होती है उसी समय आत्मा सकम्प हो जाता है तब ही योग शक्ति मिथ्यात्व आदि के कारण से विशेषरूप होती हुई कर्मों को और नो कर्मों (औदारिक आदि के बनने योग्य स्कन्धो) को खींच लेती है।

३५. बन्धतत्व

जिन आत्मा के भावों व हरकतो से कर्म वर्गणायें जो बँधने को आई हैं आत्मा के पूर्व में बँधे हुए कर्मों के साथ मिल कर आत्मा के प्रदेशों में ठहर जाती हैं उनको भावबन्ध व कर्मों का बंधरूप होकर ठहर जाने को द्रव्यबन्ध कहते है। ❀

इस बंधके चार भेद हैं—(१) प्रकृति बंध—जो कर्म बंधते हैं उनमे अपने काम करनेका स्वभाव पड़ना। ऐसी प्रकृतियां मूल आठ हैं व उनके भेद १४८ हैं। (२) प्रदेश-बंध—जो कर्म जिस प्रकृति के बँधें उनमे वर्गणाओ की संख्या होना। (३) स्थिति बंध—कर्मों का बंध किसी काल की मर्यादा के लिए होना। (४) अनुभाग बन्ध—फल देते समय तीव्र या मन्दफल देना। मन, बचन, काय योगों के निमित्ति से आत्मा के सकम्प होतें हुए योग शक्ति के द्वारा तो

❀ बज्झदि कम्मं जेण दु चेदण भावेण भावबंधोसो।
कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥ ३२ ॥

पहिले दो बन्ध और क्रोधादि कषाय की तीव्रता या मन्दता के अनुसार पिछले दो बंध होते हैं। †

३६. आठ कर्म प्रकृति व १४८ भेद

मूल कर्म प्रकृतियां आठ है—(१) **ज्ञानावरण** जो आत्मा के ज्ञान गुणको ढके (२) **दर्शनावरण** जो आत्मा के दर्शन (सामान्यपने देखने) गुण को ढके (३) **वेदनीय** जो सांसारिक सुख दुःखों की सामग्री जोडकर सुख दु:ख का भोग करावे (४) **मोहनीय** जो आत्माके श्रद्धान और चरित्र (शान्ति) को बिगाड़े (५) **आयु** जो किसी शरीर मे आत्मा को रोक रक्खे (६) **नाम** जो शरीर की अच्छी बुरी रचना करे। (७) **गोत्र** जो ऊंच नीच कुल में जन्म करावे या ऊंचा नीचा कहलावे। (८) **अन्तराय** जो लाभ, भोग, उपभोग, दान व आत्मा के उत्साह या वीर्य मे विघ्न करे।

इनमे से नं० १, २, ४ व ८ को घातिया कर्म कहते हैं क्योकि ये चारों आत्मा के ज्ञान, दर्शन, सम्यग्दर्शन और चारित्र तथा आत्मबल के गुणो का नाश करते हैं। शेष चार बाहरी सामग्री जोड़ते हैं। इसलिए वे अघातिया हैं।

इन के १४८ भेद इस तरह से हैं :—

[१] ज्ञानावरण के पांच भेद—१. मतिज्ञानावरण २.

---

† पयडिठिदि अणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविधो बन्धो।
जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ॥ ३३ ॥
(द्रव्य संग्रह)

श्रुत ज्ञानावरण ३ अवधि ज्ञानावरण ४. मनः पर्यय ज्ञानावरण ५. केवल ज्ञानावरण। ये क्रम से मति आदि ज्ञानों को ढकती है।

[२] दर्शनावरण की ९ प्रकृतियां—६. चक्षुदर्शनावरण जो आंखों से सामान्य निराकार दर्शन को रोके ७. अचक्षुदर्शनावरण जो आंख के सिवाय अन्य इंद्रिय और मन द्वारा सामान्य अवलोकन को रोके ८. अवधि दर्शनावरण जो अवधिज्ञान के पहिले होने वाले दर्शन को रोके ९. केवल दर्शनावरण जो पूर्ण दर्शन को रोके १० निद्रा जिस से कुछ नींद हो ११. निद्रानिद्रा जिस से गाढ़ी नींद हो १२. प्रचला जिससे बैठे २ ऊँघे १३. प्रचला प्रचला जिससे खूब ऊंघे, मुंह से राल बहे १४. स्त्यानगृद्धि जिस से नींद मे कोई काम कर लेवे और सो जावे।

[३] वेदनीय की २ प्रकृतियां—१५. सातावेदनीय जो साताभोग करावे १६. असाता वेदनीय जो दुःख भोग करावे।

[४] मोहनीय की २८ प्रकृतियां—

१. दर्शनमोहनीय की तीन—१७. मिथ्यात्व जिस से सच्चे तत्वों में श्रद्धा न हो १८. सम्यग्मिथ्यात्व या मिश्र जिससे सत्य असत्य तत्वों मे मिश्रित श्रद्धा हो १९. सम्यक्त्व जिससे सत्य श्रद्धा में कुछ मन लगे।

२. चारित्र मोहनीय की २५ प्रकृतियां—सोलह कषाय—२०. अनन्तानुबंधी क्रोध जिस से सम्यग्दर्शन और स्वरूप में

आचरणरूप चारित्र का घात हो; ऐसे ही २१. अनन्तानुबन्धी मान २२. अनन्तानुबन्धी माया २३. अनन्तानुबन्धी लोभ। २४. अप्रत्याख्यानावरण क्रोध जिससे श्रावक गृहस्थ के व्रत न हो सकें; ऐसे ही २५. अप्रत्याख्यानावरण मान २६. अप्रत्याख्यानावरण माया २७. अप्रत्याख्यानावरण लोभ । २८. प्रत्याख्यानावरण क्रोध जिससे साधु के व्रत न हो सकें; ऐसे ही २९. प्रत्याख्याना-वरण मान ३०. प्रत्याख्यानावरण माया ३१. प्रत्याख्यानावरण लोभ। ३२. संज्वलन क्रोध जिससे पूर्ण यथाख्यात चारित्र न हो सके; ऐसेही ३३. संज्वलन मान ३४. संज्वलन माया ३५. संज्वलन लोभ। नो कषाय-या अल्प कषाय ९—३६. हास्य जिससे हंसी आवे ३७. रति जिससे इन्द्रिय विषयों में प्रीति हो ३८. अरति जिससे कुछ न सुहावे ३९. शोक जिस से सोच करे ४०. भय जिससे डरे ४१. जुगुप्सा जिससे ग्लानि करे ४२. स्त्री वेद जिससे पुरुष से रमने की चाह हो ४३. पुरुषवेद जिससे स्त्री से रमने की चाह हो ४४. नपुंसक वेद जिस से दोनों से रमने की चाह हो।

[५] आयुकर्म की चार प्रकृतियां—४५. नरक आयु जिससे नारकी के शरीर में रहे ४६. तिर्यंच आयु जिस से एकेन्द्री से पंचेन्द्री पशुके शरीर में रहे ४७. मनुष्य आयु जिससे मानवदेह में रहे ४८. देव आयु जिससे देव शरीर में रहे।

[६] नामकर्म की ९३. प्रकृतियां—४९. नरकगति—जिस से नरक मे जाकर नारकी की अवस्था पावे ५०. तिर्यंच गति—

जिससे तिर्यंच की दशा पावे ५१. मनुष्यगति—जिससे मनुष्य की दशा पावे ५२. देवगति—जिससे देव की दशा पावे ५३. एकेन्द्र-यजाति—जिससे स्पर्शन इन्द्रिय वाले जीवा की जाति में जन्मे ५४. द्वीन्द्रिय जाति—स्पर्शन रसना दो इन्द्रिय वालो की जाति मे जन्मे ५५. ते इंद्रिय जाति—जिस से स्पशन, रसना, घ्राण, तीन इंद्रिय वालो को जाति पावे ५६. चतुरिन्द्रिय जाति—जिससे स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु चार इंद्रिय वालों का जाति पावे ५७. पंचेन्द्रिय जाति—जिससे कर्ण सहित पांचो इंद्रिय वाली जाति पावे। ५८. औदारिक शरीर—जिससे औदारिक शरीर बनने योग्य वर्गणा लेकर वैसा शरीर बने ५९. वैक्रियिक शरार— जिससे वैक्रियिक शरीर बने ६०. आहारक शरोर—जिससे आहारक शरीर बने ६१. तैजस शरोर—जिस से तैजस शरीर बने ६२. कार्मण शरोर—जिससे कार्मण शरीर बने ६३. औदारिक आङ्गो-पाङ्ग—जिससे औदारिक शरीर मे आङ्गोपाङ्ग बनें (१ मस्तक, १ पेट, १ पीठ, दो बाहु, दो टांग, एक कमर के नीचे का स्थान ये आठ अङ्ग होते हैं, इनके अंशो को उपांग कहते हैं) ६४. वैक्रियिकआंगोपांग—जिससे वैक्रियिक शरीर में आँगोपांग बनें ६५. आहारक आंगोपांग—आहारक शरीर मे आंगोपांग बनें ६६. निर्माण—जिससे आंगोपांग का स्थान व माप बने ६७. औदारिक शरीर बंधन—जिससे औदारिक शरीर बननेयोग्य पुद्गल का परस्पर मेल हो ६८. वैक्रियिक शरीर बंधन—जिससे वैक्रियिक शरीर के बनने योग्य पुद्गल

का मेल हो ६९. आहारक शरीर बंधन—जिससे आहारक शरीर के बनने योग्य पुद्गलका मेल हो ७०. तैजस शरीर बंधन—जिससे तैजस शरीर के पुद्गलका मेल हो ७१. कार्मण शरीर बंधन—जिससे कार्मण शरीर के पुद्गल का मेल हो ७२. औदारिक शरीर संघात—जिसमें औदारिक शरीर की रचना में छिद्र रहित पुद्गल हो जावें ७३. वैक्रियिक शरीर संघात—जिससे वैक्रियिक शरीर में पुद्गल काय रूप हो ७४. आहारक शरीर संघात—जिससे आहारक शरीर में पुद्गल काय रूप हों ७५. तैजस शरीर संघात—जिस से तैजस शरीर में पुद्गल काय रूप हों ७६. कार्मण शरीर संघात—जिससे कार्मण शरीर में पुद्गल कायरूप हो ७७ समचतुरस्र संस्थान—जिस से शरीरका आकार सुडौल हो ७८. न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान—जिस से आकार बड़ के समान ऊपर बड़ा और नीचे छोटा हो ७९. स्वाति संस्थान—जिससे सांप की बँबई के समान ऊपर छोटा और नीचे बड़ा आकार हो ८०. कुब्जक संस्थान—जिससे कुबड़ा आकार हो ८१. वामन संस्थान—जिससे बहुत छोटा बौना आकार हो ८२. हुंडक संस्थान—जिस से बेडौल आकार हो ८३. वज्र वृषभ नाराच संहनन—जिससे नसों के जाल, हड्डियों की कीलें व हड्डियां वज्र के समान दृढ़ हों ८४. वज्र नाराच संहनन—जिससे कीलें और हड्डी वज्र के समान हों ८५. नाराच संहनन—जिससे हड्डियां दोनों तरफ कीलो से दृढ़ हो ८६. अर्ध नाराच संहनन—जिस से हड्डियां एक तरफ

कीलदार हों ८७. कीलक संहनन—जिस से हड्डियां एक दूसरे में कील दी हों ८८. असंप्राप्तासृपाटिका संहनन—जिस से हड्डियां मांस से जुड़ी हो ८९. कर्कश स्पर्श—जिस से शरीर का स्पर्श कठोर हो ९०. मृदु स्पर्श—जिस से शरीर का स्पर्श कोमल हो ९१. गुरु स्पर्श—जिस से स्पर्श भारी हो ९२. लघु स्पर्श—जिस से स्पर्श हलका हो ९३. स्निग्ध स्पर्श—जिस से स्पर्श चिकना हो ९४. रूक्ष स्पर्श—जिस से स्पर्श रूखा हो ९५. शीत स्पर्श—जिस से स्पर्श ठण्डा हो ९६. उष्ण स्पर्श—जिस से स्पर्श गर्म हो ९७ तिक्तरस—जिससे शरीर के पुद्गलों का स्वाद कडुआ हो ९८. कटुक रस—जिससे चरपरा हो ९९. कषाय रस—जिस से कषायला हो.१००. आम्ल रस—जिस से स्वाद खट्टा हो १०१. मधुररस—जिससे मीठा हो १०२. सुरभिगन्ध—जिससे गन्ध सुहावनी हो १०३. असुरभिगन्ध—जिससे गन्ध बुरी हो १०४. शुक्ल वर्ण—जिससे शरीर का रङ्ग सफेद हो १०५.कृष्ण वर्ण—जिससे रङ्ग काला हो १०६. नील वर्ण—जिस से वर्ण नीला हो १०७. रक्त वर्ण—जिससे वर्ण लाल हो १०८. पीतवर्ण—जिससे वर्ण पीला हो १०९. नरकगत्यानुपूर्वी—जिससे नरकगति को जाते हुए पूर्व शरीर के आकार आत्मा विग्रहगति अर्थात् एक शरीर से दूसरे शरीर में जाते हुए रहे ११०. तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी—जिससे तिर्यंचगति को जाते हुए पूर्वाकार रहे। १११. मनुष्य गत्यानुपूर्वी—जिससे मनुष्य गति में जाते हुए पूर्वाकार हो ११२. देवगत्यानुपूर्वी—जिससे देव गति

में जाते हुए पूर्वाकार हो ११३. अगुरुलघु—जिससे न शरीर बहुत भारी हो, न बहुत हलका हो ११४. उपघात—जिससे अपने अङ्ग से अपना घात करे ११५. परघात—जिससे परका घात करे ११६. आतप—जिससे शरीर मूल में ठण्डा हो, परंतु उसकी प्रभा गरम हो; जैसा सूर्यविमान के पृथ्वी कायिक जीवों में है ११७. उद्योत—जिससे शरीर प्रकाशरूप हो; जैसा चंद्र-विमान के पृथ्वीकायिक जीवों मे व पटबीजना आदि द्वीन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीवों में है ११८. उच्छ्वास—जिससे श्वांस चले ११९. प्रशस्त विहायोगति—जिससे आकाश में शुभ गमन हो, १२०. अप्रशस्त विहायोगति—जिससे आकाश में गमन अशुभ हो १२१. प्रत्येक शरीर—जिससे एक शरीर का स्वामी एक जीव हो १२२. साधारण शरीर—जिससे एक शरीर के स्वामी अनेक जीव हों १२३. त्रस—जिससे द्वीन्द्रियादि में जन्में १२४. स्थावर—जिससे एकेन्द्रियमे जन्मे १२५. सुभग—जिससे दूसरा शरीर से प्रेम करे १२६. दुर्भग—जिससे दूसरा अप्रीति करे १२७. सुस्वर—जिससे स्वर सुहावना हो १२८. दुःस्वर—जिससे स्वर असुहावना हो १२९. शुभ—जिससे सुंदर शरीर हो १३०. अशुभ—जिससे कुरूप हो १३१. सूक्ष्म—जिससे ऐसा शरीर हो जो कहीं भी न रुके, न किसी से मरे १३२. बादर—जिससे शरीर रुक सके व बाधा पावे व दूसरे को रोके १३३. पर्याप्ति—जिससे आहार, शरीर, इन्द्रिय, उच्छ्वास, भाषा व मन, इन छहों के बनने की योग्यता नवीनगति में अंतर्मुहूर्त मे पा

सर्क १३४. अपर्याप्ति—जिससे आहारादि बनने की योग्यता न प.कर अंतमुहूर्त मे ही मरण कर जावे १३५ स्थिर—जिससे शरीर मे वायु पित्त कफादि स्थिर हों १३६. अस्थिर—जिससे पित्तादि स्थिर न हो १३७. आदेय—जिससे प्रभावान् शरीर हो १३८. अनादेय—जिसम प्रभा रहित शरीर हो १३९. यशःकीर्ति—जिमसे यश हो १४०. अयशःकीर्ति—जिससे अयश हों। १४१. तीर्थंकर—जिससे तीर्थङ्कर होकर धर्म मार्ग फैलावे।

[७] गोत्र कर्म की दो प्रकृतियाँ—१४२. उच्चगोत्र जिमसे लोक माननीय कुल में जन्मे १४३. नीच गोत्र जिससे लोकनिंद्य कुल मे जन्मे।

[८] अन्तराय कर्म की ५ प्रकृतियां—१४४. दानान्तराय जिससे दान करना चाहे, पर कर न सके १४५. लाभान्तराय जिस से लाभ लेना चाहे, पर ले न सके १४६. भोगान्तराय जिससे भोगना चाहे, पर भोग न सके १४७. उपभोगांतराय जिससे बार बार भोगना चाहे पर भोग न सके १४८. वीर्यान्तराय जिससे उत्साह करे पर कुछ कर न सके। *

---

* आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नाम गोत्रांतरायाः ॥ ४ ॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययकेवलानाम् ॥ ६ ॥ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥ ७ ॥ सदसद्वेद्ये ॥ ८ ॥ दर्शनचारित्र मोहनीयाकषायकषाय वेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः। सम्यक्त्व मिथ्यात्वतदुभयान्यऽकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सा स्त्रीपुंनपुंसकवेदाः अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यान

३७. आठ कर्मों में पुण्य पाप भेद

मूल आठ कर्मों में साता वेदनीय, उच्चगोत्र, शुभ नाम, शुभ आयु पुण्यकर्म हैं; शेष सब पापकर्म है।

१४८ मे पुण्यकर्म

३ आयु कर्म की—तिर्यंच, मनुष्य, देव।

६३ शुभ नामकम की—(१) मनुष्यगति (२) देवगति (३) पंचेन्द्रिय जाति (४–१८) औदारिकादि ५ शरीर, बंध ५, संघात ५ (१९–२१) तीनआंगोपाङ्ग (२२) समचतुरस्र संस्थान (२३) वज्र वृषभनाराच संहनन (२४–४३) शुभ स्पर्शादि (४४–४५) मनुष्य व देव गत्यानुपूर्वी (४६) अगुरुलघु (४७) पर घात (४८) उच्छ्वास (४९) आतप (५०) उद्योत (५१) विहायोगतिशुभ (५२) त्रस (५३) बादर (५४) पर्याप्ति (५५) प्रत्येक शरीर (५६) स्थिर (५७) शुभ (५८) सुभग (५९) सुस्वर (६०) आदेय (६१) यशःकीर्ति (६२) निर्माण (६३) तीर्थङ्कर।

१ उच्चगोत्र, १ सातावेदनीय; यह सर्व प्रकृतियां ६८ पुण्य रूप हैं।

संज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥ ९ ॥ गति जाति शरीरांगोपाङ्गनिर्माणबन्धन संघातसंस्थान संहनन स्पर्शरसगन्ध वर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघाता तपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येक शरीर त्रस सुभग सुस्वर शुभ सूक्ष्म पर्याप्ति स्थिरादेय यशः कीर्ति सेतराणि तीर्थंकरत्वं च ॥ ११ ॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२ ॥ दान लोभ भोगोपभोग वीर्याणाम् ॥ १३ ॥ (तत्वार्थसूत्र अ० ८)

शेष ४७ घातिया कर्मों की, १ असातावेदनीय, १ नीच गोत्र, १ आयु व ५० नामकर्म की कुल १०० पाप प्रकृतियां हैं। यहां स्पर्शादि २० को दो जगह गिनने से १६८ प्रकृतियां होती है।

नोट १—ऊपर कर्म के भेदों में निर्माण को दो व विहायोगति को एक गिना था। यहां पुण्य पाप में विहायोगति को शुभ व अशुभ दो रूप गिन के निर्माण को एक गिना है। ❀

नोट २—कर्मों की विस्तृत व्याख्या के लिये देखो "श्री बृहत्जैनशब्दार्णव" भाग १ शब्द 'अघातियाकर्म' पृष्ठ ७९-८५

३८. प्रदेश-स्थिति-अनुभागबंध

हर एक संसारी जीव के जब तक वह अर्हंत पदवी के निकट न पहुँचे, सातों कर्मों के बँधने योग्य अनंत कार्मण वर्गणाएँ हर समय में आती रहती हैं, आयु कर्म के योग्य हर समय में नहीं आती। इस कर्म भूमि के मनुष्य व तिर्यंचों के लिये आयु कर्म के बंध का यह नियम है कि जितनी आयु हो उसके दो तिहाई बीतने पर अन्तमुहूर्त के लिये आयु बंध का समय आता है। उसमे बांधे या न बांधे, फिर शेष आयु में दो तिहाई बीतने पर दूसरा अवसर आता है। इसी तरह आठ अवसर आते है। यदि कोई इनमें भी न बांधे तो मरण से अन्तर्मुहूर्त पहले आगे के लिये आयु कर्म अवश्य बांधा जाता है। जैसे किसी की आयु ८१ वर्ष की हैं तो ५४ वर्ष बीतने पर पहला

❀ सद्वेद्यः शुभायुर्नाम गोत्राणि, पुण्यम् ॥ २५ ॥ अतोऽन्यत्पापम् ॥ २६ ॥ (तत्वा० अ० ८)

फिर २७ में से १८ वर्ष बीतने पर दूसरा अवसर आयगा; इसी तरह समझ लेना।

उन कर्म वर्गणाओं का जो एक समय मे आती हैं जितनी प्रकृतियें बंधती हैं, उनमे हिस्सा होजाता है-यही प्रदेशबंध है। आत्मा से कर्म सब तरफ बंधते हैं, किसी एक खास भाग मे नहीं। *

जितनी कर्म प्रकृतियां बंधती हैं उनमें काल की मर्यादा पड़ती है। यह स्थिति बंध उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य क्रोधादि कषायों के आधीन पड़ता है। आठों कर्मों की उत्कृष्ट व जघन्य स्थिति निम्नप्रकार है, मध्य के अनेक भेद है:—

कर्म	उत्कृष्ट	जघन्य
१ ज्ञानावरणीय	३० कोड़ाकोड़ी सागर	अन्तर्मुहूर्त
२ दर्शनावरणीय	३० ,, ,,	,,
३ वेदनीय	३० ,, ,,	१२ मुहूर्त
४ मोहनीय	७० ,, ,,	अंतर्मुहूर्त
५ आयु	३३ सागर	अंतर्मुहूर्त
६ नाम	२० कोड़ाकोड़ी सागर	आठमुहूर्त
७ गोत्र	२० ,, ,,	,, ,,
८ अंतराय	३० ,, ,,	अंतर्मुहूर्त

* नाम प्रत्ययाः सर्वतो योग विशेषात्सूक्ष्मैक क्षेत्रावगाह स्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनंतानंत प्रदेशाः ॥ २४ ॥ (तत्वा० अ० ८)

कोई कर्म वर्गणाएं अपनी स्थिति से अधिक बँधी हुई नहीं रह सकती है, अवश्य झड़ जायेंगी। †

नोट—अन गिन्ती वर्षों को सागर कहते हैं।

इन्हीं बंधते हुए कर्मों मे कषाय के निमित्त से तीव्र या मंद फल देनेकी जो शक्ति होजाती है, उसे अनुभाग कहते हैं।

ज्ञानावरणीय आदि चार घातिया कर्मोंका अनुभाग लता (बेल), दारु (काष्ठ), अस्थि (हड्डी), पाषाणके समान मंदतर, मंद, तीव्र, तीव्रतर पड़ता है। अघातिया कर्मों में जो असाता आदि पाप कर्म हैं उनका अनुभाग नीम, कांजी, विषहलाहल के समान मंदतर, मंद, तीव्र, तीव्रतर कटुक पड़ता है। अघातिया कर्मों में साता आदि पुण्य कर्मों का अनुभाग गुड़, खांड, शर्करा, अमृत के समान मंदतर, मंद, तीव्र, तीव्रतर मधुर पड़ता है। आयु कर्म को छोड़ कर सात कर्मों की स्थिति यदि कषाय अधिक होगी तो अधिक पड़ेगी, कम होगी तो कम पड़ेगी, परंतु पाप कर्मों का अनुभाग तीव्र कषाय से अधिक पड़ेगा, मंदकषाय से कम पड़ेगा। पुण्य कर्मों का अनुभाग मन्द कषायसे अधिक व तीव्र कषायसे अल्प पड़ेगा।

---

† आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपम कोटी कोट्यः परास्थितिः ॥ १४ ॥ सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥ १५ ॥ विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥ १६ ॥ त्रायस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ १७ ॥ अपरा द्वादश मुहूर्ता वेदनीयस्य ॥ १८ ॥ नामगोत्रयोरष्टौ ॥ १९ ॥ शेषाणामंतर्मुहूर्ता ॥ २० ॥ (तत्वा० अ० ८)

मन्द कषायसे शुभ आयु की स्थिति अधिक होगी, तीव्र कषाय से कम। ऐसे ही तीव्र कषायसे अशुभ आयुकी स्थिति अधिक होगी और मन्द से कम। ❀

३६. आठों कर्मों के बंध के विशेष भाव

यद्यपि शुभ या अशुभ भावो से हर समय हर एक जीव के आठ या सात कर्म की प्रकृतियो का बन्ध होता है, तथापि जिस जाति के विशेष भाव होते हैं उन भावो से उस विशेष कर्म में अधिक अनुभाग पड़ता है। वे विशेष भाव नीचे प्रकार जानना चाहियेः—

१. ज्ञानावरण और दर्शनावरण के विशेष भाव—

१. सच्चे ज्ञान व ज्ञानियों से द्वेष भाव २. आप ज्ञानी हो करके भी अपने ज्ञान को छिपाना ३. ईर्षा से दूसरो को ज्ञान दान न करना ४. ज्ञान की उन्नति मे विघ्न करना ५. ज्ञान व ज्ञानी का अविनय करना ६. उत्तम ज्ञान का भी कुयुक्ति से खण्डन करना।

२. असाता वेदनीय कर्म के भाव—

अपने को आप या दूसरों को या आप पर दोनो को १. दुःख देना २. शोकित करना ३. पश्चाताप करना (किसी वस्तु के छूटने पर व न मिलने पर पछताना) ४. रुलाना ५. मारना ६. ऐसा रुलाना कि दूसरों को दया आ जावे।

❀ विपाकोऽनुभवः ॥ २१ ॥ (तत्वा॰ अ॰ ८)

३. साता वेदनीय कर्म के भाव—

(१) सर्व प्राणीमात्र पर दयाभाव (२) व्रती धर्मात्माओं पर विशेष दया भाव (३) आहार, औषधि, विद्या व अभय या प्राणदान, ऐसे चार दान करना (४) साधु का धर्म प्रेम सहित पालना (५) श्रावक गृहस्थ का धर्म पालना (६) समताभाव से दुःख सहलेना (७) तपस्या करना (८) ध्यान करना (९) क्षमा भाव रखना (१०) पवित्रता या संतोष रखना।

४. दर्शन मोहनीय बन्ध के विशेष भाव—

१. केवली अरहंत भगवान की मिथ्या बुराई करना २. सच्चे शास्त्रों में झूठा दोष लगाना ३. मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका के सङ्घ में मिथ्या दोष लगाना ४. सच्चे धर्म की बुराई करना ५. देवगति के प्राणियों की मिथ्या बुराई करना कि देवतागण मांस खाते हैं आदि।

५. चारित्र मोहनीय बन्ध के भाव—

क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषाय भावों में बहुत तीव्रता रखनी।

६. नरक आयु बन्ध के विशेष भाव—

मर्यादा से अधिक बहुत आरम्भ व्यापार करना और संसार के पदार्थों में अन्ध होकर ममत्व रखना।

७. तिर्यंच आयु बन्ध के भाव—

परिणामों मे कुटिलाई या मायाचार रखना।

८. मनुष्य आयु बन्ध के भाव—

मर्यादा रूप थोड़ा आरम्भ व व्यापार करना और थोड़ा ममत्व रखना तथा स्वभाव से कोमल और विनयरूप रहना।

६. देवआयु के बंध के विशेष भाव—

१. सम्यग्दर्शन अर्थात् सच्चे तत्वों में विश्वास रखना २. साधु का संयम ३. श्रावक का संयम ४ समताभाव से दुख सहना ५. तपस्या करना आदि।

१०. अशुभ नाम कर्म के भाव—

१. मन को कुटिल रखना २. बचन मायाचार रूप कुटिल बोलना ३. शरीर को कुटिलता से व वक्रता से वर्ताना ४. क़लह और लड़ाई करना।

११. शुभ नाम कर्म के भाव—

१. मन में सीधापन रखना २ बचन सीधा, हितकारी बोलना ३. काय को सरल कुटिलता रहित बर्ताना ४. झगड़ा न करके प्रेम रखना।

१२. तीर्थङ्कर नाम कर्म के विशेष भाव—

नीचे लिखी १६ प्रकार की भावनाओं को बड़े भाव से करना:—

१. दर्शन विशुद्धि, हमारी श्रद्धा निर्मल रहे २. विनय सम्पन्नता, हम धर्म व धर्मियो मे आदर करें ३. शील व्रतेष्वनती-चार, हम शील और व्रतों में दोष न लगावें ४ अभीक्ष्णज्ञानो-पयोग, हम सदा ज्ञान का अभ्यास करें ५ संवेग, हम संसार

शरीर भोगों से वैराग्य रखें ६. शक्तितस्त्याग, हम शक्ति न छिपाकर दान करते रहें ७. शक्तितस्तप, हम शक्ति न छिपाकर तप करते रहें ८ साधुसमाधि, हम साधुओं का कष्ट दूर करते रहे ९. वैयावृत्य, हम गुणवानो की सेवा करते रहे १०. अर्हद्भक्ति, हम अरहन्तों की भक्तिपूजा मे रत रहे ११. आचार्य भक्ति, हम गुरु महाराजो की भक्ति करते रहे १२. उपाध्याय भक्ति, हम ज्ञानदाता साधुओ की भक्ति में रत रहे १३. प्रवचन भक्ति, हम शास्त्र की भक्ति में दत्त चित्त रहे १४. आवश्यकापरिहाण, हम अपने नित्य धर्म कृत्य को न छोड़ें १५. मार्ग प्रभावना, हम सच्चे धर्म की उन्नति करते रहे १६. प्रवचनवात्सल्य, हम सर्व धर्मात्माओ से प्रेम रखें ।

१३. नीच गोत्र बन्ध के विशेष भाव—

१. दूसरों की निन्दा करनी २. अपनी प्रशंसा करनी ३. दूसरों के होते हुए गुणो का ढकना ४. अपने न होते हुये गुणो को प्रकट करना।

१४. ऊंच गोत्र बन्ध के भाव—

१. दूसरो की प्रशंसा करनी २. अपनी निन्दा करनी ३. दूसरों के गुणों को प्रकट करना ४. अपने गुणो को ढकना ५. विनय से बर्ताव करना ६. उद्धतता या मान नहीं करना ।

१५. अन्तराय कर्म बन्ध के भाव—

१. दान देते हुए को मना करना २. किसी को कुछ लाभ होता हो उस मे विघ्न कर देना ३. किसी के खाने पीने आदि

भोगों में अन्तराय करना ४. किसी के वस्त्र, मकान, स्त्री आदि बार २ भोगने योग्य पदार्थों का वियोग करा देना ५. किसी अच्छे काम के उत्साह को भङ्ग कर देना।†

४०. आस्रव और बन्ध का एक काल

जिस समय कर्म वर्गणायें आती हैं उसी समय बंध जाती हैं। आश्रव और बंध के लिए कारण एक ही हैं। जिन मिथ्यादर्शन, अवरति, प्रमाद, कषाय, योगों से आस्रव होता है, उनही से बंध होता है। जैसे नाव के छेद से पानी आता जाता है वैसे ही ठहरता जाता है। पानी के आने व ठहरने का एक ही द्वार है। इसी तरह कर्मों के आने और बंधने का एक ही कारण है। कार्य दो हैं जैसे पानी का आना और ठहरना, वैसे कर्म वर्गणाओं का आना और उनका ठहरना। जिस समय जो आस्रव रुकता है उसी समय वह बंध भी रुकता है। जब छेद से पानी आवेगा नहीं, तो नाव में ठहरेगा भी नहीं।

४१. कर्मों के फल देने की रीति

कर्मों में जो स्थिति पड़ जाती है उसके भीतर ही वे अपना फल देकर गिरते जाते हैं। जिस समय कर्म बंधते है उसके कुछ ही देर पीछे वे अपना फल देना प्रारम्भ करते हुए जहां तक मर्यादा पूरी न हो फल दिया करते हैं।

जितनी वर्गणायें जिस कर्म प्रकृति की बधती हैं वे बट

---

† इसके लिये देखो तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय ६।

जाती है और थोड़ी २ हर समय फल प्रगट कर या न प्रगट कर गिरती जाती हैं। जिस समय तक फल नहीं देतीं उस समय का नाम आबाधा काल है। इसका हिसाब यह है कि यदि स्थिति एक कोड़ा कोड़ी सागर की बांधी हो तो सौ वर्ष का आबाधा काल है। यदि अन्तः कोड़ा कोड़ी सागर की स्थिति हो जो एक करोड़ सागर से ऊपर है तो आबाधा केवल एक अंतर्मुहूर्त आवेगी। यदि हज़ार सागर की हो व एक सागर की हो तो बहुत ही कम समय आयगा। कम से कम एक आवली (पलक मारने के समान) काल पीछे ही कर्म अपना फल दे सकेंगे। जैन सिद्धांत में यह नियम नहीं है कि पूर्व जन्म का ही फल इस जन्म में हो व इस जन्म का आगे मे हो। इस जन्म का बांधा कर्म इस जन्म में भी फल दे सक्ता है व देता है व आगामी भी देगा व पूर्व जन्म में बांधा हुवा पहले भी फल दे चुका है व अब भी दे रहा है व जब तक स्थिति पूरी न होगी देता रहेगा। यह बात ध्यान में रहे कि जैसा बाहरी निमित्त होगा वैसा कर्म फल देगा और जिस कर्म का बाहिरी निमित्त न होगा वह कर्म अपने समय पर बिना फल दिखाये चला जायगा। जैसा हमारे साथ क्रोध, मान, माया, लोभ, चारों कषायो का फल हर सयय होना चाहिये अर्थात् इन कषायो की वर्गणायें हर समय गिरनी चाहियें। हम यदि १० मिनट तक आत्मध्यान में लय हो गये तो वे कर्म तो गिरते जायँगे परंतु हमारे मे क्रोधादिभाव न झलकेंगे, अथवा यह प्रगट है कि क्रोधभाव, मानभाव, मायाभाव, लोभभाव, एक

साथ नहीं होते-आगे पीछे होते हैं। जिस समय क्रोधभाव हो रहा है तब क्रोध की वर्गणाएं तो फल देकर और शेष तीन कषायों की वर्गणाएं बिना फल देकर झड़ रही है। किसी जीव के साता वेदनीय असातावेदनीय दोनों अपने समय पर गिर रही है। यदि हम संकट में पड़े हैं व भूख से दुखी हैं तब असाताफल देकर व साता बिना फल दिये झड़ रही हैं। जिन कर्मों में बहुत तीव्र अनुभाग होता है वे अपने निमित्त अपने अनुकूल करके फल देते हैं, परंतु जिनमे उतना तीव्र अनुभाग नहीं होता है वे निमित्त अनुकूल न होने पर योंही झड़ जाते है। कर्मों के फल देने में हमको अपने स्थूल औदारिक शरीर का दृष्टांत सामने रख लेना चाहिये। हम आप ही नित्य भोजन, पान, हवा लेते हैं, आप ही उससे रुधिर वीर्यादि बनाते हैं, आप ही उससे शरीर मे बल पाते हैं और काम करते रहते है। कोई रोगकारी पदार्थ खा लिया था, उसके परमाणुओं द्वारा रोग पैदा होना चाहिये, परंतु हम पीछे ऐसे संयोगों में हैं जिनमें रोग नहीं हो सकता तो वे रोग पैदा करने वाले परमाणु योंही गिर जावेंगे अथवा कोई पौष्टिक औषधि खाई थी उससे पुष्टि होनी चाहिये, किन्तु हम किसी समय निर्वलता के संयोगो में पड़ गये—मान लो दो दिन तक और भोजन न मिला—तो वह पुष्ट औषधी के परमाणु उस समय पुष्टि न कर यों ही गिर जावेंगे। जैसे कोई औषधी चार दिन, कोई चार मास कोई चार बरस में फल दिखाती है, ऐसे ही कर्मों में है।

हम पहिले बता चुके हैं कि कोई परमात्मा हमको फल देने के झगड़े में नहीं पड़ता—स्वाभाविक नियम से ही हम आप ही कर्म बांधते और आप ही फल भोगते हैं; जैसे हम आप ही मदिरा पीते हैं, आप ही बेहोश हो जाते हैं।

एक दफे कर्म बांध लेने के पीछे जैसे हम अपने अशुभ भावों से उन कर्मों की स्थिति व पाप कर्मों के अनुभाग को बढ़ा कर पुण्य कर्मों के अनुभाग को कम कर सकते व पुण्य कर्मों को पाप कर्मों मे बदल सकते है, वैसे ही निर्मल भावों से स्थिति को घटा देते, पुण्य कर्मों में अनुभाग बढ़ा लेते तथा पाप कर्मों का अनुभाग कम करते तथा पाप कर्मों को पुण्य में बदल सकते हैं; जैसे कि कोई जहरीला पदार्थ खाने के बाद फिर उसका विरोधी खालें तो उसका असर हट जाता या कम हो जाता है। जो कर्म देर में फल देने वाले थे वे बाहरी निमित्त पाकर जल्दी भी फल दे देते है। मुख्य हमारा पुरुषार्थ है।

४२ पुरुषार्थ और दैव का स्वरूप

आत्मा के गुणों की कर्मों के दब जाने से व नाश हो जाने से जितनी प्रगटता होती है उसको पुरुषार्थ कहते हैं तथा जितना कर्म अपना फल देता रहता है उस फल को दैव कहते है। वास्तव में पुरुषार्थ आत्मा का गुण है, दैव ही पुण्य पाप है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का कुछ न कुछ असर सब जीवों के कम रहता है अर्थात् इन का क्षयोपशम होता है। इस लिए आत्मा मे ज्ञान, दर्शन, वीर्य की थोड़ी या अधिक प्रगटता

रहा करती है। यही पुरुपार्थ है। अज्ञानी के मोहनीय कर्म दवता नहीं है। ज्ञानी के जितना दवता व नाश होता है उतना निर्मल श्रद्धान व शान्तभाव अर्थात सम्यक्त्व व चारित्र गुण आत्मा का प्रकट होता है। यह भी पुरुपार्थ है।

चार अघातिया कर्म जब तक बिल्कुल नाश नहीं होते, फल ही देते रहते हैं। इसलिए वे बिल्कुल दैव कहलाते हैं।

हमारा कर्तव्य यह है कि जितना ज्ञान व आत्मवल हमारा प्रगट है उससे विचार कर हम व्यवहार करें। जैसे हमने किसी व्यापार को विचार के साथ किया, उस मे यदि साता वेदनीय का उदय होगा व अन्तराय का न होगा तो धन का समागम होजायगा। यदि लाभ न हो तो समझना चाहिये कि असातावेदनीय और अन्तराय कर्म रूपी दैव का फल है। अपना पुरुपार्थ न करके दैव के भरोसे वैठना मूर्खता है, क्यों कि अघातिया कर्म निमित्त होने पर ही अपना फल दे सकते हैं। यदि हम कोई व्यापार न करें, खाली वैठे रहे तो साता-वेदनीय से जो धन आता सो बिना कारण के नहीं आसकेगा। एक बात याद रखना चाहिये कि जिस किसी के बहुत तीव्र पुण्य व पाप कर्म का उदय होता है उसके अकस्मात् लाभ या अलाभ भी हो जाता है। जैसे कोई बालक गरीब के यहां पैदा हुआ और किसी धनवान की गोद चला गया व धनवान के यहां पैदा हुआ और पैदा होते ही पिता निर्धन होगया।

अपने भावों को कषाय रहित करने का पुरुपार्थ हमको

सदा करते रहना चाहिये अर्थात् वीतराग मई जैनधर्म का साधन करते रहना चाहिये। इससे हम अपने फल देने वाले दैव को बुरे से अच्छा कर सकेंगे व बहुत से पापो का नाश भी कर सकेंगे। धर्म पुरुषार्थ से हमे कभी बेखबर न रहना चाहिये।

४३. संवर तत्व

हम आस्रव और बन्धतत्व के कथन मे यह बात दिखा चुके हैं कि आत्मा किस तरह अशुद्ध या बद्ध हुआ करता है। अब यह उपाय बतलाना है कि हम बंधन से मुक्त कैसे हों। जैसे नाव में पानी जिस छेद से आता हो उसको बंद करने से पानी न आवेगा, वैसे जिन भावो से कर्म आते है उन को रोक देने से कर्म न आवेंगे। इस लिये जिन भावों से आस्रव भावो को रोका जाता है वह भाव संवर है और वर्गणाओं का रुकजाना सो द्रव्य संवर है। †

सामान्य से मिथ्यात्व के रोकने के लिये सम्यग्दर्शन, अविरति के हटाने के लिये व्रतो का पालन, प्रमाद हटाने के लिये अप्रमत्त भाव, कषाय के दूर करने के लिए वीतरागभाव, योग चंचलता के मिटाने के लिये मन, वचन, काय का निरोध, भाव संवर है।

विशेषता से भाव संवर पांच व्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति, दशलाक्षण धर्म, बारह भावना, बाईस परीषह जीतना

---

† चेदण परिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ।
सो भावसंवरो खलु दव्वासवरोहणे अण्णो ॥३४॥ (द्रव्यसंग्रह)

ध पांच प्रकार के चारित्र से होता है। * यह भी जानना चाहिए कि यह पुरुपार्थी जितना २ आस्रव भाव हटाता जायगा उतना २ संवर होता जायगा। जैसे किसी ने मिथ्यात्व व अनन्तानुबंधी कषाय हटा दिया तो मिथ्यात्व आदि के कारण जो कर्म बंधते थे सो न बँधेंगे, शेष अविरति आदि चार कारणों से बंधते रहेंगे।

४४. पांच व्रत

(१) अहिंसाव्रत—प्रमाद या कषाय सहित भावों से अपने या दूसरो के भावप्राण (चेतना, शान्ति आदि) और द्रव्यप्राण (इन्द्रिय बल आदि) का नाश करना व उनको पीड़ित करना हिंसा है—इसका अभाव सो अहिंसा है। जिस समय हमारे मे क्रोध भाव हुआ, उसी समय हमने अपने भावप्राण ज्ञान व शांति को बिगाड़ा और शरीर के बलको घटाकर अपने द्रव्यप्राण घाते, फिर क्रोधवश हमने दूसरे को हानि पहुंचाई। तब दूसरे ने यदि कुछ भी न गिना तो उसके भावप्राण रक्षित रहे पर शरीर व धन की हानि करने से द्रव्यप्राणों में हानि हुई, परन्तु हम तो हिंसक हो चुके। हमारी लाठी मारने से दूसरा बच गया तौ भी हम हिंसक होगये। जिसके द्रव्यप्राण अधिक हैं व अधिक उपयोगी हैं उसके घात मे कषाय भाव भी प्रायः अधिक होगा, इससे हम हिंसा के भागी अधिक होंगे। जैसे मनुष्य के दश प्राण है व उपयोगी हैं इससे मनुष्य

---

* वद समिदी गुत्तीओ धम्माणु पिहा परीसहजओ य।
चारित्तंबहुभेयं णायव्वा भावसंवर विसेसा ॥ ३५ ॥
[द्रव्यसंग्रह]

घात से विशेष पाप होगा। जलादि एकेन्द्रिय जीवों के आरम्भ बिना काम नहीं चल सकता, इस से इनकी हिंसा से कषाय कम होने से पाप कम है। वास्तव में जहां कषाय है, वहाँ भाव व द्रव्य प्राणकी हिंसा है। जहां कषाय नहीं, वहां भाव व द्रव्य हिंसा नहीं है। ※ जितनी हिंसा छोड़ेंगे उतना संवर होगा।

(२) सत्यव्रत—प्रमाद सहित होकर हानिकारक वचन कह देना सो असत्य है। असत्य का त्याग सो सत्य है।

(३) अचौर्यव्रत—प्रमाद सहित होकर दूसरे की वस्तु गिरी पड़ी भूली बिसरी उठा लेना व बिन दी हुई लेना चोरी है। चोरी का त्याग अचौर्यव्रत है।

(४) ब्रह्मचर्य—मैथुन करना अब्रह्म है। अब्रह्मका त्याग ब्रह्मचर्य है।

(५) परिग्रह त्याग—चेतन अचेतन पर पदार्थों में मूर्छा ममत्व करना परिग्रह है। उसका त्याग परिग्रह त्यागव्रत है। क्योंकि धन धान्यादि परिग्रह के कारण हैं, इसलिए इनके भी

※ प्रमत्त योगात्प्राण व्यपरोपणं हिंसा ॥ १३ ॥
(तत्वा० अ० ७)

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥ ४४ ॥
(पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय)

अर्थात्—प्रमाद सहित मन, वचन, काय से प्राणों का पीड़न हिंसा है। निश्चय से रागादि भावों का न प्रगट होना, अहिंसा है तथा उनही का पैदा हो जाना हिंसा है, यह जैन शास्त्र का खुलासा है।

त्यागने से परिग्रह त्याग होता है, इन पांचो व्रतो को जितना पाला जायगा उतना संवर होगा। ❀

४५. पांच समिति

अहिसा की रक्षा के लिए साधुजन नीचे लिखी पांच समितियों को पालते है :—

१. ईर्यासमिति—दिनमे जन्तु रहित भूमि पर चार हाथ आगे देखकर चलना २. भाषा समिति—शुद्ध वचन निर्दोष बोलना ३. एषणासमिति—शुद्ध भोजन जो गृहस्थ ने अपने कुटुम्ब के लिए तैयार किया हो, उसमे से भिक्षारूप जाकर भक्ति से दिये जाने पर लेना ४. आदान निक्षेपन समिति—अपना शरीर व अन्य वस्तु जो कुछ भी उठाना व रखना सो देख कर झाड़कर उठाना रखना ५. उत्सर्गसमिति—मल मूत्रादि जीव रहित स्थान पर करना। †

४६. तीन गुप्ति

१. मनोगुप्ति—मनकी चंचलता को रोककर उसे धर्म-ध्यान में लीन रखना, सांसारिक भावनाओं से अलग रखना।

२. वचनगुप्ति—मौन रहना।

३. कायगुप्ति—शरीर का निश्चल रखना। ‡

❀ असदभिधानमनृतम् ॥ १४ ॥ अदत्तादानं स्तेयं ॥ १५ ॥ मैथुनमब्रह्म ॥ १६ ॥ मूर्च्छा परिग्रहः ॥ १७ ॥ (तत्वा० अ० ७)

† ईर्याभाषैषणादान निक्षेपणोत्सर्गाः समितयः ॥ ५ ॥ (तत्वा० अ० ९)

‡ सम्यग्योग निग्रहोगुप्तिः ॥ ४ ॥ (तत्वार्थ अ० ९)

४७. दशलाक्षण धर्म

(१) उत्तम क्षमा—दूसरे से कष्ट दिये जाने पर भी निर्बल हो या सबल हो, बिलकुल क्रोध न करके शांत व प्रसन्न रहना।

(२) उत्तम मार्दव—ज्ञान तप आदि मे श्रेष्ठ होने पर सत्कार व अपमान किए जाने पर भी कोमल व विनयवान रहना, मान न करना।

(३) उत्तम आर्जव—मन, वचन, काय की सरलता रख कर कपट के भाव को न आने देना।

(४) उत्तम सत्य—अपने आत्मोद्धार के लिए सच्चे तत्वों का श्रद्धान व ज्ञान रखते हुए सत्य वचन ही बोलना।

(५) उत्तम शौच—लोभ को त्याग कर मनमें संतोष व पवित्रता रखनी।

(६) उत्तम संयम—भले प्रकार पांच इंद्रिय व मन को वश रखना तथा पृथ्वी आदि छः प्रकार के जीवो की रक्षा करनी।

(७) उत्तम तप—अनशन उपवास आदि बारह प्रकार तप के पालने में उत्साही रहना।

(८) उत्तम त्याग—मोह ममत्व न करके सर्व प्राणी मात्र को अभयदान देना तथा पर प्राणियो को ज्ञान दान देना व अन्य प्रकार से उपकार करना।

(९) उत्तम आकिंचन्य—सर्व परिग्रह त्याग कर यह भाव रखना कि संसार में मेरा मेरे आत्मा के सिवाय कोई परमाणु मात्र भी नहीं है।

(१०) उत्तम ब्रह्मचर्य—सर्व कामों के भावों को त्याग कर अपने ब्रह्म स्वरूप आत्मा में लीन होना व स्वस्त्री व परस्त्री का त्याग करना।

इन दश धर्मों को साधु जन भले प्रकार पालते हैं।*

४८. बारह भावना

जिनको बारंबार चिन्तवन किया जावे उनको भावना कहते हैं, वे बारह तरह की हैं।

(१) अनित्य—इस जगत में घर, पैसा, राज्य, स्त्री, पुत्र, मित्र, कुटुम्ब सब ही नाशवन्त हैं, इनसे मोह न करना।

(२) अशरण—जब पाप का तीव्र फल होता है या मरण आता है तो कोई मंत्र, यंत्र, वैद्य, रक्षक बचा नहीं सकते।

(३) संसार—चार गति रूप संसार में प्राणी इंद्रिय विषयों की तृष्णा में फंसा हुआ रोग, शोक, वियोग के अपार कष्टों को भोगता हुआ सुख शांति नहीं पाता है।

(४) एकत्व—इस मेरे जीव को अकेला ही जन्मना मरना व दुःख भोगना पड़ता है, मेरा आत्मा सब से निराला एक आनंद मई अमूर्तीक है।

---

* उत्तम क्षमा मार्दवार्जव सत्य शौच संयम तपस्त्यागाकिंचन्य ब्रह्मचर्याणि धर्मः॥ ६॥ (तत्वा० अ० ९)

(५) **अन्यत्व**—मेरे आत्मा से शरीरादि व सर्व ही अन्य आत्मायें व अन्य पांचो द्रव्य बिलकुल भिन्न है।

(६) **अशुचि**—यह शरीर मलसे बना है व कृमि, मलमूत्र, हड्डी आदि अपवित्र वस्तुओ से भरा है, रोएं २ रो मल बहता है, पवित्र जलादि को स्पर्श मात्र से अपवित्र कर देता है। इस तन से उदास रह कर आत्मोन्नति करनी चाहिये।

(७) **आस्रव**—मन, वचन, काय के वर्तन मे कर्म आते है जिससे प्राणी पराधीन हो जाते है।

(८) **संवर**—कर्मों के आने को रोकना ही जीवका हित है, जिससे स्वाधीनता प्राप्त हो।

(९) **निर्जरा**—पूर्व मे बांधे कर्मों को ध्यानादि तप कर के दूर करना ही श्रेष्ठ है।

(१०) **लोक**—यह लोक अनादि अनन्त अकृत्रिम है, छः द्रव्यो से भरा है। इस में एक सिद्ध क्षेत्र ही वास करने योग्य परम सुखदाई है।

(११) **बोधिदुर्लभ**—आत्मोद्धार का मार्ग तो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र है। उसका लाभ बड़ा कठिन है। अब हुआ है तो इसे रक्षित रखना योग्य है।

(१२) **धर्म**—धर्म आत्मा का स्वभाव है, यह मुनि व श्रावक के भेद से दो तरह है। दश लक्षण रूप है, अहिंसामई है, यही हितकारी है। *

---

* अनित्याशरण संसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवर निर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्याततत्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥ ७ ॥ (तत्वा० अ० ९)

४६. बाईस परीषह जय

जिन को शात मन से सहा जावे उनको परीषह कहते हैं। कष्टो के सहने से धर्म मे दृढ़ता होती है व कर्मों का नाश होता है व संवर होता है। वे परीषह निम्न बाईस होती हैं, जिन को साधु महाराज ही विजय करते हैं:—

१. क्षुधा–भूख की बाधा २ पिपासा–प्यास की बाधा ३. शीत–सरदी का कष्ट ४. उष्ण–गर्मी की बाधा ५. दंशमशक–डाँस मच्छरों के काटने की बाधा ६. नाग्नय–नग्न रहने की लज्जा ७ अरति–अमनोज्ञ पदार्थ मिलने पर अप्रीति ८. स्त्री–स्त्रियो के हाव-भाव विलास का जाल ९. चर्या–मार्ग मे पैदल चलने का कष्ट १०. निषद्या–आसन से बैठने का कष्ट ११. शय्या–भूमि पर सोने की बाधा १२. आक्रोश–गाली सुनने पर विकार १३. बध–मारे पीटे जाने का दुःख १४. याचना–मांगने की इच्छा १५. अलाभ–भोजनादि में अन्तराय का खेद १६. रोग–शरीर में रोगो की पीड़ा १७. तृण स्पर्श–आते जाते कठोर तृणो का स्पर्श १८. मल–शरीर मैला रहने का भाव १९ सत्कार पुरस्कार–आदर सत्कार न होने से खेद २०. प्रज्ञा–बहुत ज्ञानी होने का मद २१. अज्ञान–ज्ञान न बढ़ने का खेद २२. अदर्शन–तप माहात्म्य न प्रकट होने पर तप मे अश्रद्धा।

इन २२ परिषहों को जीत कर आत्म रस पान करते हुए शांत मन रखने से परिषह जय होता है।

५०. पांच प्रकार चारित्र

(१) **सामायिक**—राग द्वेष त्याग कर समता भाव से आत्मा के ध्यान मे चित्त को मग्न करना तथा शत्रु, मित्र, तृण, कञ्चन, मान, अपमान मे समान भाव रखना। मुनियो का यह परम धर्म है।

(२) **छेदोपस्थापना**—सामायिक भाव से गिर कर फिर अपने को सामायिक भाव में स्थिर करना व साधु व्रत मे कोई दोष लगने पर उसकी शुद्धि कर के फिर स्थिर होना।

(३) **परिहार विशुद्धि**—एक विशेष चरित्र जो तीर्थ-कर भगवान की सगति से साधु को प्राप्त होता है, जिस से जीव रक्षा में बहुत सावधानी हो जाती है।

(४) **सूक्ष्म सांपराय**—एक ऐसी आत्म-मग्नता जिस मे बहुत ही सूक्ष्म लोभ का उदय रहता है।

(५) **यथाख्यात**—जैसे चाहिए वैसा सर्व कषाय रहित निर्मल वीतराग भाव। *

५१. निर्जरा तत्व

जिन आत्मा के परिणामों से कर्म, फल देकर या बिनाफल दिये हुए आत्मा से झड़जाते है वह भावनिर्जरा है और कर्मों का झड़ना सो द्रव्य निर्जरा है। जहां कर्म फल देकर झड़ते है उसको सविपाक निर्जरा कहते हैं, जहां बिना फल दिये हुए

---

* देखो तत्वार्थसूत्र अ० ९

झड़ते है वह अविपाक निर्जरा है। वास्तव मे पहले बांधे हुए कर्मों का विनाफल दिये हुए तप आदि वीतराग भावोंके द्वारा झड़ने को ही निर्जरातत्व कहते हैं। यही मोक्ष का कारण है।

तप बारह तरह का है जिसका पालन साधु महात्मा उत्तम प्रकार से करते है। ※

५२. बारह तप

इस तपके दो भेद हैं—बाह्य और अन्तरङ्ग। जो प्रगट दीखें व जिसका असर शरीर पर मुख्यतासे पड़े वह बाह्य तप है व जिसका असर मुख्यता से भावों पर पड़े सो अन्तरंग तप है। हर एक के छ छ भेद हैं :—

१. बाह्य तप के छः भेद :—

(१) **अनशन**—खाद्य—जिस से पेट भरे; स्वाद्य-जो स्वाद सुधारे, इलायची आदि; लेह्य—जो चाटने मे आवे, चटनी आदि, पेय—जो पीने योग्यहो, जलादि; इन चार प्रकार के आहार का जन्म पर्यंत या एक दो दिन आदि की मर्यादा से त्यागकर इंद्रिय विषय और कषायों से अलग रहकर धर्मध्यान मे लीन रहना सो अनशन है।

(२) **अवमौदर्य**—इंद्रियो की लोलुपता कम करते

※ जह कालेण तवेण य भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण ।
भावेण सडदि णेया तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥ ३६ ॥

(द्रव्य संग्रह)

हुए सदा आहार कम करना, जिससे ध्यान व स्वाध्यान में आलस्य न हो।

(३) वृत्तिपरिसंख्यान—भोजन के लिये जाते हुए कोई प्रतिज्ञा लेलेना और बिना किसी के कहे हुए उसके अनुसार भोजन मिलने पर लेना, नहीं तो उपवास करना; जैसे किसी साधु ने यह नियम लिया कि कोई पुरुष बिल्कुल सादी धोती और डुपट्टा ओढ़े हुए यदि भक्ति से भोजन देगा तो लेंगे। प्रण पूर्ण न होने पर भिक्षा से लौट आना व समता भाव रखना।

(४) रसपरित्याग—दूध, दही, घी, शक्कर (मिष्ट-रस), तैल, निमक, इन छः रसों में से एक व अनेक का जन्म-पर्यंत व मर्यादा रूप त्यागना तथा रस से मोह न कर केवल उदर भरने को भोजन करना।

(५) विविक्त शय्यासन—ध्यान की सिद्धि के लिए एकांत में सोना बैठना।

(६) कायक्लेश—शरीरके सुखियापनेको हटानेके लिए शरीर को कठिन २ क्लेश देकर भी मनमें दुःख न मानकर हर्षित होना। जैसे धूपमे खड़े हो ध्यान करना, कंकड़ो पर लेट जाना आदि।

२. अन्तरङ्ग तप के छः भेद :—

(१) प्रायश्चित—दोष होने पर उसका दण्ड लेकर दोष को मेटना। यह दण्ड निम्नलिखित नौ तरह का होता है :—

१. आलोचना—गुरु के पास सरल भाव से दोष कह देना।

२. प्रतिक्रमण—एकांत में बैठकर दोष का पश्चाताप करना।

३. तदुभय—ऊपर के दोनो कामो को करना।

४. विवेक—किसी पदार्थ का जैसे दूध, घी, आदि का कुछ काल के लिए त्याग देना।

५. व्युत्सर्ग—कायसे ममता त्याग एक या अनेक कायोत्सर्ग रूप से ध्यान करना। नौ बार णमोकार मंत्र कहने या २७ श्वासोच्छ्वास मे जो समय लगे वह एक कायोत्सर्ग का काल है।

६. तप—एक व अनेक उपवास आदि ग्रहण करना।

७. छेद—मुनि दीक्षा का समय घटा देना।

८. परिहार—मुनि संघसे कुछ काल के लिए अलग करना।

९. उपस्थापन—फिर से दीक्षा देकर शुद्ध करना।

(२) विनय—भीतर से बड़ा आदर रखना। यह चार तरह का है—

१. ज्ञानविनय—बड़े भाव से ज्ञान को बढ़ाना।

२. दर्शनविनय—बड़ी भक्ति से सच्चे तत्त्वो मे श्रद्धा स्थिर रखना।

३. चारित्र विनय—बड़े आदर से साधु का या श्रावक का चारित्र पालना।

४. उपचार विनय—देव, गुरु, शास्त्र आदि पूजनीय पदार्थों का मुख से स्तवन व काय से नमन आदि करना।

(३) वैय्यावृत्य—बिना किसी स्वार्थ के सेवा करना। निम्न दश प्रकार के साधुओं की सेवा सदा करनी चाहिये:—

१. आचार्य २. उपाध्याय ३. तपस्वी ४. शैक्ष्य-नवीन शिष्य मुनि ५. ग्लान-रोगी ६. गण-एक विशेष संघ ७. कुल-एक ही गुरु के शिष्य ८. संघ-मुनि समूह ९. साधु-बहुत काल के साधक १०. मनोज्ञ-सुन्दर विद्वान सुप्रसिद्ध साधु।

(४) स्वाध्याय—शास्त्रों का मनन-यह पांच तरह से होता है। १. वॉचना-पढ़ना सुनना २. पृच्छना-शङ्का को साफ़ करने के लिए प्रश्न कर निर्णय करना ३. अनुप्रेक्षा-जाने हुए पदार्थों का बार २ चिन्तवन करना ४. आम्नाय-शुद्ध शब्द व अर्थ कंठ करना ५. धर्मोपदेश करना।

(५) व्युत्सर्ग—बाहरी और भीतरी परिग्रह से ममता त्यागना-ऐसा दो प्रकार है।

(६) ध्यान—चित्त को एक किसी पदार्थ में रोक कर तन्मय हो जाना।‡

५३. ध्यान

ध्यान चार तरह का होता है—१. आर्त्त २. रौद्र ३. धर्म ४. शुक्ल। इनमें पहिले दो पापबन्ध के कारण हैं। धर्म और

---

‡ अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशाबाह्यं तपः ॥ १९ ॥ प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ॥ २० ॥ (तत्त्वा० अ० ९)

शुक्ल में जितनी वीतरागता है वह कर्मों की निर्जरा करती है व जितना शुभराग है वह पुण्य बन्ध का कारण है।

१. आर्तध्यान चार तरह का होता है—

१. इष्ट वियोगज—इष्ट स्त्री, पुत्र, धनादि के वियोग पर शोक करना।

२ अनिष्ट संयोगज—अनिष्ट दुखदाई सम्बन्ध होने पर शोक करना।

३. पीडा चिन्तवन—पीड़ा रोग होने पर दुःखी होना।

४. निदान—आगामी भोगो की चाह से जलना।

२. रौद्रध्यान चार तरह का होता है—

१. हिंसानन्द—हिंसा करने कराने में व हिंसा हुई सुन कर आनंद मानना।

२. मृषानन्द—असत्य बोलकर, बुलाकर व बोला हुआ जान कर आनन्द मानना।

३ चौर्यानन्द—चोरी करके, कराके व चोरी हुई सुन कर हर्षित होना।

४. परिग्रहानन्द—परिग्रह बढ़ा कर, व बढ़वा कर व बढ़ती हुई देखकर हर्ष मानना।

३. धर्मध्यान चार प्रकार का है—

१. आज्ञाविचय—जिनेन्द्र की आज्ञानुसार आगम के द्वारा तत्वों का विचार करना।

२. अपाय विचय—अपने व अन्य जीवों के अज्ञान व कर्म के नाश का उपाय विचारना।

३. विपाक विचय—आपको व अन्य जीवों को सुखी या दुःखी देखकर कर्मों के फल का स्वरूप विचारना।

४. संस्थान विचय—इस लोक का तथा आत्माका आकार व स्वरूप का विचार करना। इसके निम्न चार भेद हैं :—

१. पिंडस्थ २. पदस्थ ३. रूपस्थ ४. रूपातीत।

५४. पिंडस्थ ध्यान

ध्यान करने वाला मन वचन काय शुद्ध कर एकांत स्थान में जाकर पद्मासन या खड़े आसन व अन्य किसी आसन से तिष्ठ कर अपने पिंड या शरीर में विराजित आत्मा का ध्यान करे सो पिंडस्थ ध्यान है। इसकी पांच निम्न लिखित धारणायें हैं :—

१. पार्थिवोधारणा—इस मध्यलोक को चीर समुद्र के समान निर्मल देख कर उस के मध्य में एक लाख योजन व्यास वाले जम्बूद्वीप के समान ताए हुए सुवर्ण के रङ्ग का एक हजार पांखड़ी का एक कमल विचारे। इस कमल के मध्य सुमेरु पर्वत समान पीत रङ्ग की ऊँची कर्णिका विचारे। फिर इस पर्वत के ऊपर पाण्डुक वन में पाण्डुक शिला पर एक स्फटिक मणिका सिंहासन विचारे और यह देखे कि मैं इसी पर अपने कर्मों को

नाश करने के लिए बैठा हूँ। इतना ध्यान बार बार करके जमावे और अभ्यास करे। जब अभ्यास हो जावे तब दूसरी धारणा का मनन करे।।

२. अग्निधारणा—उसी सिंहासन पर बैठा हुआ ध्यान करने वाला यह सोचे कि मेरे नाभि के स्थान मे भीतर ऊपर मुख किये खिला हुआ एक १६ पांखड़ी का श्वेत कमल है। उसके हर एक पत्ते पर अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ऐसे १६ स्वर क्रम से पीले लिखे हैं व बीच में र्हं पीला लिखा है। इसी कमल के ऊपर हृदय स्थान में एक कमल औंधा खिला हुआ आठ पत्ते का काले रङ्ग का विचारे जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय ऐसे आठ कर्म रूप है, ऐसा सोचे। पहिले कमल के र्हं के रेफ से धुआं निकलकर फिर अग्नि शिखा निकल कर बढ़ी, सो दूसरे कमल को जलाने लगी। जलाते हुए शिखा अपने मस्तक पर आ गई और फिर वह अग्निशिखा शरीर के दोनों तरफ़ रेखारूप आकर नीचे दोनों कोनों से मिल गई और शरीर के चारों ओर त्रिकोणरूप हो गई। इस त्रिकोण की तीनों रेखाओं पर र र र र र र र र अग्निमय वेष्टित है तथा इस के तीनों कोनों में बाहर अग्निमय स्वस्तिक हैं। भीतर तीनो कोनो में अग्निमय ॐर्र लिखे हैं, ऐसा विचारे। यह मण्डल

भीतर तो आठ कर्मों को और बाहर शरीर को दग्ध करके राख-रूप बनाता हुआ धीरे २ शान्त हो रहा है और अग्निशिखा जहां से उठी थी वहीं समा गई है, ऐसा सोचना सो अग्निधारणा है। इस मण्डल का चित्र इस तरह पर है :—
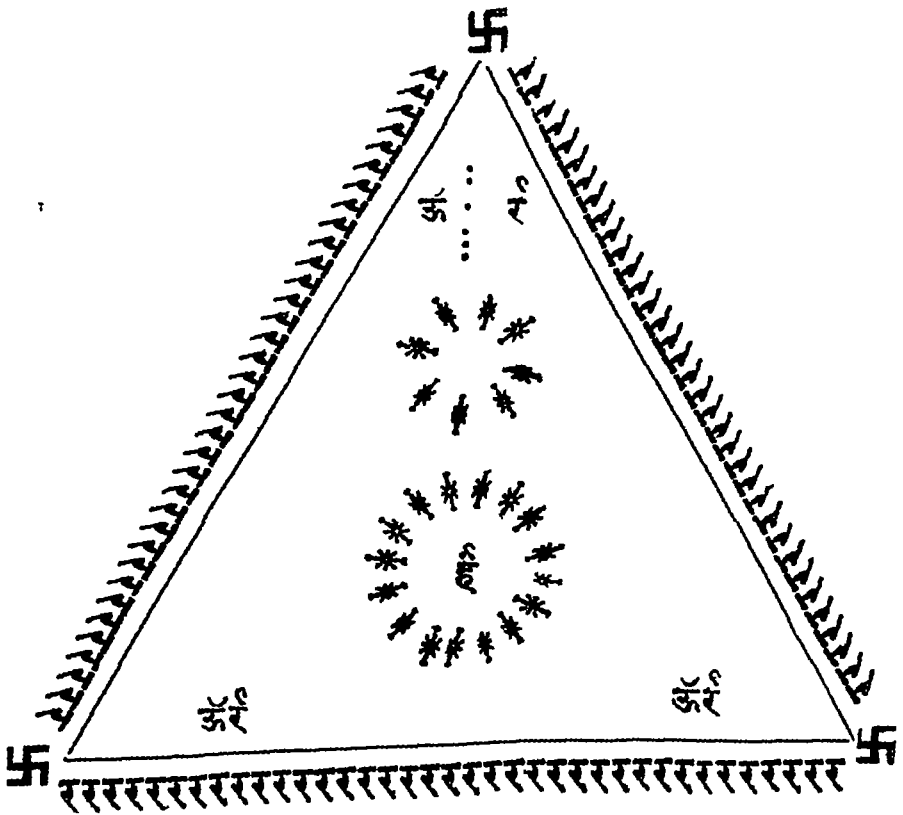
३. पवन धारणा—दूसरी धारणा का अभ्यास होनेके पीछे यह सोचे कि मेरे चारों ओर पवन मण्डल घूम कर

राख को उड़ा रहा है। उस मंडल में सब ओर स्वाय स्वाय लिखा है। ❀

४. जल धारणा—तीसरी धारणा का अभ्यास होने पर फिर यह सोचे कि मेरे ऊपर काले मेघ आ गए और खूब पानी बरसने लगा। यह पानी, लगे हुए कर्म मैल को धोकर आत्मा को स्वच्छ कर रहा है। प प प प अर्द्ध चन्द्राकार जल मंडल पर सब ओर लिखा है। †

५. तत्व रूपवती धारणा—चौथी का अभ्यास हो जावे तब अपने को सर्व कर्म व शरीर रहित शुद्ध सिद्ध समान अमूर्तीक स्फटिकवत् निर्मल आकार देखता रहे, यह पिंडस्थ आत्मा का ध्यान है।

५५. पदस्थध्यान

पदस्थ ध्यान भी एक भिन्न मार्ग है। साधक इच्छानु-

सार इसका भी अभ्यास कर सकता है। इसमें भिन्न २ पदोंको विराजमान कर ध्यान करना चाहिये। जैसे हृदय स्थान मे आठ पाँखड़ी का सुफेद कमल सोचकर उसके आठ पत्तों पर क्रम से निम्न लिखित आठ पद पीले लिखे :—
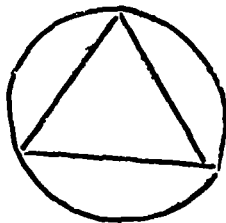
१. णमो अरहंताणं २ णमो सिद्धाणं ३ णमोआइरीयाणं ४. णमोउवज्झायाणं ५. णमो लोएसव्वसाहूणं ६. सम्यग्दर्शनायनमः ७. सम्यग्ज्ञानायनमः ८. सम्यक् चारित्रायनमः और एक एक पद पर रुकता हुआ उस का अर्थ विचारता रहे। अथवा अपने हृदय पर या मस्तक पर या दोनों भौंहो के मध्य मे या नाभि में ह्रैं या ॐ को चमकते सूर्य सम देखे व अरहंत सिद्ध का स्वरूप विचारे। इत्यादि।

५६. रूपस्थ ध्यान

ध्याता अपने चित्तम यह सोचे कि मैं समवशरण मे साक्षात् तीर्थङ्कर भगवान को अन्तरीक्ष ध्यानमय परम वीतराग, छत्र चमरादि आठ प्रातिहार्य सहित देख रहा हूं। १२ सभायें हैं जिनमें देव, देवी, मनुष्य, पशु, मुनि आदि बैठे हैं। भगवान का उपदेश हो रहा है। अथवा ध्याता किसी भी अरहन्त की प्रतिमा को अपने चित्त में लाकर उसके द्वारा अरहन्त का स्वरूप विचारे।

५७. रूपातीत ध्यान

ध्याता इस ध्यान मे अपने को शुद्ध स्फटिकमय सिद्ध भगवान के समान देखकर परम निर्विकल्प रूप हुआ ध्यावे।

५८. शुक्ल ध्यान

धर्म ध्यान का अभ्यास मुनिगण करते हुए जब सातवें दर्जे (गुणस्थान) से आठवें दर्जे मे जाते हैं तब से शुक्ल ध्यान को ध्याते हैं। इसके भी चार भेद हैं। पहले दो साधुओं के, अन्त के दो केवलज्ञानी अरहन्तो के होते हैं।

१. पृथक्त्व वितर्क वीचार—

यद्यपि शुक्ल ध्यान मे ध्याता बुद्धिपूर्वक शुद्धात्मा में ही लीन है तथापि उपयोग की पलटन जिस मे इस तरह होवे कि मन, वचन, कायका आलम्बन पलटता रहे, शब्द पलटता रहे व ध्येय पदार्थ पलटता रहे, वह पहला ध्यान है। यह आठवें से ११ वें गुणस्थान तक होता है।

२. एकत्व वितर्क अवीचार—

जिस शुक्ल ध्यान मे मन, वचन, काय योगों में से किसी एक पर, किसी एक शब्द व किसी एक पदार्थ के द्वारा उपयोग स्थिर हो जावे सो दूसरा शुक्ल ध्यान १२ वें गुणस्थान में होता है।

३. सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति—

अरहन्त का काय योग जब तेरहवें गुणस्थान के अन्त में सूक्ष्म रह जाता है तब यह ध्यान कहलाता है।

४. व्युपरत क्रिया निवर्ति—

जब सर्वयोग नहीं रहते व जहां निश्चल आत्मा हो जाता

है तब यह चौथा शुक्ल ध्यान चौदहवें गुणस्थान में होता है। यह सर्व कर्म बंधन काटकर आत्मा को परमात्मा या सिद्ध कर देता है। *

५९. मोक्ष तत्व

जब कर्मबंध के कारण मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग सब बंद हो जाते है व पहले बांधे हुए सर्व कर्मों की निर्जरा हो जाती है, तब यह जीव सूक्ष्म व स्थूल शरीरों से छुटा हुआ पूर्ण शुद्ध होकर अन्तिम देह के आकार से कुछ कम सीधा ऊपर को गमन करता है और लोकाकाश के अंत मे सिद्ध क्षेत्र पर ठहर जाता है। वहां उसी ध्यानाकार चैतन्यमई भाव में अन्य आत्माओं से भिन्न अपने सर्व गुणों को पूर्ण विकसित करता हुवा अनंत अतींद्रिय सच्चे आनंद मे मग्न रह कर परम निराकुल व परम कृतकृत्य हो जाता है। न यह किसी मे मिलता है न यह फिर कभी अशुद्ध होकर जन्म धारण करता है। इसी को परमात्मा, परमब्रह्म, परमप्रभु, ईश्वर, सर्वज्ञ, वीतराग, परम-सुखी कहते हैं। †

---

* ध्यान का विशेष स्वरूप श्री शुभचन्द्राचार्यकृत ज्ञानार्णव ग्रन्थ में देखो।

† अभावाद्बन्ध हेतूनां बन्ध निर्जरयातथा।
कृत्स्न कर्म प्रमोक्षोऽहि मोक्ष इत्यभिधीयते ॥ २ ॥
दग्धे बीजे यथात्यन्तं प्रादुर्भवति नांकुरः।
कर्मबीजे तथा दग्धे न रोहति भवांकुरः ॥ ७ ॥
आकारभावतोऽभावो न च तस्य प्रसज्यते।
अनन्तर परित्यक्त शरीराकार धारिणः ॥ १५ ॥

आत्मा जैसा अन्तिम शरीर छोड़ते समय होता है वैसा ही उसका चेतनामय आकार सिद्ध क्षेत्र में रहता है। शरीर की माप मे नखकेशादि की माप भी आ जाती है। जिनमे आत्मा व्यापक नहीं है, इतनी नाप कम होजाती है।

६०. चौदह गुणस्थान

संसारी जीवों के मोहनीय कर्म और योगों के निमित्त से चौदह दर्जे होते हैं जिन में यह आत्मा भावों के क्रम से अशुद्धि कम करता हुआ पूर्ण परमात्मा हो जाता है। इन को गुण-स्थान कहते हैं—

१. **मिथ्यात्व गुणस्थान**—जिस मे सात तत्वों का देव, गुरु, धर्म व आत्मा का सच्चा श्रद्धान न हो, आत्मानन्द की

संसार विषयातीतं सिद्धानामव्ययं सुखम्।
अव्याबाधमिति प्रोक्तं परमं परमर्षिभि.॥ ४५ ॥

(तत्वार्थसार मोक्षतत्व)

भावार्थ—बंध कारणों के चले जाने से व बन्ध की निर्जरा हो जाने से सर्व कर्मों मे छूटने का नाम मोक्ष है। जैसे बीज भुन जाने पर फिर उस मे अंकुर नहीं फूट सकता वैसे कर्मबीज के जल जाने पर संसार अंकुर नहीं होता।

सिद्ध परमात्मा के आकार का अभाव नहीं है। वह पिछले छूटे हुए शरीर के प्रमाण आकार धारी हैं। सिद्धों के संसार के इन्द्रिय विषयों से भिन्न, बाधा रहित, अविनाशी, उत्कृष्ट सुख पैदा होता है, ऐसा परमर्षियों ने कहा है।

पहिचान न हो। संसार सुख ही सुहावे। इस में प्रायः सर्व संसारी जीव हैं।

२. सासादन गुणस्थान—पहिले दर्जे से एक दम चौथे अविरत सम्यक्त्व में जाकर अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से गिर कर इसमें आता है फिर तुरन्त ही मिथ्यात्व में चला जाता है।

३. मिश्र गुणस्थान—जहां मिथ्या व सत्य श्रद्धान के मिले हुए भाव होते है। जैसे दही मीठे का मिला हुआ स्वाद। यहां दर्शन मोह की सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति का उदय होता है।

४. अविरत सम्यक्त्व—अनादि मिथ्यादृष्टि जीव आत्मा अनात्मा के विवेक होने पर निर्मल भावों से तत्व का मनन करते हुए जब अनन्तानुबन्धी कशाय चार और मिथ्यात्व प्रकृति इन पांच का उपशम कर देता है अर्थात् इनके उदय को अन्त-र्मुहूर्त के लिए दबा देता है तब पहिले से झट चौथे में आकर उप-शम सम्यक्त्वी हो जाता है। तब मिथ्यात्व कर्म के तीन टुकड़े कर देता है, कुछ सम्यक् प्रकृति रूप, कुछ मिश्ररूप, कुछ मिथ्या-त्वरूप। तब इसकी सत्ता में सम्यग्दर्शन की बाधक सात प्रकृतियें हो जाती है।

यह जीव अन्तर्मुहूर्त के भीतर कुछ समय रहते हुए यदि अनन्तानुबन्धी का उदय पालेता है तब सासादन में गिरता है, यदि अन्तर्मुहूर्त पीछे मिथ्यात्व का उदय हो जाता है तो फिर

चौथे से पहिले में आ जाता है। यदि सम्यक् प्रकृति का उदय हुआ तो चौथे में ही रह कर क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि हो जाता है। क्षयोपशम सम्यक्त्व से गिर कर मिश्र प्रकृति के उदय होने पर तीसरे में आ सकता है।

इस क्षयोपशम सम्यक्त्व का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ६६ सागर काल है। यही यदि सातों प्रकृतियों का क्षय कर डालता है तो क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जाता है। फिर अनंत काल तक कभी मिथ्यात्वी नहीं होता है और तीसरे या चौथे भव में मोक्ष पा लेता है।

जो सम्यग्दर्शन से गिरकर पहिले में आता है उसको सादि मिथ्यादृष्टि कहते हैं, उसको फिर चौथे में जाने के लिए सात प्रकृतियो का व कभी केवल चार कषाय व एक मिथ्यात्व का ही उपशम करना पड़ता है; और तब मिश्र तथा सम्यक् प्रकृति दोनों सत्ता में से खिर जाती हैं।

५. देश विरत—सम्यग्दृष्टि जीव श्रावक गृहस्थ के व्रतों को रोकने वाली अप्रत्याख्यानावरण चार कषाय के उपशम होने पर इस दर्जे मे आकर श्रावक के बारह व्रतों को ग्यारह श्रेणियों या प्रतिमाओं के द्वारा उन्नति करता हुआ पालता है।

इसके आगे के दर्जे साधुओं के है।

६. प्रमत्त विरत—प्रत्याख्यानावरण कषाय जो मुनिव्रत को रोकती थी उसके उपशम होने पर यह दर्जा होता है। यह

सातवें से गिरकर होता है, पांचवें से सातवें में जाता है। छठा सातवाँ बार बार होता रहता है।

इसके आगे के दर्जों मे प्रमाद भाव नहीं रहता है।

७. अप्रमत्त विरत—यहाँ संज्वलन चार व नौ नो कषाय का मंद उदय होने पर धर्म ध्यान में निर्विकल्परूप से मग्न रहता है।

इसके आगे दो श्रेणियां है—एक उपशम दूसरी क्षपक। जहां अनन्तानुबंधी चार के सिवाय २१ कषायों का उपशम किया जावे वह उपशम व जहां क्षय किया जावे वह क्षपक श्रेणी है। उपशम के ८, ९, १० व ११ तथा क्षपक के ८, ९, १० व १२ ऐसे चार दर्जे है। उपशमवाला ११ वें से अवश्य गिरता है। क्षपक १० वें से १२ वें में जाकर चार घातिया कर्म रहित होकर १३ वें मे जाकर अरहन्त परमात्मा हो जाता है।

८. अपूर्व करण—जहां अनुपम शुद्ध भाव हों—यहां साधु के पहिला शुक्ल ध्यान होता है।

९. अनिवृत्ति करण—जहां ऐसे शुद्ध भाव हों कि साधु सर्व अन्य कषायो का उपशम या क्षय कर डाले, केवल अंत में सूक्ष्म लोभ रह जावे।

१०. सूक्ष्म साम्पराय—जहां केवल सूक्ष्म लोभ रह जावे व साधु ध्यानमग्न ही बना रहे।

११. उपशांत मोह—जहां सर्व कषायों का उपशम होकर साधु वीतरागी हो जावे।

१२. क्षीण मोह—जहां सर्व कषायों का क्षय होकर साधु वीतरागी बना रहे, गिरे नहीं। यहां दूसरा शुक्ल ध्यान होता है।

१३. सयोगकेवली—यहां ज्ञानावरणादि ४ घातिया कर्मों से रहित हो अरहन्त परमात्मा, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त-बली व अनन्त सुखी हो जाता है व शरीर में रहते हुए जिसके बिना इच्छा के विहार व उपदेश होता है। यहां आत्मा के प्रदेश सकम्प होते है, इससे सयोग कहलाते हैं। यहां अंत मे तीसरा शुक्लध्यान होता है।

१४. अयोग केवली—जहां आत्म प्रदेश सकम्प न हो, निश्चल आत्मा रहे। यहां चौथा शुक्लध्यान होता है जिससे सर्व कर्मों का नाश कर गुणस्थानों से बाहर हो सिद्ध परमात्मा हो जाता है।

इसका ठहरने का काल उतना है जितनी देर में अ, इ, उ, ऋ, लृ, ये पांच अक्षर कहे जावें। १३ वें का व ५ वें का उत्कृष्ट काल लगातार एक कोड़पूर्व ८ वर्ष व अन्तर्मुहूर्त कम है। दूसरे का छः आवली। *

चौथे का तेतीस सागर कुछ अधिक। तीसरे का व छटे से लेकर १२ वें तक का प्रत्येक का अन्तर्मुहूर्त से अधिक काल नहीं है। पहले का काल अनन्त है।

---

* आवली असंख्यात समयों की होती है। पलक मारने में जो समय लगे उसके लगभग।

यह काल की मर्यादा एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट कही गई है । ‡

६१. गुणस्थानों में कर्मों का बंध, उदय और सत्ता का कथन

१४८ कर्मों मे से १२० बँध में व १२२ उदय में गिनाई गई है । ५ बंधन, ५ संघात, पांच शरीरों में तथा स्पर्शादि २० केवल मूल चार स्पर्शादि मे, मिश्र व सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व में गर्भित हैं । इस तरह बंध मे १०+१६+२ अर्थात् २८ कम व उदय में १०+१६ केवल २६ ही कम हुई, केवल मिश्र व सम्यक् प्रकृति नहीं ।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व से मिथ्यात्व कर्म के तीन खण्ड हो जाते हैं—मिथ्यात्व, मिश्र व सम्यक्त्व; इसलिये बंध एक का और उदय तीन का होता है ।

जितने कर्म नये बंधते है उनको बंध, जितने फल देते हैं व बिना फल दिये निमित्त बिना गिरते हैं उनको उदय और जो बिना फल दिये व गिरे बैठे रहे उनको सत्ता कहते है ।

---

‡ मिथ्यादृक् सासनो मिश्रोऽसंयतो देशसंयतः ।
प्रमत्त इतरोऽपूर्वानिवृत्ति करणौ तथा ॥ १६ ॥
सूक्ष्मोपशान्त संक्षीणकषाया योग्ययोगिनौ ।
गुणस्थान विकल्पाः स्युरितिसर्वे चतुर्दश ॥ १७ ॥

[तत्वार्थसार अ० २]

१. मिथ्यात्व गुणस्थान में—

बंध—१२० में से ११७ का। यहां तीर्थङ्कर, आहारक शरीर व आहारक आङ्गोपाङ्ग का बंध नहीं होता है।

उदय—१२२ में से ११७ का। यहां तीर्थङ्कर, आहारक, दो सम्यक् प्रकृति व मिथ्यात्व, इन पांच का उदय नहीं।

सत्ता—१४८ को ही।

२. सासादन गुणस्थान में—

बंध—११७ में से १६ कम यानी १०१ का। वे १६ ये हैं:—

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकआयु, नरक गति, नरक गत्यानुपूर्वी, हुंडक संस्थान, असंप्राप्तासृपाटिक संहनन, एकेन्द्रिय से चौंद्रिय चार जाति, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण।

उदय—११७ में से निम्न ६ निकाल कर १११ का:—

मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, नरक-गत्यानुपूर्वी।

सत्ता—१४५ की। १४८ मे से तीर्थङ्कर, आहारक दो यह तीन कम होतो हैं।

३. मिश्र गुणस्थान में—

बंध—१०१ में से २७ कम करके ७४ का। वे २७ ये हैं:—

स्त्यानगृद्धि, निद्रा निद्रा, प्रचला प्रचला, अनन्तानुबन्धी क्रोधादि ४, स्त्रीवेद, तिर्यंच आयु, तिर्यंचगति, तिर्यंच गत्यानुपूर्वी,

नीचगोत्र, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोध से वामन चार संस्थान, वज्रनाराच से ले कीलक चार संहनन, मनुष्यायु और देवायु।

उदय—१०० का। १११ में से अनन्तानुबन्धी ४, एकेन्द्रिय से चौइंद्रिय तक ४ जाति, स्थावर, तिर्यंच मनुष्य देवगत्यानुपूर्वी ३, ऐसे १२ घटाने व एक सम्यक् मिथ्यात्व मिलाने से ११ घटती हैं।

सत्ता—१४७ की तीर्थङ्कर के सिवाय।

४. अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में—

बंध—७७ का। तीसरे की ७४ में मनुष्यायु, देवायु, तीर्थंकर तीन मिलाने पर।

उदय—१०४ का। तीसरे की १०० मे से सम्यक् मिथ्यात्व को घटा कर ९९ रहीं, उन मे चार गत्यानुपूर्वी व एक सम्यक् प्रकृति मिला देने पर।

सत्ता—१४८ की। यदि क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो तो एक सो इकतालीस की ही सत्ता होगी।

५. देशविरत गुणस्थान में—

बंध—६७ का। चौथे की ७७ में से १० घटाने पर। वे १० ये हैं :—

अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार, मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्य गत्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपांग, बज्र वृषभनाराच संहनन।

उदय—८७ का। चौथे की १०४ में से १७ घटाने पर। वे १७ ये है :—

अप्रत्याख्यानावरण कषाय ४, नरकायु, देवायु, नरकादि ४ आनुपूर्वी, नरकगति, देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, दुर्भग, अनादेय, अयश।

सत्ता—नरकायु के बिना १४७ की, परन्तु क्षायिक के केवल १४० की ही।

६. प्रमत्तविरत गुणस्थान में—

बंध—६७ मे से प्रत्याख्यानावरण कषाय चार घटाने पर ६३ का।

उदय—८१ का। ८७ मे प्रत्याख्यानावरण कषाय ४, तिर्यंच आयु, तिर्यंचगति, उद्योत, नीच गोत्र घटाने व आहारक शरीर व आहारक आङ्गोपांग मिलाने से।

सत्ता—१४७ में से तिर्यंचायु घटाने पर १४६ की, परन्तु क्षायिक के केवल १३९ की।

७. अप्रमत्तविरत गुणस्थान में—

बंध—५९ का। ६३ में से अरति, शोक, असातावेदनीय, अस्थिर, अशुभ, अयश घटाने व आहारक शरीर व आहारक आङ्गोपांग मिलाने पर।

उदय—७६ का। ८१ मे से आहारक दो, निद्रा निद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि घटाने पर।

सत्ता—१४६ की, परन्तु क्षायिक के १३९ की।

८. अपूर्वकरण गुणस्थान में—

बंध—५९ में से देवायु घटा कर ५८ का।

उदय—७२ का। ७६ में से सम्यक् प्रकृति, अर्धनाराच, कीलक व असंप्राप्तासृपाटिक संहनन घटाने पर।

सत्ता—१४६ की तथा १४६ में से अनन्तानुबन्धी चार कषाय घटाने पर १४२ की, परन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि के १३९ की तथा क्षपक श्रेणी वाले के देवायु घटाकर १३८ की।

९. अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में—

बंध—२२ का। ५८ में से ३६ घटाने पर। वे ३६ ये हैं:—

निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, तीर्थङ्कर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पंचेन्द्रियजाति, तैजस शरीर; कार्मण शरीर, आहारक शरीर, आहारक आङ्गोपांग, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपांग, समचतुरस्र संस्थान, देव गति, देवगत्यानुपूर्वी, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श; अगुरुलघु, उपघात, परघात, उछ्वास, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय।

उदय—७२ में से हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगु-प्सा घटाने पर ६६ का।

सत्ता—आठवें के अनुसार १४६ या १४२, १३९ या १३८ की।

१०. सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में—

बंध—१७ का। २२ मे से संज्वलन क्रोधादि ४ व पुरुष वेद घटाने पर।

उदय—६० का। ६६ में से संज्वलन कषाय लोभ सिवाय ३ व स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेद, यह ६ घटाने पर।

सत्ता—उपशम श्रेणी मे १४६ या १४२ की व क्षायिक सम्यग्दृष्टि के १३८ की तथा क्षपक श्रेणी मे १०२ की। १३८ मे से ३६ घटाने पर वे ३६ ये हैं:—

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अप्रत्याख्यानावरण कषाय ४, प्रत्याख्यानावरण कषाय ४, संज्वलन क्रोध मान माया ३, नो कषाय ६, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंगगति, तिर्यंगत्यानुपूर्वी, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय से चौइंद्रिय ४, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर।

११, उपशांतमोह गुणस्थान में—

बंध—१ साता वेदनीय का। १७ मे से १६ घटाने पर। वे १६ ये हैं:—

ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अंतराय ५, उच्च गोत्र, यश।

उदय—५९ का। ६० में से संज्वलन लोभ घटाने पर।

सत्ता—दशवें की तरह १४६ या १४२ की व क्षायिक के १३९ की।

१२, क्षीणमोह गुणस्थान में—

बंध—११ वें की तरह १ साता वेदनीय का ही।

उदय—५७ का। ५९ में से वज्र नाराच व नाराच घटाकर।

सत्ता—१०वें की क्षपक श्रेणी में १०२ में से संज्वलन लोभ घटाकर १०१ को।

१३. सयोग केवली गुणस्थान में—

बंध—एक साता का।

उदय—५७ में से १६ घटाने पर ४१ का व तीर्थङ्कर के तीर्थङ्कर प्रकृति सहित ४२ का। वे १६ ये हैं:—

ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, निद्रा, प्रचला, अंतराय ५।

सत्ता—८५ की। १०१ मे से ज्ञानवरण ५, दर्शनावरण ४, निद्रा, प्रचला, अन्तराय ५ ऐसी १६ घटाने पर।

१४. अयोग केवली गुणस्थान में—

बंध—० कोई नहीं।

उदय—१२ का। ४२ में से ३० घटाने पर। वे ३० ये हैं:—

१ कोई वेदनीय, वज्र वृषभ नाराच संहनन, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपांग, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थानादि ६ संस्थान, स्पर्शादि ४, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रत्येक।

जो उदय में रहीं वे १२ ये हैं:—

१ वेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पंचेद्रिय जाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यश, उच्चगोत्र, तीर्थङ्कर।

नोट—जो तीर्थङ्कर नहीं होते उनके ११ का ही उदय रहता है।

सत्ता—८५ की थी, परन्तु अन्त समय के पहले समय में ७२, फिर अन्त में १३, इस तरह कुल ८५ का क्षय कर १४ वें गुणस्थान से छूटते ही कर्मों की सत्ता से छूट जाते हैं और सिद्ध परमात्मा निजानन्दी हो जाते हैं।

यह कथन अनेक जीवों की अपेक्षा है। एक कोई जीव मनुष्य हो या पशु हो या देव हो या नारकी हो व एकेन्द्रिय द्वेन्द्रिय आदि हो उसका कथन श्री गोम्मटसार कर्मकाण्ड से देखना चाहिये।

उपरोक्त कथन निम्न नक़शे से स्पष्ट समझ लेना चाहिये—

नक़शा

नाम गुणस्थान	बंध	उदय	सत्ता
मिथ्यात्व	११७	११७	१४८
सासादन	१०१	१११	१४५
मिश्र	७४	१००	१४७
अविरतसम्यग्दृष्टि	७७	१०४	१४८ या १४१
देश विरत	६७	८७	१४७ या १४०
प्रमत्त विरत	६३	८१	१४६ या १३९
अप्रमत्त विरत	५९	७६	१४६ या १३९
अपूर्व करण	५८	७२	१४६, १४२, १३९ या १३८
अनिवृत्ति करण	२२	६६	१४६, १४२, १३९ या १३८
सूक्ष्म सांपराय	१७	६०	१४६, १४२, १३९ या १०२
उपशांत मोह	१	५९	१४६, १४२ या १३९

क्षीण मोह	१	५७	१०१
सयोग केवली	१	४१ या ४२	८५
अयोग केवली	०	१२ या ११	अन्त में ०

६२. नौ पदार्थ

सात तत्वों में पुण्य और पाप जोड़ देने से नौ पदार्थ कहलाते है। आठ कर्म व उनके १४८ भेदों में पहले यह बताया जा चुका है कि पुण्यकर्म व पापकर्म कौन कौन हैं। वास्तव में ये आस्रव व बंध में गर्भित हैं, परन्तु लोगों में पुण्य पाप का नाम प्रसिद्ध है; इसलिये इनको विशेषरूप से भिन्न कहने की अपेक्षा नौ पदार्थ जैन सिद्धांत में कहे गये है।

६३. सम्यग्ज्ञान

ज्ञान तो हर एक जीव में थोड़ा या बहुत होता ही है। यह ज्ञान सम्यग्दर्शन के होने पर सम्यग्ज्ञान कहलाता है। जिसको सात तत्व और नौ पदार्थों के व विशेष कर आत्म मनन के प्रभाव से निश्चय सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है, उसी के उसी समय उसका सर्वज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम पा लेता है।

पूर्ण सम्यग्ज्ञान केवलज्ञान है जो सर्व कुछ देखता है। यह ज्ञान सम्यग्दर्शन सहित अपूर्ण सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र के प्रभाव से प्रगट होता है। इसके मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल, ये पांच भेद हैं जिनका वर्णन प्रमाण में किया गया है।

६४. सम्यक् चारित्र

वास्तव में जिस समय सम्यग्दर्शन हो जाता है, तब ही स्वरूपाचरण चारित्र भी प्रकट हो जाता है, परंतु कषायों का उदय जारी रहने से व राग द्वेष के होने मे पूर्ण सम्यक् चारित्र नहीं होने पाता है, इसी की प्राप्ति के लिए व्यवहार चारित्र की सहायता से आत्मा में एकाग्रता रूप स्वरूपाचरण का अभ्यास करना उचित है। *

इस सम्यक् चारित्र को जो पूर्णपने निराकुल होकर पाल सकते हैं वे साधु हैं; जो अपूर्ण पाल सकते हैं वह श्रावक या गृहस्थ हैं। वास्तव में बिना साधु हुए सर्व कर्मों का नाश नहीं हो सकता है।

६५. साधु का चारित्र

कोई वीर पुरुष परम वैरागी होकर, कुटुम्ब को समझाकर व सबसे क्षमा भाव कराकर वा यदि कुटुम्ब का सम्बन्ध न हुवा तो यों ही परोक्ष क्षमा भाव करके, किसी आचार्य के पास जाकर सर्व धनादि वस्त्रादि परिग्रह त्याग कर नग्न दिगम्बर हो साधु पद

---

* मोह तिमिरापहरणे दर्शन लाभादवाप्त संज्ञानः ।
राग द्वेष निवृत्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥ ४७ ॥
(रत्नकरण्ड०)

भावार्थ—मिथ्यादर्शन रूपी अँधेरे के जाने पर व सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होने पर राग द्वेष को हटाने के लिए साधु को चारित्र पालना चाहिए।

धार लेता है। साधु केवल मोर पंख की पिच्छिका जीव रक्षार्थ झाड़ने के लिए व कमण्डल में शौच के लिए जल व आवश्यक हो तो शास्त्र रखते है वे और कुछ नहीं धारण करते हैं। मोर के पंख बहुत कोमल होते है, इससे छोटे से छोटा कीट भी बच सकता है व ये पंख स्वयं मोर के नाचने पर गिर पड़ते हैं। वे निम्न २८ मूल गुण पालते हैं :—

५ महाव्रत, ५ समिति (जिनका वर्णन नं० ४४, ४५ में है) का पालन और ५ इंद्रियों की इच्छाओं का दमन करते हैं। छः आवश्यक नित्य कर्म पालते है—जैसे (१) सामायिक—अर्थात् प्रातःकाल, मध्यान्हकाल व सायंकाल छः घड़ी, ४ घड़ी व अशक्त होने पर २ घड़ी शान्ति से ध्यान का अभ्यास करना। एक घड़ी चौबीस मिनट की होती है। (२) प्रतिक्रमण—अपने मन, वचन, काय के द्वारा व्रतों के पालन में जो दोष लग गए हों उनका पश्चात्ताप करना (३) प्रत्याख्यान—आगामी दोष न लगाने का विचार करना (४) संस्तव—चौबीस तीर्थङ्कर आदि पूज्य आत्माओं की स्तुति करना (५) बन्दना—एक किसी तीर्थंकर को मुख्य करके उनको वंदना करनी (६) कायोत्सर्ग—शरीर से ममता त्याग कर आत्म-ध्यान में लीन होना।

इन २१ मूलगुणों के सिवाय सात बातें ये हैं :—

(१) लोंच—अपने मस्तक, दाढ़ी मूंछ के बालों को अपने ही हाथो से ४, ३ या कम से कम दो मास पीछे उखाड़

डालना । जिसके शरीर मे ममता न होगी. वही घास के समान बालो को नोचते हुए कभी क्लेशित न होगा।

(२) नग्नपन—शरीर को ढकने के लिये किसी तरह का वस्त्रादि साधु महाराज नहीं रखते हैं। बालक के समान लज्जा के भाव से रहित होते हैं।

(३) स्नान का त्याग—साधु महाराज जीवदया को पालने व शरीर की शोभा मिटाने को स्नान नहीं करते, मंत्र व वायु से ही उनके शरीर की शुद्धि होती है।

(४) भूमिशयन—जमीन पर विना बिछौने के सोते हैं।

(५) दातौन न करना—जीव दया पालने व शोभा मिटाने के हेतु दंतवन नहीं करते। भोजन के समय मुंह शुद्ध कर लेते हैं।

(६) स्थिति भोजन—खड़े होकर हाथ में ही जो श्रावक अपने लिए-बनाए-हुये भोजन मे से रख-दे उसी को लेते हैं जिससे ममता न बढ़े व वैराग्य की वृद्धि हो।

(७) एक भुक्त—दिन में ही एक दफ़े भोजन पानी एक साथ लेते हैं।

इन २८ मूल गुणों को पालते हुये जो आत्मध्यान का अभ्यास करते हैं वे साधु हैं।

ये साधु पहले कहे हुए संवर व निर्जरा के उपायों को

अच्छी तरह पालते हैं। इसी साधु पद से ही अरहन्त व सिद्ध पद प्राप्त होता है। ※

६६. आचार्य उपाध्याय व साधु का अन्तर

साधुओं में ही काय की अपेक्षा तीन पद हैं। जो दूसरे साधुओं की रक्षा करते हुए उनको शिक्षा देकर, उन पर अपनी आज्ञा चला कर, उनके चारित्र की वृद्धि करते हैं वे साधु आचार्य हैं।

जो साधु विशेष शास्त्रों के ज्ञाता होकर अन्य साधुओं को विद्या पढ़ाते हैं वे उपाध्याय हैं।

जो मात्र साधन करते हैं वे साधु हैं।

१४ गुणस्थानों में से जो छठे सातवें गुणस्थान में ही रहते हैं वे आचार्य व उपाध्याय हैं जो छठे से लेकर बारहवें तक साधते हैं वे साधु हैं।

६७. जैनियों का णमोकार मंत्र व उसका महत्व

सर्व जैन लोग नीचे लिखा महामंत्र जपा करते हैं और उसको अनादि मूलमंत्र कहते हैं।

"णमो अरहन्ताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरीयाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमोलोए सव्व साहूणम् ॥

※ २८ मूल गुण :—
वद समिदिंदियरोधो लोचावस्सक मचेल मराहाणं।
खिदि सयण मदंतवणं, ठिदिभोयण मेय भत्तंच ॥ ८ ॥
(प्रवचनसार चारित्र)

इसमें ७+५+७+७+९=३५ अक्षर हैं तथा ११+९ +११+१२+१६=५६ मात्राऐं हैं। इसका अर्थ है—

लोक में सब अरहन्तों को नमस्कार हो, सर्व सिद्धों को नमस्कार हो, सर्व आचार्यों को नमस्कार हो, सर्व उपाध्यायों को नमस्कार हो, सर्व साधुओं को नमस्कार हो। इस जगत में सबसे अधिक माननीय ये ही पांच पद हैं।

अरहंत शरीर सहित परमात्मा हैं जिनका गुणस्थान १३ वां व १४ वां है। सिद्ध शरीर रहित परमात्मा हैं। आचार्य दीक्षा दाता गुरु व उपाध्याय ज्ञान दाता मुनि, ये दोनों छठे सातवें गुणस्थान में होते हैं। इनके सिवाय मात्र साधने वाले छठे से १२ वें गुणस्थान तक साधु कहलाते हैं। बड़े २ इंद्रादि देव व चक्रवर्ती भी इनके चरणों को नमस्कार करते हैं।

यह मंत्र १०८ दफ़े जपा जाता है, क्योंकि १०८ प्रकार ही जीवों के बंध के आधार-भाव हुआ करते हैं।

किसी काम का विचार करना संरम्भ है, उसका प्रबन्ध समारंभ है, उसको शुरू कर देना आरम्भ है। हर एक मन, वचन, काय द्वारा हो सकते हैं, इससे नौ भेद हुए। इन नौ को स्वयं करना, कराना व किसी ने किया हो उसका अनुमोदन करना, इससे २७ भेद हुए। हर एक क्रोध, मान, माया, लोभ से होते हैं, इस तरह १०८ भेद हुए।

माला में १११ दाने होते हैं। तीन दाने सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र के सूचक होते हैं। जप करते हुए १०८

दफे मन्त्र जपते हैं। एक एक दाने पर पूर्णमंत्र फिर तीन दानों पर सम्यग्दर्शनायनमः, सम्यग्ज्ञानायनमः, सम्यक चारित्रायनमः कहते हैं।

यदि कोई छोटा मन्त्र जपना चाहे तो नीचे लिखे मन्त्र भी जपे जा सकते हैं।

१. अरहन्त सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्योनमः (१६ अक्षर) २. अरहन्त सिद्ध (६ अक्षर) ३. असि आ उ सा (५ अक्षर) ४. अरहन्त (४ अक्षर) ५. सिद्ध (२ अक्षर) ६. ॐ (एक अक्षर)।

ॐ पाँच परमेष्ठी का वाचक है, क्योंकि इनके प्रथम अक्षरों से बना है। अरहंत का अ, सिद्ध को अशरीर कहते हैं उसका अ, आचार्य का आ, उपाध्याय का उ, साधु को मुनि कहते हैं अतः इसका प्रथम अक्षर म् मिलकर ओम् या ॐ बना है।

इस मंत्र के प्रभाव से परिणाम निर्मल हो जाते हैं। बहुत से प्राणी मरते समय णमोकार मन्त्र सुनकर निर्मल भावों से शुभ गति में चले जाते हैं।

६८. मन्त्र प्रभाव की कथा

श्री रामचन्द्र मुमुक्षुकृत पुण्याश्रव कथा कोष में इस महा मन्त्र की अनेक कथायें हैं उनमें से एक कथा यहाँ दी जाती है :—

बनारस के राजा अकम्पन की कन्या सुलोचना विंध्यपुर के राजा विंध्यकीर्ति की कन्या विंध्यश्री के साथ विद्याध्ययन करती

थी । एक दफे फूलों को चुनते हुए विंध्यश्री को एक नाग ने काटा, उसी समय सुलोचना ने णमोकार मन्त्र सुनाया जिसके प्रभाव से वह मर कर गङ्गादेवी उत्पन्न हुई । इस मन्त्र के द्वारा भावों मे शान्ति आने से शुभ गति में जीव चला जाता है।

६६. श्रावक का साधारण चारित्र

एक श्रद्धावान श्रावक गृहस्थ को साधारणपने आत्मा की उन्नति के हेतु से नित्य नीचे लिखे छः कर्मों का अभ्यास अपनी शक्तियों के अनुसार करना चाहिए :—

(१) देवपूजा—अरहन्त और सिद्ध भगवान का पूजन करना जिसका वर्णन नं० १८ मे किया जा चुका है।

(२) गुरु भक्ति—आचार्य, उपाध्याय या साधु की भक्ति और सेवा करना व उनसे उपदेश लेना।

(३) स्वाध्याय—प्रमाणीक जैनशास्त्रों को रुचि से पढ़ना, सुनना उनके भावों का मनन करना ।

(४) संयम—५ इन्द्रिय और मन पर क़ाबू रखने के लिए नित्य सवेरे २४ घंटे के लिये भोग व उपभोग के पदार्थों का अपने काम के लायक़ रख के शेष का त्याग कर देना। जैसे आज मिष्ट पदार्थ न खायेंगे, सांसारिक गान न सुनेंगे, वस्त्र इतने काम मे लेंगे आदि तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस इन छः प्रकार के जीवों की रक्षा का भाव रखना; व्यर्थ उनको कष्ट न देना ।

(५) तप—अनशन आदि १२ प्रकार तप का अभ्यास

जिसका वर्णन नं० ५२ में किया जा चुका है। मुख्यता से ध्यान का प्रातः, मध्यान्ह, संध्या तीन दफे या दो दफे अभ्यास करना, जिसको सामायिक कहते हैं।

सामायिक की रीति यह है कि एकांत स्थान में जाकर पवित्र मन, वचन, काय करके, एक आसन नियत करके और यह परिमाण करके कि जबतक सामायिक करता हूं इस स्थान व जो कुछ मेरे पास है इसके सिवाय अन्य पदार्थों का मुझे त्याग है, फिर पूर्व या उत्तर की तरफ मुंह करके हाथ लटकाये सीधा खड़ा हो, नौ दफे णमोकार मन्त्र पढ़कर भूमि पर दण्डवत करे,। फिर उसी तरह खड़ा होकर उसी तरह नौ या तीन दफे उसी मन्त्र को पढ़ कर, हाथ जोड़कर तीन दफे आवर्त और एक शिरोनति करे। जोड़े हुए हाथों को बाएँ से दाहिने ओर घुमाने को आवर्त और उन हाथों पर मस्तक झुक कर नमने को शिरोनति कहते है। ऐसा करके फिर हाथ छोड़कर खड़े २ दाहिनी तरफ पलटे, फिर नौ या तीन दफे मन्त्र पढ़ तीन आवर्त एक शिरोनति करे। ऐसा ही शेष दो दिशाओं में पलटते हुए करके फिर पूर्व या उत्तर की तरफ मुख करके पद्मासन व अन्य आसन से बैठकर शान्त भाव से सामायिक का पाठ संस्कृत या भाषा का पढ़े, फिर मन्त्रों की जाप देवे, धर्मध्यान का अभ्यास करे, जैसा नं० ५३ से ५८ तक में कहा गया है। अंत में उसी दिशा में खड़े हो नौ दफा मन्त्र पढ़कर भूमि पर दण्डवत करे।

आवर्त शिरोनति का हेतु चारों दिशाओं में स्थित देव, गुरु

आदि पूज्य पदार्थों को विनय है। ऐसा सामायिक हर दफे ४८ मिनट करे तो अच्छा है; इतना समय न दे सके तो जितनी देर अभ्यास कर सके करे। *

(६) दान—अपने और दूसरे के हित के लिए प्रेम भाव से देना सो दान है। इसके दो भेद हैं :—

१. पात्र दान—जिसको भक्तिपूर्वक करना चाहिये। जिनमें रत्नत्रय धर्म पाया जावे उनको पात्र कहते हैं। वे तीन प्रकार हैं :—

१. उत्तम—दिगम्बर जैन मुनि २. मध्यम—व्रती श्रावक ३. जघन्य—व्रत रहित श्रद्धावान गृहस्थ स्त्री पुरुष।

२. करुणा दान—जो कोई मनुष्य, पशु या जन्तु दुःखी हो उसके क्लेश को मिटाना।

देने योग्य चार पदार्थ हैं—आहार, औषधि, विद्या या ज्ञान तथा अभयपना या प्राण रक्षा। गृहस्थ जब भोजन करे तो पहले आहार दान दे ले, कम से कम एक ग्रास ही दान के लिये निकाल देवे।

इन छः नित्य कर्मों का गृहस्थ इस तरह करे—सूर्योदय से पहले उठकर साधारण जल से शुद्ध हो प्रथम तप करे अर्थात् सामायिक करे, उसी समय संयम की प्रतिज्ञा करके फिर नित्य की शरीर क्रिया करके देवपूजा करे, गुरु हो तो गुरुभक्ति करे, फिर

---

* सामायिक पाठ अमितगतिकृत छन्द व भावार्थ सहित ≈) आने में दफ़्तर दिगम्बर जैन चन्दावाड़ी सूरत शहर से मिल सकता है।

शास्त्र पढ़े या सुने, फिर घर आकर दान दे भोजन करे। संध्या को भी पहले सामायिक करे, फिर जिन मन्दिर में जा दर्शन करे, शास्त्र पढ़े, वा सुने। सोते वक्त शांत चित्त हो कम से कम नौ बार मन्त्र पढ़कर सोवे। उठते हुए भी पहले नौ बार मन्त्र पढ़ ले फिर शय्या छोड़े।

दान में यह विचार रखे कि अपनी कुल आय का चौथाई अवश्य दान करे—एक भाग नित्य खर्च में दे, एक भाग विवाहादि खर्च के लिये, एक भाग संचय के लिये व एक भाग दान के लिये अलग करे।

यदि दान में चौथाई न कर सके तो छठा करे या कम से कम दसवां भाग अलग करे व उसे आवश्यकतानुसार चार दानों मे व अन्य धर्म कार्यों में खर्चे। *

साधारण गृहस्थों को इन आठ बातों का भी त्याग करना चाहिये। ये गृहस्थ के ८ मूलगुण है—

१. मद्य, २. मांस, ३. मधु, ४. स्थूल (संकल्पी) त्रसहिंसा ५. स्थूल असत्य, ६. स्थूल चोरी, ७. स्थूल कुशील, ८ स्थूल परिग्रह।

स्थूल से प्रयोजन अन्याययुक्त का है। गृहस्थी मांसाहार व धर्म व शौक आदि से पशुओं को नहीं मारता है। असि

---

* देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्याय संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने दिने ॥ ७ ॥

[पद्मनंदि पच्चीशिका श्रावकाचार]

(शस्त्र कर्म), मसि (लिखना), कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या या पशुपालन, इन छः कारणों से पैसा कमाता है। इन में जो हिंसा होती है वह संकल्पी नहीं है, आरम्भी है; उसको गृहस्थी बचा नहीं सकता, तो भी यथाशक्ति बचाने का ध्यान रखता है।

गृहस्थी राज्य कर सकता है, दुष्टों व शत्रुओं को दण्ड दे सकता है व उन से युद्ध कर सकता है।

राजदण्ड व लोकदण्ड हो ऐसा झूठ बोलता नहीं व ऐसी चोरी करता नहीं, अपनी विवाहिता स्त्री में सन्तोष रखता है, अपनी ममता घटाने को सम्पत्ति का परिमाण कर लेता है कि इतना धन हो जाने पर मैं स्वयं सन्तोष करके धर्म व परोपकार में जीवन बिताऊँगा।

मांस से कभी शरीर पुष्ट नहीं होता है, यह हिंसाकारी अप्राकृतिक आहार है। मद्य नशा लाती है, ज्ञान को बिगाड़ती है।

मधु मक्खियों का उगाल है, इसमें करोड़ों कीड़े पैदा होते रहते हैं व मरते रहते हैं।

इन तीनों को औषधियों में भी न लेना चाहिए। ❀

❀ मद्य मांस मधु त्यागैः सहाणुव्रत पंचकम्।
अष्टौ मूलगुणानाहुः गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥६६॥

(रत्नकरण्ड)

७० श्रावकों का विशेष धर्म

ग्यारह प्रतिमाएँ

श्रावकों के लिए अपने आचरण की उन्नति के लिये ग्यारह श्रेणियां हैं जिन में पहली पहली श्रेणी का आचरण पालते रह कर आगे का आचरण और बढ़ा लिया जाता है। इन ही को प्रतिमा कहते हैं। प्रतिमा जैसे अपने आसन में दृढ़ रहती है वैसे ही स्वकर्तव्य में श्रावक को मजबूत रहना चाहिये।

(१) दर्शन प्रतिमा—

सम्यग्दर्शन में २५ दोष न लगाना। सम्यग्दर्शन का धारी निम्न आठ अङ्ग पालता है :—

(१) निःशाङ्कित—जैन के तत्त्वों में शङ्का न रखना तथा वीरता के साथ जीवन बिताने हुए इस लोक, परलोक, रोग, मरण, अरक्षा, अगुप्ति, अकस्मात, इन सात तरह के भयों को चित्त में न रखना।

(२) निःकांक्षित—भोगों को अतृप्तिकारी व क्षणभङ्गुर व बन्ध का कारण जान कर उन की अभिलाषा न करना।

(३) निर्विचिकित्सा—दुःखी व मलीन, चेतन व अचेतन वस्तु पर घृणा न करना।

(४) अमूढ़दृष्टि—मूर्खता से देखा देखी कोई अधर्म क्रिया धर्म जान कर न करना।

(५) उपगूहन—दूसरों के औगुण न प्रकट करना।

(६) स्थितिकरण—धर्म में आप को व दूसरों को दृढ़ करना।

(७) वात्सल्य—धर्म व धर्मात्मा में प्रेम रखना।

(८) प्रभावना—धर्म की उन्नति करना।

इन आठ का न पालना सो आठ दोष तथा जाति (माता का कुटुम्ब), कुल, धन, बल, रूप, विद्या, अधिकार तथा तप, इन का अभिमान करना, ऐसे ८ दोष—

देव, गुरु और लोक की मूढ़ता, ऐसी तीन मूढ़ता अर्थात् लोगों की देखा देखी जो देव गुरु नहीं हैं उनको मानना व जो क्रिया करने योग्य नहीं हैं, उनको करना। खड्ग कलम दावात आदि पूजना।

कुदेव कुगुरु और कुशास्त्रों की तथा इनके सेवकों की संगति रखना, यह छः अनायतन। ऐसे २५ दोष दूर रख कर निर्मल श्रद्धा रखनी चाहिये। नीचे लिखे सात व्यसन आदि अतिचार सहित दूर कर देना :—

१. जूआ न खेलना और न ताश, चौपड़ आदि बद कर खेलना।

२. मांस न खाना और न उन पदार्थों को खाना जिन में मांस का संसर्ग हो। जैसे मर्यादा से बाहर का भोजन। भोजन की मर्यादा इस तरह है—

दाल, भात, कढ़ी आदि की छः घंटे की, रोटी पूरी आदि

की दिन भर, पकवान सुहाल लाडू आदि की २४ घण्टे की, जल बिना अन्न व शक्कर से बनी हुई की पिसे आटे के समान अर्थात् (भारतवर्ष की अपेक्षा) वर्षा ऋतु में ३ दिन, उष्ण में ५ तथा शीत ऋतु में सात दिन। बिना अन्न व जल के बूरे आदि को वर्षा में ७, उष्ण में पन्द्रह दिन तथा शीत में एक मास।

दूध निकालने पर ४८ मिनट के भीतर औटे हुये की २४ घन्टे, दही की भी २४ घण्टे, आचार मुरब्बे की २४ घण्टे।

मक्खन को ४८ मिनट के अन्दर ता कर घी बना लेना चाहिये। उसका जहां तक स्वाद न बिगड़े, इत्यादि मर्यादा के भीतर भोजन करना।

३. मदिरा आदि सब तरह का मादक पदार्थ न लेना व जिस औषधि में शराब का मेल हो न पीना।

४. आखेट—शौक से पशुओं का शिकार न करना व उन के चित्राम, मूर्ति आदि को कषाय से ध्वंस न करना।

५. चोरी—पराया माल न चुराना, न चोरीका माल लेना।

६. वेश्या—वेश्या सेवन न करना, न उनकी संगति करना, न उनका नाच देखना, न उनका गाना सुनना।

७. पर स्त्री—अपनी स्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियों के साथ कुशील व्यवहार न रखना।

८. मधु न खाना, न उन फूलों को खाना, जिनमें मधु एकत्र होता है। इसमें मक्खियों को कष्ट दिया जाता है, उनके प्राण लिये जाते व मधु में अनेक जन्तु पैदा होकर मरते हैं।

९. कृमि सहित फल न खाना—जैसे पीपल, वड़, गूलर पाकर व अञ्जीर के फल। अन्य फलों को भी तोड़ कर देख कर खाना।

१०. पानी कुएं, बावड़ी नदी का जो स्वभाव से बहता हो उसको दोहरे गाढ़े वस्त्र से छान, उसके जन्तुओं को वहीं पहुंचा कर जहां से जल लिया है वर्तना।

११. रात्रि को भोजन पान न करना, यदि अशक्य हो तो यथाशक्ति त्याग का अभ्यास करना।

१२. देव पूजा आदि छः कर्मों में लीन रहना।

(२) व्रत प्रतिमा —

इस प्रतिमा का धारी बारह व्रतों का पालन करे। पांच अणुव्रतों को अतीचार (दोष) रहित नियम से पालना। उनके सहायक सात शीलों को पालना व उनके अतीचारों के टालने का अभ्यास करना। पांच अणुव्रत ये हैं :—

१. अहिंसा अणुव्रत—संकल्प करके त्रस जन्तुओं को न मारना। इसके पांच अतीचार हैं—कषाय से प्राणी को बन्धन में डालना, लाठी चाबुक से मारना, अङ्ग उपाङ्ग छेदना, किसी पर अधिक बोझा लादना, अपने आधीन मनुष्य या पशुओं को भोजन पान समय पर न देना व कम देना; ये दोष न लगाने चाहियें। न्याय व शुभ भावना से यह कार्य किये जायें तो दोष नहीं है।

२. सत्य अणुव्रत—स्थूल झूठ न बोलना। इसके भी ५

अतीचार हैं—दूसरों को झूठा व मिथ्या मार्ग का उपदेश देना, पति पत्नी की गुप्त बातां को कहना, झूठा लेख लिखना, अधिक परिमाण में रक्खी हुई वस्तु को अल्प परिमाण में मांगने पर दे देना, शेष अंश को जान बूझकर अपना लेना, दो चार को गुप्त सम्मति कषाय से प्रगट कर देना।

३. अचौर्य अणुव्रत—स्थूल चोरी न करना। इसके ५ अतीचार हैं—दूसरे को चोरी का उपाय बताना, चोरी का माल लेना, राज्य में गड़बड़ होने पर अन्याय से लेन देन करना, मर्यादा को उलंघना, कमती बढ़ती तोलना-नापना, सच्चा में झूठी वस्तु मिला सच्ची कह कर बेचना या झूठा रुपया चलाना।

४. ब्रह्मचर्य अणुव्रत—अपनी स्त्री मे संतोष रखना। इसके पांच अतीचार बचाना—अपने पुत्र पुत्री सिवाय दूसरों की सगाई विवाह करना, वेश्याओं से संगति रखना, व्यभिचारिणी पर-स्त्रियों में संगति रखना, काम के नियत अंग छोड़कर और अङ्गों में चेष्टा करना, स्वस्त्री से भी अतिशय काम चेष्टा करनी।

५. परिग्रह-परिमाण अणुव्रत—अपनी इच्छा तथा आवश्यकता के अनुसार निम्न १० प्रकार की परिग्रह का जीवन पर्यन्त परिमाण कर लेना :—

१. क्षेत्र—खाली जमीन खेतादि, २. वस्तु—मकानादि, ३. धन—गाय भैंस घोड़ा आदि, ४. धान्य—अन्नादि, ५. हिरण्य—चांदी आदि, ६. सुवर्ण—सोना जवाहिरात आदि, ७. दासी, ८. दास, ९. कुप्य—कपड़े १०. भांड—वर्तन।

एक समय में इतने से अधिक न रक्खूंगा ऐसा परिमाण कर ले। इनके पांच अतीचार ये हैं कि इन दश वस्तुओं के पांच जोड़े हुए, इन मे से एक जोड़े मे एक की मर्यादा बढ़ा कर दूसरे को घटा लेना, जैसे क्षेत्र रक्खे थे ५० बीघे, मकान थे दश, तब क्षेत्र ५५ बीघे करके मकान एक घटा देना। सात शील ये हैं:—

(१) दिग्व्रत—जन्म पर्यन्त सांसारिक कार्यों के लिए दश दिशाओं मे जाने आने, माल भेजने मंगाने का प्रमाण बांध लेना; जैसे पूर्व मे २००० कोश तक। इसके निम्न पांच अतीचार हैं:—ऊपर को लोभ या भूल से अधिक चले जाना, नीचे को अधिक जाना, आठ दिशाओं में किसी में अधिक चले जाना, किसी तरफ़ मर्यादा बढ़ा लेना, किसी तरफ़ घटा देना, मर्यादा को याद न रखना।

(२) देशव्रत—प्रति दिन व नियमित काल तक दिग्व्रत में की हुई मर्यादा को घटा कर रख लेना। इसके निम्न पांच अतीचार है:—मर्यादा के बाहर से मंगाना या भेजना, बाहर वाले से बात करना, उसे रूप दिखाना या कोई पुद्गल फेंक कर काम बता देना।

(३) अनर्थदण्ड विरति—अनर्थ पाप से बचना, जैसे दूसरों को पाप करने का उपदेश देना, उनका बुरा विचारना, हिंसाकारी वस्तु खड्ग व बरछी आदि मांगे देना, खोटी कथायें पढ़ना, सुनना आलस्य से वर्तना, जैसे पानी व्यर्थ फेंकना आदि। इसके निम्न पांच अतीचार हैं:—असभ्य भण्ड बचन कहना,

काय की कुचेष्टा सहित भण्ड बचन कहना, बहुत बकवाद करना, बिना विचारे काम करना, व्यर्थ भोग उपभोग को एकत्र करना।

इन तीन को गुणव्रत कहते हैं।

(४) सामायिक—नित्य तीन, दो व एक संध्या को धर्मध्यान करना—जैसा पहले तप आवश्यक में कहा जा चुका है। इसके निम्न पांच अतीचार हैं उनको बचाना :—

मन में अशुभ विचार, अशुभ बचन कहना, अशुभ कार्य को वर्तना, अनादर रखना, पाठ आदि भूल जाना।

(५) प्रोषधोपवास—मास मे दो अष्टमी, २ चौदस, इन चार दिन उपवास करना अथवा एक भुक्त करना व धर्मध्यान में समय बिताना। इसके पांच अतीचार ये है :—बिना देखे व बिना झाड़े काई वस्तु रखना, कोई वस्तु उठाना, चटाई आदि बिछाना, अनादर से करना, धर्मसाधन की क्रियाओं को भुला देना।

(६) भोगोपभोगपरिमाण—पांचों इंद्रियों के योग्य पदार्थों का नित्य परिमाण करना। गृहस्थों के लिये निम्न १७ तरह के नियम प्रसिद्ध हैं :—१. भोजन कै दफे २. पानी भोजन सिवाय कै दफे ३. दूध दही घी शक्कर निमक तेल इन छः रसों में किसका त्याग ४. तेल उबटन कै दफे ५. फूल सूंघना कै दफे ६. तांबूल खाना कै दफे ७. सांसारिक गाना बजाना कै दफे ८. सांसारिक नृत्य देखना कै दफे ९. काम सेवन नहीं या कै दफे १०. स्नान कै दफे ११. वस्त्र कितने जोड़े १२. आभूषण कितने १३. बैठने के आसन कितने १४. सोने की शय्या कितनी १५. सवारी

कितनी व कै दफे १६. हरी तरकारी व सचित्त वस्तु कितनी १७. सर्व भोजन पान वस्तुओं की संख्या। इनमें से जिस किसी को न भोगना हो, बिल्कुल त्याग देवे। इसके पांच अतीचार हैं—

भूलसे छोड़ी हुई सचित्त वस्तु खा लेना, छोड़ी हुई सचित्त पर रक्खी हुई या उससे ढकी हुई वस्तु खाना, छोड़ी हुई सचित्त से मिली वस्तु खालेना, कामोद्दीपक रस खाना, अपक्व व दुष्पक्व पदार्थ खाना।

(७) अतिथिसंविभाग—अतिथि या साधु को दान देकर भोजन करना। अपने कुटुम्ब के लिये बनाये भोजन में से पहले कहे तीन प्रकार के पात्रों को दान देना। नौ प्रकार भक्ति यथासम्भव पालना—भक्ति से पड़गाहना (घर मे ले जाना), उच्च आसन देना, पग धोना, नमस्कार करना, पूजना, मन शुद्धि, बचन शुद्धि, काय शुद्धि, भोजन शुद्धि रखना। साधु के लिये नौ भक्ति पूर्ण करना योग्य है। इसके निम्न पांच दोष बचाना चाहियें, जो साधु व सचित्त त्यागी को दान की अपेक्षा से हैं:—

सचित्त (हरे पत्ते) पर रखी वस्तु देना, सचित्त से ढकी वस्तु देना, आप बुलाकर स्वयं न दान दे दूसरे को दान करने को कह कर चले जाना, ईर्षा से देना, समय उल्लंघन कर देना।

इन अन्त के चार को शिक्षाव्रत कहते हैं।

(३) सामायिक प्रतिमा—

इसमें इतनी बात बढ़ जाती है कि श्रावक को नियमपूर्वक तीन दफे सामायिक करनी होती है—सवेरे, दोपहर और साँझ।

कम से कम समय ४८ मिनट का लगाना चाहिये। किसी विशेष अवसर पर कुछ कम भी लग सकता है। सामायिक पांच दोष रहित करना चाहिये।

(४) प्रोषधोपवास प्रतिमा—

इसमें एक मास में दो अष्टमी दो चौदस चार दफे उपवास करना और उसके पाँच दोष टालना। इसके दो तरह के भेद हैः—

प्रथम यह कि पहले व तीसरे दिन एक दफे भोजन, बीच में १६ पहर का उपवास, मध्यम पहले दिन की संध्या से तीसरे दिन प्रातःकाल तक १२ पहर, जघन्य भोजन पान इतने काल छोड़ते हुए व्यापार व आरम्भ का त्याग केवल अष्टमी तथा चौदस को आठ पहर ही करना।

दूसरा भेद यह है कि पहले और तीसरे दिन एक भुक्त करना तथा १६ पहर धर्म ध्यान करना। मध्यम यह कि इस मध्य में केवल जल लेना। जघन्य यह है कि जल के सिवाय अष्टमी या चौदस को एक भुक्त भी करना। जैसी शक्ति हो उसके अनुसार उपवास करना चाहिये। उपवास का दिन सामायिक, स्वाध्याय, पूजा आदि में बिताना चाहिये।

(५) सचित्त त्याग प्रतिमा—

यानी बनस्पति आदि कच्ची अर्थात् एकेन्द्रिय जीव सहित दशा में न लेना। जिह्वा का स्वाद जीतने को गर्म या प्राशुक पानी पीना व रंधी हुई या छिन्न भिन्न की हुई या लोण आदि से मिली

हुई तरकारी खाना। सचित्त के खाने मात्र का यहां त्याग है। सचित्त के व्यवहार या व सचित्त को अचित्त करने का त्याग नहीं है। सचित्त को अचित्त बनाने की रीति यह है—

सुक्कं पक्कंतत्त अंवललवणेहिं मिस्सियदव्वं।
जं जं तेणय छण्णं तं सव्वं पासुयं भणियं॥

अर्थात—सूखो, पकी, गर्म, खटाई या नमक से मिली हुई तथा यंत्र से छिन्न भिन्न की हुई वस्तु प्राशुक है। पानी मे लवङ्ग आदि का चूरा डालने से यदि उसका वर्ण, रस वदल जावे तो वह अचित्त होता है। पके फल का गूदा प्राशुक है। बीज सचित्त है। इसमें भोगोपभोग के ५ दोष बचाना चाहियें।

(६) रात्रि भुक्तित्याग प्रतिमा—

रात्रि को जलपान व भोजन न आप करना, न दूसरों को कराना। दो घड़ी अर्थात् ४८ मिनट सूर्यास्त से पहले तक व ४८ मिनट सूर्योदय होने पर भोजन पान करना, रात्रि को भोजन सम्बन्धी आरम्भ भी नहीं करना, पूर्ण सन्तोष रखना।

(७) ब्रह्मचर्य प्रतिमा—

अपनी स्त्री भोग का भी त्याग कर देना। उदासीन वस्त्र पहनना, वैराग्य भावना मे लीन रहना।

(८) आरम्भत्याग प्रतिमा—

कृषि वाणिज्य आदि व रोटी बनाना आदि आरम्भ बिल्कुल छोड़ देना, अपने पुत्र व अन्य कोई भोजन के लिये

बुलावे तो जीम आना, अपने हाथ से पानी स्वयं न लेना । जो कोई दे उससे अपना व्यवहार बड़े सन्तोष से करना ।

(९) परिग्रह त्याग प्रतिमा—

धन धान्यादि परिग्रह दान के लिये देकर शेष पुत्र पौत्रों को दे देना, अपने लिये कुछ आवश्यक वस्त्र व भोजन रख लेना और धर्मशाला आदि मे ठहरना, भक्ति से बुलाये जाने पर जो मिले सन्तोष से जीम लेना ।

(१०) अनुमतित्याग प्रतिमा—

सांसारिक कार्यों मे सम्मति देने का त्याग न था सो इस दर्जे में बिल्कुल त्याग देना । भोजन के समय बुलाये जाने पर जीम लेना ।

(११) उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा—

अपने निमित्त किये हुए भोजन का त्याग यहां होता है । जो भोजन गृहस्थ ने अपने कुटुम्ब के लिए किया हो उसी मे से भिक्षा द्वारा भक्ति से दिये जाने पर लेना उचित है । इसके निम्न दो भेद हैं :—

१. क्षुल्लक—एक खण्ड चादर व एक कोपीन या लंगोट रखते हैं व मोर पंख की पीछी व कमण्डल रखते हैं । बालों को कतराते हैं । गृहस्थी के यहां एक दिन में एक दफ़े से अधिक नहीं जीमते । भोजन थाली मे रख कर बैठे हुए करते हैं ।

२. ऐलक—जो केवल एक लंगोटी ही रखते हैं । मुनि की क्रियाओं का अभ्यास करते हैं । गृहस्थी के यहां बैठकर

हाथ में जो रखा जावे उसे ही जीमते हैं। स्वयं मस्तक, दाढ़ी मूंछ के केशों को उखाड़ डालते हैं।

जब लंगोटी भी छोड़ दी जाती है तब साधु के २८ मूल गुण धारण किये जाते हैं जिनका वर्णन नं० ६५ में किया जा चुका है।

इन ग्यारह प्रतिमाओं में आत्मध्यान का अभ्यास बढ़ाया जाता है तथा इससे धीरे २ उन्नति होती जाती है। *

७१. जैनियों के संस्कार

जिन क्रियाओं से धर्म का संस्कार मानव की बुद्धि पर पड़े ऐसे संस्कार श्री महापुराण (जिनसेनाचार्य कृत) अ० ३८, ३९, ४० में हैं।

सन्तान को योग्य बनाने के लिये इनका किया जाना अति आवश्यक है। जो जन्म के जैनी हैं, उनके लिये कर्त्रन्वय क्रियाएं ५३ बताई गई हैं तथा जो मिथ्यात्व छोड़ कर जैनी बनते हैं, उनके लिये दीक्षान्वय नाम की ४८ क्रियायें हैं।

इन क्रियाओं मे प्रायः पंच परमेष्ठी का पूजन, होम, विधानादि होता है, हम उनका यहाँ नीचे बहुत संक्षेप मे मात्र दिखलाते हैं।

---

* दसणवय सामायिय पोसह सच्चित्तराय भत्तेय ॥ बह्मारंभ परिग्गह अणुमण उद्दिट्ठ देस विरदेदे ॥२॥ (कुन्दकुन्देकृतद्वादशानुप्रेक्षा) श्रावक पदानि देवैरेकादशदेशितानियेषुखलु। स्वे गुणाः पूर्व गुणैः सह संतिष्ठंते क्रम विवृद्धाः ॥१३६॥

[विशेष देखो रत्नकरण्ड श्लोक १३७ से १४७]

[१] गर्भाधान क्रिया—पत्नी रजस्वला होकर पांचवें या छठे दिन पति सहित देव पूजादि करे, फिर रात्रि को सहवास करे।

[२] प्रीति क्रिया—गर्भ से तीसरे महीने पूजा व उत्सव करना।

[३] सुप्रीति क्रिया—गर्भ से पांचवें मास में पूजा व उत्सव करना।

[४] धृति क्रिया—गर्भ वृद्धि के लिये ७ वें मास में पूजा व उत्सव करना।

[५] मोद क्रिया—नौवें मास में पूजा व उत्सव करके गर्भिणी के शिर पर मंत्र पूर्वक बीजाक्षर लिखना व रक्षासूत्र बांधना।

[६] प्रियोद्भव क्रिया—जन्म होने पर पूजा व उत्सव करना।

[७] नाम कर्म क्रिया—जन्म से १२ वें दिन पूजा कराके गृहस्थाचार्य द्वारा नाम रखवाना व उत्सव करना।

[८] बहिर्यान क्रिया—दूसरे, तीसरे या चौथे मास पूजा कराके प्रसूतिगृह से बालक सहित मा का बाहर आना।

[९] निषद्या क्रिया—बालक को बिठाने की क्रिया पूजा सहित करना।

[१०] अन्न प्राशन क्रिया—७ या ८ या ९ मास का बालक हो तब उसे पूजा व उत्सव पूर्वक अन्न खिलाना शुरू करना।

[११] व्युष्टि क्रिया—एक वर्ष होने पर पूजा सहित वर्ष गांठ करनो।

[१२] केशवाय क्रिया—जब बालक २, ३ या ४ वर्ष का हो जावे तब पूजा करके सर्व केशों का मुन्डन कराके चोटी रखना।

[१३] लिपि संख्यान क्रिया—जब पांच वर्ष का बालक हो जावे तो पूजा के साथ उपाध्याय के पास अक्षरारंभ कराना।

[१४] उपनीति क्रिया—आठवें वर्ष में बालक को पूजा व होम सहित तथा योग्य नियम कराकर रत्नत्रयसूचक जनेऊ देना।

[१५] व्रतचर्या क्रिया—ब्रह्मचर्य पालते हुए गुरु के पास विद्या का अभ्यास करना। श्रावक के पाच व्रतों का अभ्याम करना।

[१६] व्रतावरण क्रिया—विद्या पढ़ के यदि वैराग्य हो गया हो तो मुनि दीक्षा ले, नहीं तो ब्रह्मचर्य छात्र का भेष छोड़ अब घर मे रहकर योग्य आजीविकादि करे व धर्म पाले।

[१७] विवाह क्रिया—योग्य कुल व वय की कन्या के साथ पूजा उत्सव सहित लग्न करना। सात दिन तक पति पत्नी ब्रह्मचर्य से रहे, फिर मंदिरों के दर्शन कर कंकण डोरा खोलें और संतान के लिये सहवास करें।

इन १७ संस्कारों मे जो पूजा की जाती है, उसकी विधि मन्त्र सहित संक्षेप मे गृहस्थ धर्म पुस्तक में दी हुई है।

[१८] वर्णलाभक्रिया—माता पिता से द्रव्य ले स्त्री सहित जुदा रहना ।

[१९] कुलचर्या क्रिया—कुल के योग्य आजीविका करके देव पूजादि गृहस्थ के छः कर्मों में लीन रहना।

[२०] गृहोशिता क्रिया—ज्ञान व सदाचारादि में प्रवीण होकर गृहस्थाचार्य का पद पाना, परोपकार करने में लीन रहना, विद्या पढ़ाना, औषधि देना, भय दूर करना।

[२१] प्रशांति क्रिया—पुत्र को घर का भार सौंप आप विरक्त भाव से रहना।

[२२] गृहत्याग क्रिया—घर छोड़ कर त्यागी हो जाना।

[२३] दीक्षाद्य क्रिया—श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं को पूर्ण करना।

[२४] जिनरूपिता क्रिया—नग्न हो वस्त्रादि परिग्रह त्याग मुनिपद धारण करना।

[२५] मौनाध्ययन वृत्ति क्रिया—मौन सहित शास्त्र पढ़ना।

[२६] तीर्थङ्कर पदोत्पादक भावना—सोलह कारण भावना विचारनी।

[२७] गुरुस्थापनाभ्युपगम—आचार्य पद के काम का अभ्यास करना।

[२८] गणोपग्रहण—उपदेश करना, प्रायश्चित देना।

[२६] स्वगुरुस्थानसंक्रांति—आचार्य पदवी स्वीकार करना।

[३०] निःसंगत्वात्म भावना—आचार्य पदवी शिष्य को देकर आप अकेले विहार करना।

[३१] योग निर्वाण संप्राप्ति—मनकी एकाग्रता का उद्यम करना।

[३२] योग निर्वाण साधन— आहारादि त्याग समाधिमरण करना।

[३३] इन्द्रोपपाद—मरण करके इन्द्र पद पाना।

[३४] इन्द्राभिषेक—इन्द्रासन का न्हवन होना।

[३५] विधि दान—दूसरों को विमान ऋद्धि आदि देना।

[३६] सुखोदय—इन्द्र पद्र का सुख भोगना।

[३७] इन्द्र पद त्याग—इन्द्र पद त्यागना।

[३८] गर्भावतार—तीर्थङ्कर होने के लिये माँ के गर्भ मे आना।

[३६] हिरण्यगर्भ—गर्भ में आने के कारण छः मास पहले से रत्नवृष्टि होना।

[४०] मन्दरेन्द्राभिषेक—तीर्थङ्कर का जन्म होकर सुमेरु पर अभिषेक।

[४१] गुरु पूजन—तीर्थङ्कर को गुरु मान इन्द्रादि देव पूजते हैं।

[४२] यौवराज्य—तीर्थङ्कर का युवराज होना।

[४३] स्वराज्य—तीर्थङ्कर का स्वतन्त्र राज्य करना।

[४४] चक्रलाभ—चक्रवर्ती पद के लिए नौ निधि व १४ रत्नों का पाना।

[४५] दिशांजय—छः खण्ड पृथ्वी जीतने को निकलना।

[४६] चक्राभिषेक—लौटने पर चक्रवर्ती का अभिषेक

[४७] साम्राज्य—अपनी आज्ञानुसार राजाओं को चलाना।

[४८] निष्क्रांति—पुत्रों को राज्य दे दीक्षा लेना।

[४९] योग संग्रह—केवलज्ञान प्राप्त करना।

[५०] आर्हन्त्य—समवशरण की रचना होनी।

[५१] विहार—धर्मोपदेश देने के लिये विहार करना।

[५२] योगत्याग—योग को रोककर अयोगी होना।

[५३] अग्र निर्वृत्तिः—मोक्षपद पाना।

इन क्रियाओं में संस्कार प्राप्त बालक तीर्थंकर होकर मोक्ष पद प्राप्त कर सकता है।

जो जन्म से जैन नहीं है और जैनधर्म स्वीकार करे उसकी दीक्षान्वय क्रियायें निम्न ४८ हैं:—

१. अवतार क्रिया—कोई अजैन किसी जैन आचार्य

या गृहस्थाचार्य के पास जाकर प्रार्थना करे कि मुझे जैनधर्म का स्वरूप कहिए, तब गुरु उसे समझावें।

२. व्रत लाभ क्रिया—शिष्य धर्म को सुनकर उस पर श्रद्धा करता हुआ स्थूल रूप से पांच अणुव्रत ग्रहण करता और मदिरा, मधु, मांस, तीन मकार का त्याग करता है।

३. स्थान लाभ—शिष्य को एक उपवास व पूजा करा कर उसको पवित्र करे व णमोकार मन्त्र का उपदेश देवे।

४. गण गृह—शिष्य के घर में जो अन्य देवों की स्थापना हो तो उनका विसर्जन करे।

५. पूजाराध्य—भगवान की पूजा करे, द्वादशांग जिनवाणी सुने व धारे।

६. पुण्य यज्ञ क्रिया—१४ पूर्व शिष्य सुने।

७. दृढ़ चर्या—जैन शास्त्रों को जान कर अन्य शास्त्रों को जाने।

८. उपयोगिता—हर अष्टमी चौदस को उपवास करे, ध्यान करे।

९. उपनीति—इसको यज्ञोपवीत ग्रहण करावे।

१०. व्रतचर्या—जनेऊ लेकर कुछ काल ब्रह्मचर्य पाल गुरु से उपासकाध्ययन या श्रावकाचार पढ़े।

११. व्रतावरण—गृहस्थाचार्य के निकट ब्रह्मचारी का भेष उतारे।

१२. विवाह—जो पहिली विवाहिता स्त्री हो तो श्राविका बनावे। यदि न हो तो वर्णलाभक्रिया करके विवाह करे।

१३. वर्णलाभ—गृहस्थाचार्य इसकी योग्यता देखकर उसका वर्ण स्थापित करे और फिर सर्व श्रावकों से जो उस वर्ण के हों उसके साथ विवाहादि सम्बन्ध करने को कहे।

इसके आगे की क्रिया कर्त्रन्वय के समान नं० १९ से ५३ तक जाननी। पहिले १८ क्रियायें कही थीं, यहां १३ कहीं, ये ही ५ क्रियायें कम हो गईं।

७२. जैनियों में वर्णव्यवस्था

जैनियों में भी इस भरतक्षेत्र के इस कल्प में प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव ने उस समय जब कि समाज में कोई वर्ण व्यवस्था प्रकटरूप से न थी, जिन लोगों के आचार व्यवहार को क्षत्रियों के योग्य समझा उनको क्षत्रिय, जिनके आचार को वैश्य के योग्य समझा उनको वैश्य तथा जिनके आचरण को शूद्र के योग्य समझा उनको शूद्र वर्ण में प्रसिद्ध किया।

क्षत्रियों को आजीविका के लिये असि कर्म या शस्त्र विद्या, वैश्यों को मसि (लेखन), कृषि, वाणिज्य तथा शूद्रों को शिल्प विद्या (कला आदि) कर्म नियत किया तथा प्रत्येक को अपने २ वर्ण में विवाह करना ठहराया।

इसके पीछे जो श्रावक धर्म अच्छी तरह पालते थे, दयावान थे, उनको ब्राह्मण वर्ण में ठहराया गया। महापुराण के पर्व ३८ में कहा है कि—

मनुष्य जातिरेकैव जाति नामोदयोद्भवा ।
वृत्तिभेदा हिताद्भेदाच्चातुर्विध्यमिहाश्नुते ॥ ४५ ॥
ब्राह्मणाव्रत संस्कारात् क्षत्रियाः शस्त्र धारणात् ।
वाणिज्योऽर्थार्जनान्नयाय्यात शूद्रान्यग्वृत्तिसंश्रयात् ॥ ४६ ॥

भावार्थ—जाति नाम कर्म के उदय से मनुष्य जाति एक ही है तथापि जीविका के भेद से वह भिन्न २ चार प्रकार की हो गई हैं। व्रतों के संस्कारों से ब्राह्मण, शस्त्र धारण करने से क्षत्रिय, न्याय से द्रव्य कमाने से वैश्य, नीच वृत्ति का आश्रय करने से शूद्र कहलाते हैं।

यह भी व्यवस्था हुई कि आवश्यकता हुई तो ब्राह्मण क्षत्रियादि अन्य तीनों वर्ण की, क्षत्रिय वैश्यादि दो वर्ण की व वैश्य शूद्र की कन्या भी ले सकता है।

जैन पुराणों में तीनों वर्णों में परस्पर विवाह होने के भी अनेक उदाहरण हैं—जैसे क्षत्रिय की कन्या का वैश्य पुत्र को विवाहा जाना और इसकी कोई निंदा नहीं की गई है। *

---

* शूद्राशूद्रेण वोढव्या नान्या स्वां तांच नैगमः ।
वहेत्स्वांते च राजन्यः स्वां द्विजन्मा क्वचिच्चताः ॥ २४७ ॥
[आदिपुराण पर्व १६]

भावार्थ—शूद्र शूद्र की कन्या से विवाह करे—अन्य से नहीं, वैश्य वैश्य की कन्या से तथा शूद्र की कन्या से भी, क्षत्रिय क्षत्रिय की कन्या से व वैश्य व शूद्र की कन्या से भी, ब्राह्मण ब्राह्मण कन्या से व क्रमो क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र की कन्या से भी। (अर्थ पं० कालाराम कृत)।

७३. जैनियों में स्त्रियों का धर्म और उनकी प्रतिष्ठा

जैनियों में स्त्रियों के लिये वे ही धर्म क्रियायें है जो पुरुषों के लिये हैं। श्रावक धर्म की ग्यारह प्रतिमायें वे पाल सकती है। वे नग्न नहीं हो सकती। इसीलिये साधु पद नहीं धारण कर सकतीं और न उसी जन्म से निर्वाण लाभ कर सकती हैं। उनका उत्कृष्ट आचरण आर्यिका का होता है जो एक सफ़ेद साड़ी (धोती) रख सकती हैं।

ऐलकके समान मोर पिच्छिका व कमंडल रखतीं व भिक्षावृत्ति से श्रावक के यहां बैठकर हाथ में भोजन करतीं, व केशों को लोंच करती हैं।

रजोधर्म में चार दिन तक, प्रसूत में ४० दिन तक व पांच मास की गर्भावस्था में पूजा, अभिषेक व मुनिदान स्वयं नहीं कर सकती हैं; फिर अभिषेक पूजा व दान बराबर कर सकती हैं।

स्त्रियों की प्रतिष्ठा यहां तक है कि राजा लोग उनको अपने सिंहासन का आधा आसन देते थे। वे पति के न होने पर कुल सम्पत्ति की स्वामिनी हो सकतीं व पुत्र गोद ले सकती हैं।

७४. भरतक्षेत्र में प्रसिद्ध चौबीस जैन तीर्थंकर

भरतक्षेत्र जिसके भीतर हम लोग रहते हैं छः खण्डों में बटा हुआ है। पांच म्लेच्छ खण्ड एक आर्यखण्ड। आर्यखण्ड मे अवस्थाओं का विशेष परिवर्तन हुआ करता है।

एक कल्पकाल बीस कोड़ाकोड़ी सागर का होता है। १ सागर में अनगिनती वर्ष होते हैं। इस कल्प के दो भेद हैं— १. अवसर्पिणी २. उत्सर्पिणी।

जिसमें आयुकाय घटती जाय वह अवसर्पिणी; और जिसमें बढ़ती जाय वह उत्सर्पिणी है।

इन दोनों के ६–६ भाग हैं। अवसर्पिणी के ६ भाग ये हैं:—

१. सुषमा सुषमा—चार कोड़ाकोड़ी सागर का २. सुखमा—तीन कोड़ाकोड़ी सागर का ३. सुखमा दुखमा—दो कोड़ाकोड़ी सागर का ४. दुखमा सुखमा—४२००० वर्ष कम एक कोड़ा कोड़ी सागर का ५. दुखमा—२१००० वर्ष का ६. दुखमा दुखमा—२१००० वर्ष का।

उत्सर्पिणी में इसका उल्टा क्रम है। जो छठा है वह यहां (उत्सर्पिणी में) पहिला है।

दोनों कालों का समय मिलकर ही बीस कोड़ाकोड़ी सागर है। सुखमा सुखमा, सुखमा व सुखमा दुखमा कालों में भोगभूमि की अवस्था अवनति रूप रहती है और शेष तीन में कर्मभूमि रहती है।

जहां कल्पवृक्षों से आवश्यक वस्तु लेकर स्त्री पुरुष संतोष से जीवन बिताते हैं उसे भोगभूमि व जहां असि (शस्त्र कर्म), मसि (लेखन), कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या से परिश्रम करके धन कमाते, उससे अन्नादि ले भोजनादि बनाते, संतान उत्पन्न करते हैं उसे कर्मभूमि कहते हैं।

हर एक अवसर्पिणी के चौथे काल में चौबीस महापुण्य-वान पुरुष समय २ पर जन्मते हैं। वे धर्मतीर्थ का प्रकाश करते हैं इसलिये उनको तीर्थंकर कहते हैं। वे उसी जन्म से मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे ही उत्सर्पिणी के तीसरे काल में उन जीवों से भिन्न जीव * २४ तीर्थङ्कर होते है। इस तरह इस भरतक्षेत्रके आर्यखण्ड में सदा ही २४ तीर्थंकर भिन्न २ जीव होते रहते हैं।

वर्तमान में यहां अवसर्पिणी का पाँचवाँ काल चल रहा है। जब चौथे काल में तीन वर्ष साढ़े आठ मास शेष थे तब श्री महावीर भगवान, जो बौद्धगुरु गौतमबुद्ध के समकालीन व उनसे पूर्व जन्मे थे, मोक्ष पधारे थे। अब सन् १९३९ में वीर निर्वाण संवत् २४६५ चलता है।

गत चौथे काल में जो २४ महापुरुष जन्मे थे, वे सब क्षत्रिय वंश के राज्य कुलों में हुए थे।

इनमें से पहिले १५ व १९ वें २१ वें २३ वें व २४ वें इक्ष्वाकुवंश में व २२ वें यदुवंश में जन्मे थे। श्रीपार्श्वनाथ का उग्रवंश व श्रीमहावीर का नाथवंश भी कहलाता था।

---

* चउवीसबार तिघणं तित्थयरा छत्ति खंड भरहवई।
तुरिये काले होंतिहु तेवट्ठी सलाग पुरिसाते ॥ ८०३ ॥
(त्रिलोकसार)

भावार्थ—भरतक्षेत्र के चौथे काल में त्रेसठ शलाका पुरुष होते रहते हैं। २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ बलभद्र, ९ प्रतिनारायण।

२४ में से १६ राज्य करके गृहस्थी होकर फिर साधु हुए। केवल पाँच--अर्थात् १२, १९, २२, २३ व २४ ने कुमारवय से ह मुनिपद ले लिया, विवाह नहीं किया।

भरतक्षेत्र मे जो तीर्थंकर पद के धारी होते है वे जगत मे भ्रमण करने वाले जीवो मे से ही होते है। जिसने तीर्थंकर होने से पहिले तीसरे भव मे तपस्या करके व आत्मज्ञान प्राप्त करके, आत्मीक आनन्द की रुचि पाकर संसार के इंद्रिय सुख को आकुलतामय जाना हो तथा सर्व जीवो का अज्ञान मिटे व उनको सच्चा मार्ग मिले, ऐसी दृढ़ भावना की हो वही विशेष पुरुष विशेष पुण्य बांधकर तीर्थंकर जन्मता है। कोई ईश्वर या शुद्ध या मुक्त आत्मा शरीर धारण नहीं करता है।

हर एक तीर्थंकर इतने पुण्यात्मा होते है कि इन्द्रादि देव उनके जीवन के पांच विशेष अवसरो पर परम उत्सव करते है। इन उत्सवो को **पंच कल्याणक** कहते हैं।

१. गर्भ कल्याणक—जब माता के गर्भ मे तिष्ठते हैं, तब सीपी मे मोती के समान माता को बिना कष्ट दिये रहते है। गर्भ समय माता निम्न सोलह स्वप्ने देखती है:—

(१) हाथी (२) बैल (३) सिंह (४) लक्ष्मीदेवी का अभिषेक (५) दो मालाऐं (६) सूर्य (७) चन्द्र (८) दो मछली (९) कनकघट (१०) कमल सहित सरोवर (११) समुद्र (१२) सिंहासन (१३) देव विमान (१४) धरणेन्द्र-

भवन (१५) रत्नराशि (१६) अग्नि। इन का फल महापुरुष का जन्म सूचक है।

इन्द्र की आज्ञा से गर्भ से छः मास पूर्व से १५ मास तक माता पिता के नगर में रत्नों की वर्षा का आनन्द रहता है। राजा रानी खूब दान देते हैं।

गर्भ समय से अनेक देवियां माता की सेवा करती रहती हैं।

२. जन्म कल्याणक—जन्म होते ही इन्द्र व देव आते हैं और बड़े उत्सव से सुमेरु पर्वत पर ले जाकर पांडुक वन में पांडुक शिला पर विराजमान करके क्षीर समुद्र के पवित्र जल से स्नान कराते हैं।

उसी समय इन्द्र नाम रखता है व पग में चिन्ह देख कर चिन्ह स्थिर करता है।

तीर्थंकर महाराज अब से गृहस्थावस्था में रहने तक इन्द्र द्वारा भेजे वस्त्र व भोजन ही काम में लेते हैं। इनको जन्म से ही मति, श्रुत, अवधि तीन ज्ञान होते हैं। इस से तीर्थंकर को विना किसी गुरु के पास विद्याध्ययन किये सर्व विद्याओं का परोक्षज्ञान होता है। आठ वर्ष की आयु में ही गृहस्थ धर्ममयी श्रावक के व्रतों को आचरने लगते हैं। यदि कुमारवय में वैराग्य न हुआ हो तो विवाह करके सन्तान का लाभ करते व नीति पूर्ण राज्य प्रबन्ध चलाते हैं।

३. तप कल्याणक—जब वैराग्य होता है, तब भी इन्द्र आदि देव आते हैं और अभिषेक कर नये वस्त्राभूषण पहरा, पालकी पर चढ़ा अपने कंधों पर वन मे ले जाते हैं। वहां एक शिला पर वृक्ष के नीचे बैठ कर, प्रभु वस्त्राभरण उतार कर अपने ही हाथो से अपने केशो को उपाड़ (लोच) डालते है। फिर सिद्ध परमात्मा को नमस्कार कर स्वयं मुनि की क्रियाओं को पालने लगते हैं। आत्मज्ञान पूर्वक तप करते हैं, मात्र शरीर को सुखाते नहीं। आत्मानन्द मे इतने मग्न हो जाते हैं कि जब तक केवलज्ञान (पूर्णज्ञान) न प्रगटे तब तक मौन रहते हैं।

४. ज्ञान कल्याणक—जब पूर्णज्ञान हो जाता है, तब वह जीवन्मुक्त परमात्मा हो जाते हैं, उस समय उनको अरहंत कहते हैं। उनके अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, परम वीतरागता, अनन्त सुख आदि स्वाभाविक गुण प्रगट हो जाते है। इच्छा नहीं रहती है, भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, रोगादि की बाधा नहीं होती है। शरीर कपूर के समान शुद्ध परमाणुओं मे बदल जाता है, आकाश मे बिना आधार बैठते या विहार करते है। उस समय इन्द्रादिक देव आकर एक सभा मंडप रचते हैं; इस मंडप को समवशरण कहते हैं। इसमे बारह सभाएँ होती है, जिनमे देव, मनुष्य, पशु सब बैठते हैं। भगवान तीर्थंकर की दिव्यवाणी द्वारा धर्मामृत की वर्षा होती है। सब अपनी २ भाषा में समझते हैं। जो साधुओं के गुरु गणधर होते हैं वे धारणा मे लेकर ग्रन्थ रचना करते हैं।

५. मोक्ष कल्याणक—जब आयु एक मास या कम रह जाती है तब विहार व उपदेश बन्द हो जाता है। एक स्थल पर तीर्थंकर ध्यान मग्न रहते है।

आयु समाप्त होने पर सर्वसूक्ष्म और स्थूल शरीरों से मुक्त होकर, पुरुषाकार ऊपर को गमन करके लोक के अन्त मे विराजमान रहते हुए, अनन्तकाल के लिए जन्म मरण से रहित हो आत्मानन्द का भोग किया करते हैं।

इस समय इनको परमात्मा या सिद्ध कहते हैं। इस समय भी इन्द्रादि आकर शेष शरीर की दग्ध क्रिया करके बहुत बड़ा उत्सव मनाते है तथा जहां से मुक्ति होती है वहां चिन्ह * कर देते हैं। वह सिद्धक्षेत्र प्रसिद्ध होता है।

---

* चिन्ह करने का प्रमाण—

ककुदंभुवः खचरयोषिदुषितशिखरैरलंकृतः।

मेघपटल परिवीततटस्तव लक्षणानि लिखितानि वज्रिणा ॥ १२७ ॥

वहतीति तीर्थमृषिभिश्च सततमभिगम्यतेऽद्यच।

प्रीति वितत हृदयैः परितो भृशमूर्ज्जयंत इति विश्रुतोऽचलः ॥ १२८ ॥

भावार्थ—पृथ्वी का ककुद, विद्याधरों की स्त्रियों से शोभायमान, मेघों से आच्छादित वह गिरनार पर्वत जिस पर इंद्र ने चिन्ह अंकित किये, भक्तिवान मुनियों के द्वारा तीर्थरूप प्रसिद्ध है।

(श्री नमिस्तुति स्वयंभू स्तोत्र)

इन २४ मे से २० तीर्थंकर † श्री सम्मेदशिखर पर्वत

महावीर मोक्ष गये, उनका प्रणाम हो।

इन २४ मे से, २० तीर्थंकर ‡ श्री सम्मेदशिखर पर्वत (पार्श्वनाथ हिल जि० हजारी बाग़) से, प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ कैलाश से, १२ वें श्री वासुपूज्य मन्दारगिरि (जि० भागलपुर) से, २२ वें श्री नेमिनाथ गिरनार (जि० काठिया-वाड़) से तथा २४ वें श्री महावीर पावापुर (जि० विहार) से मुक्त हुए हैं। इन सब तीर्थंकरों का विशेष वर्णन जानने को सामने का नक़्शा देखिये।

७५. संक्षिप्त जीवनचरित्र श्री ऋषभदेव

यद्यपि हर एक अवसर्पिणी उत्सर्पिणी में २४ तीर्थंकर चौथे या तीसरे काल में क्रम से होते हैं तथापि इस अवसर्पिणी को हुंडावसर्पिणी कहते है। हुंडावसर्पिणी में बहुत सी बातें विशेष होती हैं। ऐसा काल असंख्यात् अवसर्पिणी पीछे आता है।

---

‡ वीसंतु जिणवरिंदा अमरासुर वंददाधुद किलेसा।
सम्मेदे गिरि सिहरे, णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥ २ ॥
अट्ठावयम्मि उस हो चंपाए वासुपुज्ज जिणणाहो।
उज्जंते णेमि जिणो, पावाए णिव्वुदो महावीरो ॥ १ ॥
(प्रा० निर्वाणकाण्ड)

भावार्थ—बीस भगवान, इन्द्रों से वंदनीक, क्लेश रहित सम्मेद-शिखर से मोक्ष गये, अष्टापद या कैलाश से ऋषभ देव, चंपापुर या मन्दारगिरि से वासुपूज्य, उजयंत या गिरनार से नेमि, पावापुर से महावीर मोक्ष गये, उनको प्रणाम हो।

इसमें विशेष बात यह हुई कि श्री आदिनाथ या ऋषभदेव चौथे काल के शुरू होने में जब तीन वर्ष साढ़े आठ मास बाकी थे तब ही मोक्ष चले गये थे।

श्री ऋषभदेव के पिता नाभि-राजा थे, इनको १४ वां कुलकर या मनु कहते हैं। इनके पहले निम्नलिखित १३ कुलकर हुए:—

१. प्रतिश्रुति २. सन्मति ३. क्षेमंकर ४. क्षेमंधर ५. सीमंकर ६. सीमंधर ७ विमलवाहन ८. चक्षुष्मान् ९. यशस्वान् १०. अभिचन्द्र ११. चन्द्राभ १२. मरुदेव १३. प्रसेनजित।

तीसरे काल में जब एक पल्य का ८ वां भाग शेष रहा तब से कल्पवृक्षों की कमी होने लगी। तब ही इन कुलकरों ने, जो एक दूसरे के बहुत काल पीछे होते रहे हैं, ज्ञान देकर और लोगों की चिन्ताऐं मेटी।

पहिले तीन कालों में यहां भोगभूमि थी। युगल स्त्री पुरुष साथ जन्मते थे व कल्पवृक्षों से इच्छित वस्तु लेकर सन्तोष से व मन्द कषाय से कालक्षेप करते थे। अन्त में वे एक जोड़ा उत्पन्न कर मर जाते थे।

ये कुलकर महापुरुष विशेष ज्ञानी होते थे। नाभि राजा के समय में कल्पवृक्ष बिल्कुल न रहे, तब नाभि ने लोगों को वर्तन बनाने व वृक्षादि से धान्य व फलादि को काम में लाने आदि की रीति बताई। इनकी महाराणी मरुदेवी बड़ी रूपवती व गुणवती थी।

श्री ऋषभदेव के गर्भ में आने के पहिले ही छः मास इन्द्र ने अयोध्या नगरी स्थापित करके शोभा करी। मिती आषाढ़ सुदी २ को भगवान मरुदेवीके गर्भ में आये। चैत्रकृष्ण ९ को प्रभु का जन्म हुआ। स्वभाव से ही विद्वान् श्री ऋषभदेव ने कुमार-काल को विद्या, कला आदि का उपभोग करते हुए बिताया।

युवावय में नाभिराजा ने राजा कच्छ महाकच्छ की दो कन्या यशस्वती और सुनन्दा से प्रभु का विवाह किया। यशस्वती के संबंध से भरत, वृषभसेन, अनन्तविजय, महासेन, अनन्तवीर्य आदि १०० पुत्र व एक कन्या ब्राह्मी उत्पन्न हुई। सुनंदा के द्वारा पुत्र बाहुबली व पुत्री सुन्दरी उत्पन्न हुई।

प्रभु नें विद्या पढ़ानेका मार्ग चलाने के लिये सबसे पहिले दोनों पुत्रियों को अक्षर व अङ्क विद्या, व्याकरण, छन्द, अलंकार, काव्यादि विद्यायें सिखाई व एक १०० अध्यायों में स्वायंभुव नाम का व्याकरण बनाया, फिर १०१ पुत्रों को अनेक विद्यायें सिखाई। विशेष विशेष विद्याओं में विशेष पुत्रों को बहुत प्रवीण किया—जैसे भरत को नीति में, अनन्त विजय को चित्रकारी व शिल्पकला में, वृषभसेन को सङ्गीत और वादन मे, बाहुबलि को वैद्यक, धनुष विद्या और कामशास्त्र में, इत्यादि।

श्री ऋषभदेव की इच्छानुसार इन्द्रने सुकौशल, अवंती, कुरुजांगल, अङ्ग, वङ्ग, पुंड्र, चंड्र, अश्मक, रम्यक, कुरु, काशी, कलिंग, समुद्रक, काशमीर, उशीनर, आनर्त, वत्स, पंचाल, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, करहाट, महाराष्ट्र,

सुराष्ट्र, आभीर, कोंकण, बनवास, आंध्र, कर्णाट, कोशल, चोल, केरल, दारु, अभिसार, सौवीर, सूरसेन, अपरान्त, विदेह, सिंधु, गांधार, यवन, चेदि, पल्लव, कांबोज, आरट्ट, वाल्हीक, तुरुष्क, शक, केकय आदि अनेक देशों में आर्यखण्ड का विभाग कर दिया।

भगवान ने प्रजा को आजीविका के साधन के लिए निम्न लिखित छः कर्म बताये:—

असि (शस्त्र), मसि (लेखन), कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या।

प्रजा की योग्यता देख कर असिकर्म करने वालों को क्षत्रिय वर्ण, मसि, कृषि, वाणिज्य, पशु पालनादि कर्म करने वालों को वैश्य वर्ण व शेष कर्म करने वालों को शूद्र वर्ण मे नियत कर दिया। †

हर एक वर्ण वालों को अपने २ कामों में प्रवीण होने के लिये सीमा बांध दी। आषाढ़ कृष्ण १ को कृतयुग का प्रारम्भ हुआ। फिर नाभिराजा ने अपने पुत्र को स्वयं राज्य पद पर आरूढ़ किया। क्योंकि भगवान ने लोगों को इक्षुरस पीने का उपदेश किया था, इसलिये भगवान को इक्ष्वाकु कहते थे। इसी लिये यह वंश इक्ष्वाकु वंश कहलाया।

---

† जो वर्ण पूर्व की पीढ़ी दर पीढ़ियों में भी था, किन्तु कारण न मिलने से प्रच्छन्न हो गया था, वही अतीन्द्रिय दर्शी ऋषभदेव ने व्यक्त कर दिया। (सम्मति पं० माणिकचन्दजी)।

भगवान ने अपने वंश के सिवाय चार वंश और स्थापित किये। राजा सोमप्रभ को कुरुवंश का स्वामी, हरि को हरिवंश का, अकंपन को नाथवंश का व काश्यप को उग्रवंश का नायक बनाया तथा पुत्रों को भी पृथक २ राज्य करने को देश नियत कर दिए।

इस ही प्रकार नीतिपूर्वक श्री ऋषभदेव ने ६३ लाख पूर्व तक राज्य किया।

एक दिन भगवान राज्य सभा में बैठे थे, एक स्वर्ग की नीलांजनादेवी सभा मे मंगलीक नृत्य करती करती मरण कर गई। इस क्षणिक अवस्था को देखकर प्रभु को वैराग्य हो गया, आप बारह भावनाओं का चिन्तवन करने लगे। तब पाँचवें स्वर्ग से लौकांतिक देवों ने आकर प्रभु के वैराग्य को दृढ़ करने वाली स्तुति की। भगवान ने साम्राज्य पद बड़े पुत्र भरत को दिया। फिर इन्द्र, भगवान् को पालकी पर विराजमान करके बड़े उत्सव से सिद्धार्थ बन मे ले गया, वहाँ एक शिला पर बैठ सर्व वस्त्र आभूषण उतार कर, केशों को लोंच कर प्रभु ने नग्न अवस्था में मुनि का चारित्र धारण किया। यह चैत वदी ९ का दिन था।

प्रभु के साथ उनके स्नेह मे पड़ कर ४००० राजाओं ने भी मुनि भेप धारण किया। भगवान ने ६ मास का योग ले लिया और ध्यान में मग्न हो गये। तब ही भगवान को चौथा मनःपर्ययज्ञान पैदा हो गया। वे ४००० राजा भी उसी तरह खड़े

हो गये। वे दो तीन मास तक तो खड़े रह सके, फिर घबड़ा गये और भूख प्यास से पीड़ित हो वन के फलादि व जल को खाने पीने लगे।

इन लोगों ने भ्रष्ट हो कर अपने मन से दंडी, त्रिदण्डी आदि मत स्थापन कर लिये। इन में आदीश्वर प्रभु का पोता **मारीच** भी था।

छः मास का योग पूर्ण कर प्रभु आहार के लिये नगर में गये। मुनि को आहार देने की विधि न जानने से छः मास तक प्रभु को अन्तराय रहा—भोजन न मिल सका। पीछे हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस को, जो पूर्व जन्म मे उनकी स्त्री रह चुका था, यकायक पूर्व जन्म की स्मृति हो आई। उसने विधि सहित वैशाख सुदी ३ को इक्षुरस का आहार दिया। इसलिये इस मिती को अक्षय तृतीया कहते हैं।

भगवान ने १००० वर्ष तक मौनी रह कर आत्म-ध्यान करते हुए, यत्र तत्र भ्रमण कर तप किया। अन्त में फागुन वदी ११ को **पुरमिताल** नगर के निकट शकट बन मे चार घातिया कर्मों को नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया, तब भगवान जीवनमुक्त परमात्मा अरहन्त हो गये। इन्द्र ने समवशरण की रचना की। उपदेश प्रगटा और उससे अनेक जीवों ने जैनधर्म धारण किया।

मुनि समुदाय के गुरु रूप गणधर ८४ हुए, जिनमें मुख्य **वृषभसेन, सोमप्रभ, श्रेयांस** थे। ब्राह्मी और सुन्दरी ने, जो

ऋषभदेव की पुत्रियां थीं, विवाह न किया तथा प्रभु के पास आकर आर्यिका (साध्वी) हो गईं और सब आर्यिकाओं में मुख्य हुईं।

कुल शिष्य भगवान के ८४०८४ साधु, ३५0000 आर्यिकायें, ३ लाख श्रावक और ५ लाख श्राविकायें थीं। अनेक देशों में विहार कर प्रभु ने धर्म का उपदेश दिया। फिर कैलाश पर्वत पर से १४ दिन तक आत्मध्यान में लीन हो माघ वदी १४ को निर्वाण प्राप्त किया। ❀

श्री ऋषभदेव का वंश अर्थात् इक्ष्वाकु व सूर्यवंश बराबर श्री महावीर स्वामी के समय तक चलता रहा। इसी वंश मे अनेक तीर्थंकर व श्री रामचन्द्र लक्ष्मण आदि भी हुए।

❀ श्री ऋषभदेव के चारित्र का प्रमाण इस तरह है :—

प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषुः, शशासकृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्धतत्वः पुनः रद्भुतोदयो, ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः ॥ २ ॥
स्वदोषमूलं स्वसमाधितेजसा, निनाय योनिर्दय भस्मसात्क्रियाम्।
जगादतत्वं जगतेऽर्थिनेऽञ्जसा, बभूव च ब्रह्म पदामृतेश्वरः ॥ ४ ॥

(स्वयंभू स्तोत्र)

भावार्थ—जिस प्रजापति ने पहिले प्रजा को कृषि आदि का उपदेश दिया फिर तत्वज्ञानी वैरागी हुए, आत्मसमाधि के तेज से उन्होंने ही अपने आत्मा के दोषों को जलाकर जगत को तत्वों का उपदेश दिया और सिद्धपद के ईश्वर हो गए।

७६. संक्षिप्त चरित्र श्री नेमिनाथ जी

हरिवंश की एक शाखारूप यदुवंश में द्वारका के राजा समुद्रविजय थे। उनकी पटरानी शिवादेवी के गर्भ में कार्तिक शुक्ला ६ के दिन १६ स्वप्नों के देखने के साथ श्री नेमिनाथ जी का आत्मा जयन्त विमान से अहमिंद्र पद को छोड़ कर आया और श्रावण सुदी ६ को प्रभु का जन्म हुआ।

समुद्रविजय के छोटे भाई वसुदेव जी के पुत्र नौवें नारायण श्रीकृष्ण थे। यह भी बड़े प्रतापशाली थे। एक दफे मगध के राजा प्रतिनारायण जरासिंध ने चढ़ाई की। तब श्री कृष्ण ने श्री नेमिनाथ जी को नगर की रक्षा का भार सौंपा। प्रभु ने ॐ शब्द कहकर स्वीकार किया और मुस्करा दिये, जिस से श्री कृष्ण को विजय का निश्चय हो गया। कृष्ण जरासिंध को मार कर व तीन खण्ड देश के स्वामी हो लौट आये।

एक दफे बनक्रीड़ा को नेमिनाथ जी कृष्ण की सत्यभामा आदि पटरानियो के साथ गये। वहां बातों ही बातों में सत्यभामा ने नेमिनाथ जी को नीचा दिखाने की इच्छा से यह साबित करना चाहा कि वे श्री कृष्ण के समान पराक्रमी नहीं है।

इसको सुनकर स्वामी जी ने अपना बल दिखाने को आयुधशाला मे आकर नाग शय्या पर चढ़ धनुष चढ़ाया तथा शङ्ख बजाया। शंख को सुनकर श्री कृष्ण श्री नेमिनाथ जी का कार्य जान आश्चर्यान्वित हुए और यह विचारने लगे कि यदि ये इतने पराक्रमी हैं तो इनके सामने मैं राज्य न कर सकूंगा, इसलिए

इनको वैराग्य हो जावे, ऐसा उपाय करना चाहिये। इन्हीं दिनों नेमिनाथ का विवाह उग्रवंशी राजा उग्रसेन की कन्या राजमति से होने वाला था। लग्न निश्चित हुई और बारात सज धज के साथ चलने लगी। इधर श्री कृष्ण ने नेमिनाथ को वैराग्य उत्पन्न कराने के लिये बारात के मार्ग में बहुत से पशुओं को बन्द कराके सेवकों को यह समझा दिया, कि यदि श्री नेमिनाथ जो पूछें तो यह कह देना कि श्री कृष्ण ने आपके विवाहोत्सव में म्लेच्छ अतिथियों के सत्कारार्थ इन्हे इकट्ठा कराया है।

यह केवल मात्र एक चाल थी। पशु मारकर मांस खाने का भाव न था। जब श्री नेमिनाथ उधर पहुंचे, तब पशुओं का करुण क्रन्दन और चीत्कार सुन व्याकुल हो उठे। पूंछने पर जब उन्हें मालूम हुआ कि श्री कृष्ण ने मेरी शादी में आये म्लेच्छ अतिथियों के सत्कारार्थ इनको इकट्ठा कराया है, तभी उन्होंने विवाह न करने का निश्चय किया और तुरन्त पशुओ को बंधन से छुड़ाकर स्वयं संसार से वैरागी हो श्रावण सुदी ६ के दिन श्री गिरनार पर्वत के सहस्राम्र बन में जाकर दीक्षा धारण करली। ५६ दिन तक कठिन तपश्चरण करने से प्रभु को गिरनार पर्वत पर ही असौज सुदी १ के दिन केवलज्ञान हो गया। तब आप जीवन्मुक्त परमात्मा हो अरहन्त हो गये और धर्मोपदेश देते हुए विहार करने लगे।

आपके शिष्य १८००० मुनि थे, उनमें मुख्य वरदत्त आदि ११ गणधर थे। राजमती भी बिना विवाहे नेमिनाथ जी के

लौटने पर संसार से उदास हो गई और वह भी आर्यिका के व्रत लेकर नेमिनाथ की शिष्या ४० हज़ार आर्यिकाओं मे मुख्य हुई। श्रीकृष्ण बलदेव अपनी २ रानियों सहित उपदेश सुनने को आये। तब कृष्ण की रुक्मिणी, सत्यभामा आदि आठ पटरानियों ने आर्यिका के व्रत धार लिये। भगवान ने ६९९ वर्ष ९ मास ४ दिन विहार किया। आपकी आयु १००० वर्ष की थी, फिर एक मास श्री गिरनार पर्वत पर योग निरोध कर आषाढ़ सुदी ७ को मोक्ष पधारे।

७७. संक्षिप्त चरित्र -श्री पार्श्वनाथ जी

श्रीपार्श्वनाथ भगवान का जीव अपने जन्म से दो जन्म पहिले आनन्द राजा थे। वह मुनि हो घोरतप करके व तीर्थंकर नामकर्म बांध कर १३ वें स्वर्ग में इन्द्र हुये थे। वहां से आकर काशी देश के बनारस नगर के काश्यप गोत्रीय राजा विश्वसेन की रानी ब्रह्मादेवी के गर्भ मे वैशाख बदी २ को पधारे। पौषबदी ११ को प्रभु जन्मे, तब इन्द्र ने उत्सव किया। १६ वर्ष की उम्र मे एक दिन बन विहार को गये, वहां महीपाल राजा अजैन तापसी पंचाग्नि तप लकड़ी जलाकर कर रहा था। वह एक लकड़ी को चीरने के लिये लकड़ी मे कुल्हाड़ी मारने ही वाला था कि भगवान ने अवधिज्ञान से यह जानकर कि इसके भीतर सर्प सर्पिणी हैं, उसे काटने के लिये मना किया। उसने वचन न माना। लकड़ी पर चोट पड़ते ही दोनों प्राणी घायल हो गये तब भगवान के साथ जो अन्य राजकुमार थे, उन्होने इनको धर्मो-

पदेश सुनाया, जिससे वे शान्तभाव से मरकर भवनवासी देवों मे धरणेन्द्र व पद्मावती हुए।

यह तपसी पूर्व जन्मो मे प्रभु के जीव का वैरी था। यहा भी इसको इस कृत्य से लज्जित होना पड़ा। इस कारण इसके हृदय में शत्रुता का भाव और भी ज्यादा बढ़ गया। अन्त में मर कर पंचाग्नि तप के कारण ज्योतिषदेव हुआ।

३० वर्ष तक प्रभु कुमारावस्था मे रहे। एक दिन अयोध्या के राजा जयसेन ने कुछ भेंटें प्रभु को भेजीं, तब दूत से भगवान ने उस नगर का हाल मालूम किया। वह उस नगर मे उत्पन्न हुए श्री ऋषभदेव आदि महापुरुषों का वर्णन करने लगा। यह सुनकर प्रभु को अपना भी ध्यान हो आया कि मैं भी तो तीर्थंकर ही हूँ। अभी तक क्यों गृह के मोह मे फँसा हूं? ऐसा सोच कर आप भी वैराग्यवान् हो गये और रीतिवत् पौष कृष्ण ११ को अश्व वन मे तप धारण कर लिया।

भगवान का पहला आहार गुलमसेठ नगर के राजा धन्य ने किया, जिसका दूसरा नाम ब्रह्मदत्त भी था। भगवान ने ४ मास तक तप करते हुए विहार किया, फिर प्रभु अहिछत्र राम· नगर (जो बरेली के पास है) के वन मे आये। वहां ध्यान में बैठे थे, तब इनके वैरी उसी ज्योतिषी देव ने घोर उपसर्ग किया, किन्तु प्रभु ध्यान से न डिगे। इतने ही में सर्पों के जीव धरणेन्द्र और पद्मावती आये। उन्होंने सर्प का ही रूप धारण कर अपने फणों द्वारा तप में लीन भगवान की उपसर्ग से रक्षा की। इनके

भय से वह ज्योतिषी देव भाग गया। इसी कारण वह स्थान अहिच्छत्र प्रसिद्ध है।

उसी समय चैत वदी १४ को भगवान ने केवलज्ञान प्राप्त किया और काशी, कौशल, पांचाल, मरहठा, मारू, मगध, अवंती, अङ्ग, वंग आदि देशों में विहार कर धर्मोपदेश दिया।

स्वयंभू आदि १० गणधरों को लेकर कुल १६००० मुनि, ३६००० आर्यिकाएँ, एक लाख श्रावक व ३ लाख श्राविकाएँ शिष्य हुए।

कुछ कम ७० वर्ष विहार करके श्रीसम्मेद शिखर पर्वत से सावन सुदी ७ को भगवान मोक्ष पधारे। ※

७८. संक्षिप्त जीवनचरित्र श्री महावीर स्वामी

श्री महावीर स्वामी अपने पूर्व जन्मो मे भरत के पुत्र मारीच थे, जो श्री ऋषभदेव के साथ तप लेकर भ्रष्ट हो गये थे। यही मारीच भ्रमण करते हुए त्रिपृष्ठ नारायण हुए थे। ये ही नंद राजा के भव में उत्तम भावनाओ को भाकर १६ वें स्वर्ग में

※ श्रीपार्श्वनाथ जी के उपसर्ग के सम्बन्ध में कथन है कि—

बृहत्फणा मण्डल मण्डपेन यं स्फुरत्तडित्पिगरुचोपसर्गिणाम्। जुगूह नागो धरणोधराधरं, विराग संध्या तडिदम्बुदोयथा ॥ १३२ ॥

(स्वयम्भू स्तोत्र)

भावार्थ—धरणेन्द्र ने उपसर्ग मे प्राप्त भगवान के ऊपर अपने फणों का मण्डप इसी तरह कर लिया जिस तरह पर्वत पर बिजली सहित मेघ छा जाते है।

इन्द्र हुए। वहां से आकर भरत क्षेत्र के विदेह प्रांत के कुन्डपुर या कुन्ड ग्राम में नाथवंशी काश्यप गोत्री राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशला या प्रियकारिणी के गर्भ में आषाढ़ सुदी ६ को पधारे। चैत सुदी १३ को भगवान का जन्म हुआ। उस समय इन्द्र ने मेरु पर अभिषेक करके भगवान के वर्द्धमान और वीर ऐसे दो नाम रखे।

प्रभु ने आठवें वर्ष अपने योग्य श्रावक के १२ व्रत धार लिए, क्योंकि प्रभु को जन्म से ही तीन ज्ञान थे। वे धर्म को अच्छी तरह समझते थे।

एक दिन संजय और विजय दो चारण मुनियों को कुछ सन्देह हुआ। बालक वीर के दूर से दर्शन प्राप्त करते ही उनके सन्देह मिट गये। तब उन्होंने सन्मति नाम प्रसिद्ध किया।

एक दफे बन में वीर कुमार अन्य बालकों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। इनके वीरत्व की परीक्षा लेने को एक देव महासर्प का रूप रख उस वृक्ष से लिपट गया, जिस पर सब बालक चढ़े थे। सब बालक तो सर्प को देखकर डर गये और कूद कूद कर भाग गये, परन्तु वीर ने निर्भय हो उससे क्रीड़ा की। तब देव बहुत प्रसन्न हुआ और भगवान का "अतिवीर" नाम सम्बोधित कर वापिस चला गया।

भगवान को बिना ही पढ़े सब कला व विद्याएँ प्रगट थीं। भगवान ने तीस वर्ष तक की उम्र मन्द राग से धर्म साधते व शुभ ध्यान करते हुए बिताई। जब आप तीस वर्ष के हुए, तब

पिता ने विवाह के लिये कहा। उस समय अपनी ४२ वर्ष की ही आयु शेष जान कर प्रभु स्वयं ही विचारते विचारते वैरागी हो गये और खंका नाम के वन मे जाकर, मगसिर वदी १० को केश लोंच कर नग्न हो साधु हो गए और बेले (दो उपवास) का नियम लिया।

पहला आहार कूल नगर के राजा कूल ने कराया। प्रभु ने १२ वर्ष तप किया। इसी मध्य में एक दफे भगवान उज्जयनी के बन में ध्यान लगा रहे थे, वहां स्थाणु महादेव ने इन्हें अपनी मंत्र विद्या से बहुत कष्ट दिये। अन्त में ध्यान मे निश्चल देख वह लज्जित हो गया और प्रभु का माहात्म्य देख "महावीर" नाम प्रसिद्ध किया। इस तरह वीर अतिवीर, महावीर, सन्मति और वर्धमान ऐसे पांच नाम प्रभु के प्रसिद्ध हुए।

प्रभु जृंभिका ग्राम के बाहर ऋजुकूला नदी के तट पर शाल वृक्ष के नीचे ध्यान कर रहे थे, तब आप केवलज्ञानी हो कर अरहन्त पद मे आ गए।

समवशरण रचे जाने पर ६६ दिन तक जब उपदेश नही हुआ, तब इन्द्र ने विचार किया कि कोई व्यक्ति यहां वाणी को धारण करने योग्य नही मालूम होता है।

ज्ञान से विचार कर इन्द्र ने वृद्ध पुरुष का रूप रख राज-गृही मे रहने वाले एक गौतम ब्राह्मण को भगवान का मुख्य गणधर होने की शक्ति रखने वाला जान, उसे भगवान के पास बला लाने को चला। किन्तु यह समझ कर कि वह मानी ब्राह्मण

भगवान के पास इस तरह नहीं आएगा, इन्द्र ने उसके पास जाकर उससे निम्न श्लोक का अर्थ पूछा :—

त्रैकाल्यं द्रव्य षट्कं नव पद सहितं जीव षट् काय लेश्या ।
पंचान्येचास्तिकाया व्रत समिति गति ज्ञान चारित्र भेदाः ॥
इत्येतन्मोक्ष मूलं त्रिभुवन महितैः प्रोक्त मर्हद्भिरीशैः ।
प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशतिच मतिमान्यः सवै शुद्ध दृष्टिः ॥

वह ब्राह्मण इस श्लोक में सांकेतिक शब्दों के कारण इसका अर्थ न समझ सका। तब वह अपने दोनों भाई व ५०० शिष्यों को लेकर समवशरण में गया। भगवान के दर्शन मात्र से इसका मन कोमल हो गया और भगवान को नमन करके प्रश्न किये । तब ही भगवान की वाणी भी प्रगटी ।

सात तत्वों का भाषण सुनकर ये तीनों भाई शिष्यों सहित मुनि हो गये। इन्द्र ने गौतम का दूसरा नाम इन्द्रभूति रखा। प्रभु ने ६ दिन कम ३० वर्ष तक बहुत से देशों में विहार करके धर्मोपदेश दिया। राजग्रही के विपुलाचल पर बहुत दफे वाणी प्रकटी । वहां का राजा श्रेणिक या विम्बसार भगवान का मुख्य भक्त था।

चन्दना सती वैशाली के राजा चेटक की लड़की कुमार अवस्था में ही आर्यिका हो गई। वह सब आर्यिकाओं मे उसी प्रकार मुख्य हुई जैसे सर्व साधुओं में मुख्य गौतम या इन्द्रभूति थे। भगवान के इन्द्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति, सुधर्म, मौर्य, मौंड, पुत्र, मैत्रेय, अकंपन, अधवेल तथा प्रभास, ये ११ गणधर

थे। सर्व शिष्य १४००० मुनि, ३६००० आर्यिकायें, १ लाख श्रावक, ३ लाख श्राविकायें हुईं।

फिर भगवान पावानगर के वन से कार्तिक कृष्णा १४ की रात्रि को अन्त समय, स्वाति नक्षत्र मे मोक्ष पधारे। आप ही के समय मे बौद्धमत के स्थापक क्षत्री राजकुमार गौतम बुद्ध हो गये हैं। जैन शास्त्रानुसार पहले यह जैन मुनि हो गये थे। अज्ञानता से इन्होंने कुछ शंका उत्पन्न कर अपना भिन्नमत स्थापित किया। इनके साधुओं से जैन साधुओं का सदा ही वादानुवाद हुआ करता था। बौद्ध साधु वस्त्र रखते हैं, आत्मा को नित्य नहीं मानते हैं, जैनियों की तरह खान पान की शुद्धि पर ध्यान नहीं रखते। बुद्ध ने गृहस्थों को मांसाहार के निषेध का ऐसी कड़ी आज्ञा नहीं दी, जैसी जैन गृहस्थों को तीर्थङ्करों ने दी है।

७९. भरतक्षेत्र के वर्तमान प्रसिद्ध १२ चक्रवर्ती

इस भरतक्षेत्र के छः विभाग हैं। दक्षिण मध्य-भाग को आर्यखण्ड व शेष ५ को म्लेच्छखण्ड कहते है। काल का परिवर्तन आर्यखण्ड में ही होता है, म्लेच्छखंडो में सदा दुखमा सुखमा काल की कभी उत्कृष्ट और कभी जघन्य रीति रहती है। जो इन छहों खण्डों के स्वामी होते हैं, उनको चक्रवर्ती राजा कहते हैं। हर एक चक्रवर्ती मे नीचे लिखी बातें होती हैं:—

१. १४ रत्न—७ चेतन—जैसे सेनापति, गृहपति, शिल्पी, पुरोहित, पटरानी, हाथी, घोड़ा। ७ अचेतन—सुदर्शनचक्र, छत्र,

दण्ड, खड्ग, चूड़ामणि, चर्म, कांकिणी। इन हर एक के सेवक देव होते हैं।

२. नौ निधियें या भण्डार—काल, महाकाल, नैसर्प्य पांडुक, पद्म, माणव, पिंगल, शंख, सर्वरत्न जो क्रम से पुस्तक, असिमषिसाधन, भाजन, धान्य, वस्त्र, आयुध, आभूषण, वादित्र, वस्त्रों के भण्डार होते हैं। इनके रक्षक भी देव होते हैं।

३. ३२००० मुकुटबद्ध राजा व ३२००० देश व १८००० आर्यखण्ड के म्लेच्छ राजा (आधीन होते हैं)।

४. ८४ करोड़ हाथी, ८४ लाख रथ, १८ करोड़ घोड़े, ८४ करोड़ प्यादे, ३ करोड़ गौशालायें आदि सम्पत्ति होती है।

छः खण्डों के राजाओं को दिग्विजय के द्वारा अपने आधीन करते हैं व न्याय से प्रजा को सुखी करते हुए राज्य करते हैं। ऐसे १२ चक्रवर्ती २४ तीर्थंकरों के समय में नीचे प्रकार हुए हैं:—

(१) भरत—ऋषभदेव के पुत्र। यह बड़े धर्मात्मा थे। एक दफे इनको एक साथ तीन समाचार मिले—श्री ऋषभदेव का केवलज्ञानी होना, आयुधशाला में सुदर्शनचक्र का प्रगट होना, अपने पुत्र का जन्म होना। आपने धर्म को श्रेष्ठ समझ कर पहले ऋषभदेव के दर्शन किये; फिर लौटकर दोनों लौकिक काम किये।

भरत ने दिग्विजय करके भरतखण्ड को वश किया। मुख्य सेनापति हस्तिनापुर का राजा जयकुमार था। छोटे भाई बाहुबलि ने इनको सम्राट् नहीं माना, तब इनसे युद्ध ठहरा।

मंत्रियों को सम्मति से सेना को व्यर्थ में जिससे किसो भी प्रकार की क्षति न हो, इस कारण परस्पर तीन प्रकार के युद्ध ठहरे— दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध, मल्लयुद्ध ।

तीनों युद्धों मे भरत ने बाहूबलि से हार कर क्रोधित हो बाहूबलि पर चक्र चला दिया । किन्तु चक्र भी जब बाहूबलि का कुछ न बिगाड़ सका, तो भरत बहुत लज्जित हुए। उधर बाहूबलि अपने बड़े भाई भरत का राज्य-लक्ष्मी के लोभ में फँसे होने के कारण, यह दुष्कृत्य देख और अपने द्वारा बड़े भाई का अपमान हुआ समझ, राज्य-लक्ष्मी की निंदाकर तुरंत वैरागी साधु हो गये और बहुत ही कठिन तपश्चरण करने लगे। एक वर्ष तक लगातार ध्यान में खड़े रहने से इनके शरीर पर बेलें तक चढ़ गईं। अंत मे केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षपद प्राप्त किया ।

भरत बड़े न्यायी थे । इनका बड़ा पुत्र अर्ककोर्ति था। काशी के राजा अकम्पन ने अपनी पुत्री सुलोचना के सम्बंध के लिये स्वयम्बर-मण्डप रचा । तब सुलोचना ने भरत के सेनापति जयकुमार के कण्ठ में वरमाला डाली। इस पर अर्ककीर्ति ने रुष्ट होकर युद्ध किया और युद्ध में हार गया। चक्रवर्ती भरत ने अपने पुत्र की अन्यायप्रवृत्ति पर बहुत खेद किया और उसको किसी भी प्रकार की सहायता नहीं दी। भरत बड़े आत्मज्ञानी व राज्य करते हुए भी वैरागी थे।

एक दफे एक किसान ने भरत से पूछा कि आप इतना प्रबंध करते हुए भी तत्वज्ञान का मनन कैसे करते है ? आपने

उसे एक तेल का कटोरा दिया और कहा तू मेरे कटक में घूम आ, परंतु यदि इस कटोरे में से एक बूंद भी गिरेगी तो तुझे दण्ड मिलेगा। वह कटोरे को ही देखता हुआ लौट आया। महाराज ने पूछा कि क्या देखा ? उसने कहा कि कुछ नहीं कह सकता, क्यो कि मेरा ध्यान कटोरे पर था। यह सुनकर भरत ने कहा कि इसी तरह मेरा चित्त आत्मा पर रहता है। मैं सब कुछ करते हुए भी अलिप्त रहता हूं।

एक दिन दर्पण में मुख देखते हुए शिर मे एक सफेद बाल देख कर आप साधु हो गए। पौने दो घड़ी के ही आत्मध्यान से आपको केवलज्ञान होगया। आयु का अन्त होने पर मोक्ष पधारे। आपने कैलाश पर्वत पर भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों चौबीसियो के ७२ मन्दिर बनवाए थे।

(२) सगर—यह अजितनाथ के समय में हुए। इक्ष्वाकुवंशी, पिता समुद्रविजय, माता सुबाला थीं। सगर के ६०००० पुत्र थे। एक दफे इन पुत्रो ने सगर से कहा कि हमें कोई कठिन काम बताइए। तब सगर ने कैलश के चारों तरफ खाई खोद कर गङ्गा नदी बहाने की आज्ञा दी। ये गये, खाई खोदी। तब सगर के पूर्व जन्म के मित्र मणिकेतु देव ने अपने वचन के अनुसार सगर को वैराग्य उत्पन्न कराने के लिये उन सर्व कुमारो को अचेत करके सगर के पास आकर यह मिथ्या समाचार कहे कि आपके सब पुत्र मर गये। यह सुन कर सगर को वैराग्य हो गया और भगीरथ को राज्य दे

परशुराम और श्वेतराम ने यह बात जान कर बहुत क्रोध किया और सहस्रवाहु तथा कृतवीर्य को मार डाला। तब सहस्रवाहु के बड़े भाई सांडिल्य ने गर्भवती रानी चित्रमती को वन में रक्खा जहाँ सुभौम पैदा हुए।

यह १६ वें वर्ष में चक्रवर्ती हुए। एक दिन परशुराम को निमित्तज्ञानी से मालूम हुआ कि मेरा मरण जिससे होगा वह पैदा हो गया है। निमित्तज्ञानी ने उसकी परीक्षा भी बताई कि जिस के आगे मारे हुए राजाओं के दांत भोजन के लिये रखे जावें और वे सुगन्धित चावल हो जावें, वही शत्रु है। इस लिये परशुराम ने अनेक राजाओं को सुभौम के साथ बुलाया। सुभौम के सामने दांत चावल हो गये। सुभौम को ही शत्रु समझ परशु-राम ने सुभौम को पकड़ा, परन्तु तब ही सुभौम को चक्ररत्नकी प्राप्ति हुई। उस चक्र से ही युद्ध कर सुभौम ने परशुराम को मार दिया।

दिग्विजय कर सुभौम ने बहुत काल राज्य किया। यह बहुत ही विषयलंपटी था। एक दफ इसको एक शत्रु देव ने व्या-पारी के रूप में बड़े स्वादिष्ट अपूर्व फल खाने को दिये। जब वे फल न रहे, तब चक्री ने और मांगे। व्यापारी ने कहा कि ये फल एक द्वीप में मिल सकेंगे। आप जहाज़ पर मेरे साथ चलिये। वह लोलुपी चल दिया। मार्ग में उस देव ने जहाज़ को डुबो दिया और चक्रवर्ती खोटे ध्यान से मर कर सातवें नर्क गया।

(९) नौवें चक्री १६ वें तीर्थंकर मल्लिनाथ के समय में

काशीनगरी के स्वामी इक्ष्वाकुवंशीय पद्मनाथ और ऐरा रानी के सुपुत्र पद्म थे। बादलों को नष्ट होते देखकर वैरागी हो गये और साधु होकर मोक्ष पधारे।

(१०) दसवें चक्री श्री हरिषेण भगवान मुनिसुव्रतनाथ के काल में भोगपुर के राजा इक्ष्वाकुवंशीय पद्म और ऐरादेवी के सुपुत्र थे। आकाश में चन्द्र ग्रहण देख आप साधु हो गये तथा अन्त में सर्वार्थसिद्धि गये, मोक्ष न जा सके।

(११) ग्यारहवें चक्रवर्ती जयसेन श्री नमिनाथ तीर्थंकर के समय में वत्सदेश के कौशाम्बी नगर के इक्ष्वाकुवंशी राजा विजय और रानी प्रभाकारी के पुत्र थे। एक दिन आकाश में उल्कापात देख कर वैराग्यवान हो साधु हो गये। तप करते हुए अन्त में श्री सम्मेद शिखर पर पहुँचे। वहाँ चारण नाम की चोटी पर समाधिमरण कर सर्वार्थसिद्धि में जा अहमिंद्र हुए। एक जन्म मनुष्य का और ले मोक्ष पधारेंगे।

(१२) श्री नेमिनाथ के समय में १२वाँ चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त हुआ। यह ब्रह्मा राजा व रानी चूलदेवी का पुत्र था। यह विषय भोगों में फंस रहा। अन्त में मर कर सातवें नर्क गया।

८०. भरतक्षेत्र में ९ प्रतिनारायण, ९ नारायण और ९ बलभद्रों का परिचय

विदित हो कि हर एक अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी काल में ६३ महा पुरुष होते रहते हैं, अर्थात् २४ तीर्थंकर जो सब मोक्ष

जाते हैं; १२ चक्री जिन में कोई मोक्ष कोई स्वर्ग और कोई नर्क जाते हैं और ९ प्रतिनारायण ९ नारायण व बलभद्र जिन में से ९ नारायण और ९ प्रतिनारायण विषय भोग में तन्मय होने के कारण नर्क जाते हैं, परन्तु बलभद्र साधु होकर कोई मोक्ष तथा कोई स्वर्ग जाते हैं।

नारायण और बलभद्र एक ही पिता के पुत्र होते हैं। प्रतिनारायण नारायण के जन्म से पहिले ही भरत के दक्षिण तीन खण्डों को जीतकर अपने वश करते हैं और चक्ररत्न को पाकर अर्धचक्री हो राज्य करते हैं। कारणवश नारायण से इनकी शत्रुता हो जाती है, दोनों घोर युद्ध करते हैं, अन्त में नारायण उसी के चक्र रत्न को पाकर उसी से प्रतिनारायण का मस्तक छेदन कर स्वयं अर्धचक्री हो जाते हैं और बड़े भाई बलभद्र के साथ राज्य करने लगते हैं।

नारायण के पास निम्न ७ रत्न होते हैं:—

धनुष, खड्ग, चक्र, शंख, दण्ड, गदा, शक्ति।

बलभद्र के पास भी निम्न चार रत्न होते हैं:—

गदा, माल, हल, मूसल।

ये सब ही ६३ महापुरुष मोक्ष के अधिकारी हैं। जो इस जन्म से मोक्ष न जावेंगे, वे आगामी किसी जन्म से बहुत थोड़े काल में ही मोक्ष प्राप्त कर लेंगे। नारायणादि का परिचय इस भांति है:—

(१) श्रेयांसनाथ तीर्थङ्कर के समय में भरत के विजयार्ध

पर्वत पर उत्तर श्रेणी मे अलकापुरी के राजा मयूरग्रीव का पुत्र **अश्वग्रीव** नाम का पहिला प्रतिनारायण हुआ। इसी समय में पोदनपुर के राजा **प्रजापति के मृगावती** रानी से पहला नारायण **तृपृष्ठ** (यह भरत-पुत्र मारीच अर्थात् महावीर स्वामी का जीव है) और दूसरी रानी **जयावती** से **विजय** नाम के बलभद्र हुए।

अश्वग्रीव और **तृपृष्ठ** मे युद्ध का कारण यह हुआ कि अश्वग्रीव के पास किसी राजा द्वारा भेजी हुई भेंट को **तृपृष्ठ** ने बलपूर्वक ले लिया था। युद्ध में प्रतिनारायण मर कर नर्क गया। नारायण पृथ्वी का स्वामी हुआ और राज्य करके अन्त मे यह भी मोह से मर कर नर्क ही में गया। पीछे बलभद्र ने सुवर्ण-कुंभ मुनि से दीक्षा ले मोक्ष प्राप्त किया।

(२) श्री वासुपूज्य के समय में भोगवर्धनपुर के राजा श्रीधर के पुत्र दूसरे प्रतिनारायण **तारक** हुए। उसी समय द्वारिकापुरी के राजा **ब्रह्म** की **सुभद्रा** रानी से दूसरे बलभद्र **अचल** और **ऊषा** रानी से दूसरे नारायण **द्विपृष्ठ** जन्मे।

तारक ने दूत भेजकर नारायण को आज्ञानुवर्ती रहने को कहा, जिसे स्वीकार न करने के कारण परस्पर युद्ध हुआ। तारक चक्र से मरा और सातवें नर्क गया। द्विपृष्ठ राजा हुआ और राज्य कर यह भी मरकर नर्क ही गया, फिर अचल ने साधु हो मोक्ष प्राप्त किया।

(३) श्री विमलनाथ तीर्थंकर के जीवन काल में ही रत्नपुर

का राजा मधु नाम का तीसरा प्रतिनारायण हुआ। तब ही द्वारका के राजा रुद्र के सुभद्रा देवी रानी से तीसरे बलभद्र सुधर्म व पृथ्वी देवी से तीसरे नारायण स्वयंभू हुए।

किसी राजा द्वारा मधु को भेजी हुई भेंट स्वयंभू ने छीन ली, इससे परस्पर युद्ध हुआ। मधु मरकर नर्क गया। स्वयंभू ने भी राज्य कर मोह से मर ७ वां नर्क पाया। सुधर्म ने विमलनाथ भगवान से दीक्षा ले मोक्ष पद पाया।

(४) श्री अनन्तनाथ तीर्थङ्कर के समय काशी देश के राजा के यहाँ मधुसूदन नाम का चौथा प्रतिनारायण हुआ। तब ही द्वारिका के राजा सोमप्रभ की रानी जयावती से सुप्रभ नाम के चौथे बलभद्र तथा रानी सीता से पुरुषोत्तम नाम के चौथे नारायण हुए।

मधुसूदन ने पुरुषोत्तम से राज्य-कर मांगा। न देने पर युद्ध छिड़ गया। मधुसूदन मारे गये व सातवें नर्क गये। पुरुषोत्तम ने मग्न हो राज्य किया और अन्त में मर कर यह भी सातवें नर्क गया। सुप्रभ ने दीक्षा ले तपकर मोक्ष प्राप्त किया।

(५) भगवान धर्मनाथ के समय में हस्तिनापुर में मधुकैटभ नाम का पाँचवाँ प्रतिनारायण हुआ। तब ही खगपुर के राजा इक्ष्वाकुवंशी सिंहसेन की रानी विजयादेवी से ५ वें बलभद्र सुदर्शन व अंबिकादेवी से ५ वें नारायण पुरुषसिंह हुए।

मधुकैटभ ने नारायण से कर मांगा, न देने पर परस्पर युद्ध हुआ। कैटभ मर कर नर्क गया। पुरुषसिंह भी राज्य कर

अन्त में मर सातवें नर्क गया। वलदेव सुदर्शन ने धर्मनाथ तीर्थ-ङ्कर के पास दीक्षा ली और तपकर मोक्ष पधारे।

(६) श्री अरहनाथ के तीर्थकाल मे सुभौम चक्रवर्ती के पीछे निसुंभ नाम का छठवां प्रतिनारायण हुआ। तब ही चक्रपुर के महाराज वरसेन के वैजयन्ती रानी से छठवें वलभद्र नंदिषेण और लक्ष्मीवती रानी से छठवें नारायण पुंडरीक हुए। इन्द्रपुर के राजा उपेन्द्रसेन ने अपनी कन्या पद्मावती का विवाह नारायण पुंडरीक से किया। इस पर निशुंभ अप्रसन्न हो युद्ध को आया। युद्ध में निशुंभ मर कर नर्क गया। पुंडरीक राज्य मे मोहित हो अन्त मे मर कर छठे नर्क गया। वलभद्र नन्दिषेण ने वैराग्यवान हो तपकर मोक्ष प्राप्त किया।

(७) श्री मल्लिनाथ के तीर्थकाल मे विजयार्ध पर्वत पर वलिन्द नाम के ७ वें प्रतिनारायण हुए। उसी समय बनारस के इक्ष्वाकुवंशी राजा अग्निशिप के अपराजिता रानी से ७ वें बलभद्र नन्दमित्र तथा केशवती रानी से ७ वें नारायण दत्त उत्पन्न हुए।

दत्त के पास क्षीरोद नाम का बड़ा सुन्दर हाथी था। उसे बलिन्द ने मांगा। दत्त ने बदले में कन्या विवाहने को कहा। इस शर्त के न माने जाने पर परस्पर युद्ध हुआ। बलिन्द मर कर नर्क गया। दत्त ने भी राज्य कर भोगों में लीन हो अन्त मे सातवां नर्क पाया। नन्दमित्र ने तपकर मोक्ष प्राप्त किया।

(८) भगवान मुनिसुव्रत के तीर्थकाल मे लंका के राजा

रत्नश्रवा के केकशी रानी से ८ वें प्रतिनारायण रावण हुए। तब ही अयोध्या के राजा दशरथ के कौशल्या रानी से ८ वे बलभद्र रामचन्द्र तथा सुमित्रा रानी से ८ वें नारायण लक्ष्मण हुए। रामचन्द्र की रानी सीता पर मोहित हो रावण ने उसे हरण किया। इस पर रामचन्द्र ने लङ्का पर चढ़ाई की। युद्ध में लक्ष्मण ने रावण को मारा। वह नर्क गया। लक्ष्मण ने सीता को छुड़ाया। बहुत काल तक दोनों भाइयों ने राज्य किया। लक्ष्मण भोगों में अत्यन्त लिप्त रहते थे।

एक दिन किसी ने रामचन्द्र की मृत्यु की झूठी खबर लक्ष्मण को दी, जिस को सुनते ही एक दम शोकाकुल हो जाने से लक्ष्मण के प्राण निकल गये।

रामचन्द्र ने कुछ काल पीछे दीक्षा ले तपकर मुक्ति पाई।

(९) श्री नेमिनाथ स्वामी के समयमें मगध का राजा जरासिंधु नौवाँ प्रतिनारायण हुआ। उसीसमय मथुरा के यदुवंशी महाराजा वसुदेवके रानी देवकी से श्रीकृष्ण नाम के नौवें नारायण हुए।

राजा कंस देवकी के पुत्रों का शत्रु था। इससे उसके भय से वसुदेव ने पैदा होते ही कृष्ण को जमना पार ब्रज में ले जाकर एक नन्द गोपाल को पालने के लिये सौंप दिया।

महाराज वसुदेव की दूसरी रानी रोहिणी से ९ वें बलभद्र पद्म नाम के हुए। किसी कारण से कंस ने कृष्ण का जन्म जान लिया तब कृष्ण के मारने के लिये अनेक उपाय किये, पर वे सब निष्फल हुए।

जब कृष्ण सामर्थ्यवान हुए तब पहिले ही-उन्होंने कंस को युद्ध में मारा। कंस की रानी जीवद्यशा ने अपने पिता प्रतिनारायण जरासध को पति के मरण का हाल सुनाया। जरासन्ध ने अपने पुत्र कालयवन को युद्ध के लिए भेजा। शत्रु को बलवान जानकर यादवों ने सूरीपुर हस्तिनापुर व मथुरा को छोड़ कर समुद्र के पास द्वारकानगर में वास किया। वहीं श्री नेमिनाथ जी का जन्म हुआ।

कुछ काल पीछे जरासंध कृष्ण के मारने के लिये सेना लेकर चला। इधर कृष्ण ने भी सेना ले पांचों पाण्डवों के साथ कुरुक्षेत्र में आकर जरासंध की सेना के साथ युद्ध किया। अंत में जरासंध ने सुदर्शनचक्र चलाया; वह कृष्ण के हाथ में आगया, उसी से ही कृष्ण ने जरासंध को मारा। वह मर कर नर्क गया; फिर कृष्ण ने तीन खण्ड राज्य पाकर द्वारका लौटकर, नारायण पद में बल्देव सहित राज्य किया। इनका शरीर नील वर्ण का था। कृष्ण की रुक्मणी आदि आठ पटरानियाँ थीं।

नेमिनाथ जी को अधिक प्रतापी जान कृष्ण ने कुछ ऐसी चेष्टा की जिससे नेमिनाथ वैराग्यवान हो, मुनिहो तप करने लगे। इधर बलदेव और नारायण राज्य करने लगे।

कृष्ण के मोक्षगामी जम्बू प्रद्युम्न आदि पुत्र हुए। कृष्ण ने पाण्डवों को सहायता देकर कौरवों का विध्वंस कराया और पाण्डवों को राज दिलाया। अन्त मे एक दफ़े कोई ऋद्धिधारी तपस्वी द्वीपायन द्वारका के बाहर तप कर रहे थे। उन पर यादवों के

बालकों ने उपसर्ग किया। मुनि को क्रोध आगया, जिससे द्वारका भस्म होगई। बड़ी कठिनता से कृष्ण, बल्देव भागकर बचे।

कौशाम्बी के एक बन में पहुँचे। वहां कृष्ण का भाई जरत्कुमार, जो बहुत वर्ष पहले बाहर निकल गया था और कुसंगति में पड़ शिकार खेलने लगा था, रहा करता था। कृष्ण जी बनमें प्यास से पीड़ित हो सो गये थे, बल्देवजी पानी लेने गये थे। जरत्कुमार ने दूर से कृष्ण को मृग जानकर बाण मारा, जिससे कृष्ण का देहान्त हो गया।

बल्देवजी ने भी कुछ काल पीछे मुनिव्रत लिये और वे पांचवें स्वर्ग पधारे। पांचों पाण्डवों ने दीक्षा ली और सेत्रुँजय पर्वत पर ध्यान कर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन ने मोक्ष पाई तथा नकुल सहदेव सर्वार्थसिद्धि पधारे।

८१. जैनियों के तिहवार

जिन जिन मितियो में जिस जिस तीर्थङ्कर ने मोक्ष पाई है वे सब ही उत्सव के योग्य हैं। वर्तमान में नीचे लिखे दिवस अति प्रसिद्ध हैं:—

(१) कार्तिक, फागुन, आषाढ़ के अंत के आठ दिन, जिनको आष्टान्हिका व नन्दीश्वर पर्व कहते हैं।

(२) कार्तिक बदी १४ अर्थात् निर्वाण चौदस—जिसकी पिछली रात्रि को श्री महावीर स्वामी ने मोक्ष प्राप्त किया।

(३) कार्तिक बदी १५—गौतम स्वामी ने केवलज्ञान पाया।

(४) चैत्रसुदी १३—श्री महावीर भगवान का जन्म दिवस।

(५) वैशाख सुदी ३ (अक्षय तृतीया)—ऋषभदेव को श्रेयांस द्वारा प्रथम मुनिदान इस ही दिन हुआ।

(६) जेठ सुदी ५—शास्त्र पूजन का पवित्र दिन।

(७) श्रावण सुदी १५—रक्षाबंधन पर्व; इस ही दिन श्री विष्णुकुमार मुनि द्वारा ७०० मुनि संघ को अग्नि से बचाया गया था।

(८) भादों बदी १ से भादों सुदी १५ तक—षोडश कारण व्रत, जिसका प्रारम्भ श्रावण सुदी १५ से होकर समाप्ति कुवार बदी १ को होती है।

(९) भादों सुदी ५ से भादों सुदी १४ तक—दश-लक्षण पर्व।

(१०) भादों सुदी १०—सुगन्ध वा धूप दशमी।

(११) भादों सुदी १३, १४, १५—रत्नत्रय व्रत; प्रारंभ भादों सुदी १२, समाप्ति कुवार बदी १।

(१२) भादों सुदी चौदस—अनंत चौदस, दशलाक्षणी का अन्त दिवस।

८२. जैनियों के भारतवर्ष में प्रसिद्ध कुछ तीर्थ व अतिशय क्षेत्र

(१) बंगाल, बिहार, उड़ीसा प्रान्त—

१. श्री सम्मेदशिखर पर्वत या पार्श्वनाथ पहाड़ी—यहां

से सदा ही भरतक्षेत्र के २४ तीर्थंकर मोक्ष जाया करते है। इस कल्पकाल में किसी विशेषता से श्री ऋषभ, वासुपूज्य, नेमिनाथ और श्री महावीर के सिवाय २० तीर्थंकर मोक्ष प्राप्त हुए। यह सर्व पर्वत परम पवित्र माना जाता है। जैन लोग नंगे पैर यात्रा करते हैं, भोजनादि नीचे उतर कर करते हैं। ई० आई० रेल्वे के पारसनाथ स्टेशन से १२ मील हज़ारीबाग जिले में है।

२. मन्दारगिरि—भागलपुर से करीब ३० मील एक रमणीक पर्वत है। इसी से श्री वासुपूज्य भगवान ने मोक्ष प्राप्त की थी।

३. चम्पापुर—भागलपुर से ४ मील, नाथनगर स्टेशन से १ मील। यहा श्री वासुपूज्य भगवान के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, यह चार कल्याणक हुए हैं।

४. पावापुर—विहार स्टेशन से ७ मील। यहां श्री महावीर-भगवान ने मोक्ष प्राप्त की है।

५. कुण्डलपुर—पावापुर से १० मील के करीब। यहाँ श्री महावीर भगवान का जन्म प्रसिद्ध है। *

६. राजगृह और विपुलाचल आदि पांच पर्वत—बिहार लाइन में राजगृह स्टेशन है। यहां श्रेणिक आदि अनेक जैन राजा हुए हैं। महावीर स्वामी का समवशरण आया है।

यहां से श्री गौतम गणधर, श्री जीवंधर कुमार आदि

---

* नोट—परंतु उनका जन्मस्थान मुज़फ्फ़रपुर ज़िले में बसाढ़ ग्राम के पास होना चाहिये। वहीं स्थान बनना चाहिये।

अनेक महात्माओं ने मोक्ष प्राप्त की है। श्री मुनिसुव्रत नाथ तीर्थंकर का जन्म स्थान है।

७. गुणावा—राजगृह से ५ मील के करीब। यहां श्री गौतम स्वामी ने तप आदि किया। नवादा स्टेशन है।

८. श्री खण्डगिरि उदयगिरि—उड़ीसा के भुवनेश्वर स्टेशन से ५ मील। यहां बहुत प्राचीन गुफाऐं हैं, अनेक साधुओं ने ध्यान किया है। सन् ई० से १५० वर्ष पूर्व का जैन राजा खारवेल का शिलालेख हाथी गुफा मे है। तीर्थङ्करों की मूर्तियां चिन्ह सहित कोरी हुई हैं।

(२) युक्तप्रांत—

(१) बनारस—यहां श्री सुपार्श्वनाथ ७ वें तीर्थंकर का जन्मस्थान भदैनी घाट पर है। यहीं दिगम्बर जैनों का श्री स्याद्वाद महाविद्यालय है, जो सन् १९०५ ई० मे स्थापित हुआ था। भेलूपुरा में श्री पार्श्वनाथ २३ वें तीर्थंकर का जन्मस्थान है।

(२) चन्द्रपुरी—बनारस से १० मील के करीब गङ्गा तट पर श्री चन्द्रप्रभु ८ वें तीर्थंकर का जन्म स्थान है।

(३) सिंहपुरी—बनारस से ६ मील श्री श्रेयांसनाथ ११ वें तीर्थंकर का जन्म-स्थान है।

(४) खखुन्दी या किस्किन्धापुर—नुनखार स्टेशन से २ मील, गोरखपुर से ३० मील। यहां श्रीपुष्पदन्त भगवान ९ वें तीर्थंकर ने जन्म प्राप्त किया था।

(५) कुहाऊँ—सलेमपुर स्टेशन से ५ मील; गोरखपुर

से ४६ मील। यहां एक जैन मानस्तम्भ २४॥ फुट ऊंचा है। श्री पार्श्वनाथ की मूर्ति अङ्कित है। इस पर गुप्त सं० १४६ व ४५० सन् ई० का शिलालेख है।

(६) **कोसाम या कौशाम्बी**—ज़िला प्रयाग, मझानपुर से १२ मील। यहां श्री पद्मप्रभु भगवान ६ठे तीर्थंकर का जन्म हुआ है। बहुत प्राचीन स्थान है। यहां सन् ई० से दो शताब्दि पहिले के जैन शिलालेख हैं।

(७) **अयोध्या**—यहां श्री आदिनाथ, अजितनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ व अनन्तनाथ ऐसे ५ तीर्थंकरों का जन्म स्थान है। यहां सदा ही भरत क्षेत्र के तीर्थंकरों का जन्म हुआ करता है, किन्तु इस कल्प में यहां केवल ५ ही जन्मे।

(८) **श्रावस्ती**—या सहेठमहेठ जि० गोंडा—बलरामपुर से १२ मील। यहां श्री संभवनाथ तीसरे तीर्थंकर का जन्म हुआ है।

(९) **रत्नपुरी**—फ़ैज़ाबाद से कुछ दूर सुहावल स्टेशन से १॥ कोस। यहां १५ वें तीर्थंकर श्री धर्मनाथ का जन्म हुआ है।

(१०) **कम्पिला**—ज़िला फ़र्रुखाबाद, क़ायमगञ्ज से ६ मील। यहां श्री विमलनाथ १३ वें तीर्थंकर ने जन्म प्राप्त किया था।

(११) **अहिछत्र**—बरेली ज़िला आंवला स्टेशन से ६ मील। यहां श्री पार्श्वनाथ भगवान को कमठ ने उपसर्ग किया था।

तब धरणेन्द्र पद्मावती ने उनकी रक्षा की थी और उनको यहां केवलज्ञान प्राप्त हुआ था, ऐसा प्रसिद्ध है।

(१२) मथुरा—चौरासी। यहां अन्तिम केवली श्री जम्बू स्वामी ने मुक्ति प्राप्त की है।

(१३) हस्तिनापुर—मेरठ शहर से २४ मील। यहां श्री शान्तिनाथ, कुँथुनाथ, अरहनाथ १६, १७, १८ वें तीर्थंकरो के जन्म आदि चार कल्याणक हुए।

(१४) देवगढ़—जिला झांसी जाखलौन स्टेशन से ८ मील। यहां पहाड़ पर बहुत से दर्शनीय जैन मन्दिर व शिला-लेख हैं।

(३) राजपूताना, मालवा, मध्य भारत—

१. श्रमणगिरी—सोनागिरि (दतिया स्टेट) से २ मील। यहां से नङ्ग, अनङ्ग कुमार व पांच करोड़ मुनि मुक्त हुए हैं।

२. सिद्धवरकूट—इन्दोर स्टेट, मोरटक्का स्टेशन से ७ मील, नर्बदा पार। यहां से दो चक्रवर्ती, १० कामदेव व ३॥ करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं।

३. बड़वानी—चूलगिरि बावनगजा, मऊ छावनी से ८० मील। यहां श्री मेघनाथ, कुम्भकरण आदि ने मुक्ति पाई है व चौरासी फुट ऊंची श्री ऋषभदेव की मूर्ति बहुत पुरानी है।

४. महावीर जी—श्री महावीर जी स्टेशन (जयपुर स्टेट) से ३ मील। यहां श्री महावीर जी की अतिशय रूप मूर्ति है।

५. **आबू जी**—आबू रोड से १८ मील पर्वत है। बड़े अमूल्य जैनमन्दिर हैं।

६. **केशरिया जी**—उदयपुर से चालीस मील। यहां अतिशयरूप श्री ऋषभदेव की मूर्ति है।

(४) **मध्य प्रान्त बरार**—

१. **कुण्डलपुर**—दमोह से १९ मील। यहां पर्वत पर श्री महावीर स्वामी की अतिशय रूप मूर्ति है व बहुत से मंदिर हैं।

२. **रेसंदीगिरि या नैनागिरि**—सागर से ३० मील, दलपतपुर से ८ मील। यहां से वरदत्तादि मुनि मोक्ष गये हैं। पर्वत पर २५ मंदिर हैं।

३. **द्रोणागिरि**—ग्राम सेंदपा सागर से ६६ मील। यहां से गुरुदत्तादि मुनि मोक्ष पधारे हैं। २५ जैनमंदिर हैं।

४. **मुक्तागिरि**—एलिचपुर स्टेशन से १२ मील यहां ३॥ करोड़ मुनि मुक्ति गये हैं। पर्वत पर बहुत मंदिर हैं।

५. **रामटेक**—नागपुर से २४ मील, रामटेक स्टेशन से ३ मील। यहां शांतिनाथ जी की अतिशयरूप मूर्ति है।

६. **भातकुली**—अमरावती से १० मील। यहां भी मनोज्ञ ऋषभदेव की मूर्ति चौथे काल की है।

७. **अन्तरीक्षपार्श्वनाथ**—अकोला से १९ कोस। यहां श्री पार्श्वनाथ की मूर्ति सिरपुर ग्राम मे अतिशयरूप है।

८. **मकसीपार्श्वनाथ**—जिला उज्जैन मकसीस्टेशन से थोड़ी दूर। यहां चौथे काल की पार्श्वनाथ जी की मूर्ति है।

(५) बम्बई प्रान्त—

१. तारङ्गा—तारङ्गा हिल स्टेशन से ३ मील। पर्वत पर से वरदत्त, सागरदत्त तथा ३॥ करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं।

२. सेत्रुंजय—पालीताना स्टेशन पर्वत से श्री युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, ये तीन पाण्डव व ८ करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं।

३. गिरनार—जूनागढ़ से ४ मील। यहां से श्री नेमिनाथ भगवान व प्रद्युम्न आदि ७२ करोड़ मुनि मुक्ति पहुंचे हैं।

४. पावागढ़—स्टेशन से २ मील। यहां से रामचंद्र के सुत लव, कुश व ५ करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं।

५. गजपन्था—नासिक से ९ मील। यहाँ से बलभद्रादि ८ करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं।

६. मांगीतुङ्गी—नासिक जिला मनमाड़ स्टेशन से ४० मील। यहां से श्री रामचंद्र, हनूमान, सुग्रीव आदि ९९ करोड़ मुनि मुक्ति गये हैं।

७. कुन्थलगिरि—बारसी टाउन स्टेशन से २२ मील। यहां से श्री देशभूषण कुलभूषण मुनि मुक्ति पधारे हैं।

८. सजोत—गुजरात में अंकलेश्वर से ६ मील। यहां श्री शीतलनाथ की प्राचीन दिव्य मूर्ति दर्शनीय है।

(६) दक्षिण मदरास आदि—

१. श्रवणबेलगोल—जैनबद्री मैसूरस्टेट मंदगिरि स्टेशन से १२ मील; हासन स्टेशन से ३० मील। यहां श्री बाहुबलि (गोम्मटस्वामी) की ५६ फुट ऊंची दर्शनीय मूर्ति है।

२. मूलबद्री—मङ्गलोर स्टेशन से २२ मील। यहां रत्न-विम्ब व श्री धवलादि ग्रन्थ दर्शनीय हैं।

३. कारकल—मूलबद्री से १२ मील। यहां भी ३२ फुट ऊँची श्री बाहुबलि की मूर्ति है।

४. एनूर—यहां भी श्री बाहुबलि की २८ फुट ऊँची मूर्ति है।

५. पोन्नूरहिल—कांचीदेश स्टेशन तिडिवनम् से २४ मील। यहां श्री कुन्दकुन्दाचार्य जी की तपोभूमि है।

८३. जैनियों के कुछ प्रसिद्ध आचार्य व उनके उपलब्ध ग्रन्थ

१. श्री कुन्दकुन्दाचार्य—वि० सं० ४९। श्री पञ्चास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, अष्टपाहुड़, रयणसार द्वादशभावना।

२. श्री उमास्वामी—वि० सं० ८१। श्री तत्त्वार्थसूत्र

३. वट्टकेर स्वामी—श्री मूलाचार।

४. श्री पुष्पदन्त भूतबलि—श्री धवल, जयधवल, महाधवल।

५. श्री समन्तभद्राचार्य—वि० द्वि० शताब्दी। स्वयंभू-स्तोत्र, देवागम स्तोत्र, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, २४ जिन स्तुति, युक्त्यनुशासन।

६. शिवकोटी—वि० द्वि० शताब्दि। भगवती आराधनासार।

७. श्री पूज्यपाद—वि० चतुर्थ शताब्दि। समाधिशतक, इष्टोपदेश, सर्वार्थसिद्धि, जैनेन्द्रव्याकरण, श्रावकाचार।

८. श्रीमाणिक्यनन्दि—वि० छठी शताब्दि। परीक्षा मुख, न्यायसूत्र।

९. श्री अकलङ्कदेव—वि० अष्टम शताब्दि। राजवार्तिक, अष्टशती।

१०. श्री जिनसेनाचार्य—वि० अष्टम शताब्दि। श्री आदि पुराण, जयधवल टीका का भाग।

११. प्रभाचन्द्र—श्री प्रमेयकमल मार्तण्ड।

१२. पुष्पदन्तकवि—प्राकृत महापुराण आदि।

१३. श्री जिनसेनाचार्य—वि० अष्टम शताब्दि। श्री हरिवंश पुराण।

१४. श्री गुणभद्राचार्य—वि० नवम शताब्दि। श्री उत्तर पुराण, आत्मानुशासन, जिनदत्त चरित्र।

१५. श्री विद्यानन्दि—वि० नवम शताब्दि। आप्तपरीक्षा श्लोकवार्तिक, प्रमाणपरीक्षा, अष्टसहस्री, पत्रपरीक्षा।

१६. श्रीनेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती—वि० दशम शताब्दि। श्री गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार, द्रव्य संग्रह।

१७ श्री अमृतचन्द्रआचार्य—वि० दशम शताब्दि। पञ्चास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार पर संस्कृत वृत्ति, तत्वार्थसार, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय।

१८. श्री देवसेनाचार्य—वि० दशम शताब्दि। आलाप-पद्धति, तत्त्वसार, दर्शनसार, आराधनासार।

१९. श्री जयसेनाचार्य—वि० दशम शताब्दि। प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय, समयसार पर संस्कृतवृत्ति।

२०. अमितगति—वि० ११ शताब्दि। श्रावकाचार, सामायिकपाठ, धर्मपरीक्षा, सुभाषितरत्नसंदोह।

२१. शुभचन्द्र—वि० ११ शताब्दि। श्री ज्ञानार्णव।

८४. जैनियों में दिगम्बर या श्वेताम्बर भेद

यह पहिले ही कहा जा चुका है कि जैनधर्म अनादि है तथा इतिहास की खोज के बाहर है। प्राचीन सनातन जैनमार्ग यही है कि इसके साधु नग्न होते हैं तथा जहाँ तक वस्त्र त्याग नहीं कर सकते थे, वहाँ तक ग्यारह प्रतिमा रूप श्रावक का व्रत पालन होता था।

श्री ऋषभ देव से श्री महावीर तक बराबर यही मार्ग जारी था। श्री महावीर के समय मे जैन मत को निर्ग्रन्थ मत कहते थे, जैसा बौद्धो की प्राचीन पुस्तकों से प्रगट है। उस समय दिगम्बर या श्वेताम्बर नाम प्रसिद्ध नहीं थे। सम्वत् रहित प्राचीन जैन मूर्तियां जो विक्रम सम्वत् के पूर्व की या चतुर्थ काल की समझी जाती हैं (जब लेख लिखने का रिवाज न था) सब नग्न ही पाई जाती हैं।

श्री सम्मेद शिखर के पास पालगंज में जो दिगम्बर जैन

मन्दिर है उस में श्री पार्श्वनाथ की मूर्ति ऐसी ही है। विहार के मानभूम ज़िले में देवलटान ग्राम में जो प्राचीन दिगम्बर जैन मंदिर है उस में मुख्य ऋषभदेव की अन्य तीर्थंकर सहित मूर्ति सम्वत् रहित बहुत प्राचीन नग्न ही है।

श्री भद्रबाहु श्रुतकेवली के समय में महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य्य के राज्य में (सन् ई० से ३२० वर्ष पहिले) मध्य देश में १२ वर्ष का दुष्काल पड़ा। दुष्काल के प्रारम्भ में ही श्री भद्रबाहु श्रुतकेवली ने, जो २४००० शिष्यों सहित वहां मौजूद थे, सर्व संघ को यह आज्ञा दी कि इस समय सर्व संघ को दक्षिण में जाना चाहिए। क्योंकि वहां जैन वस्ती बहुत है, वहां आहार आदि की कठिनता नहीं पड़ेगी। तब आधे संघ ने तो आज्ञा मानली, किंतु आधे ने न मानी। वे आधे वहीं रहे। कालान्तर में दुष्काल पड़ने पर वे अपने साधु के चारित्र को न पाल सके। शिथिलतायें हो गईं। वस्त्र कंधे पर डालने लगे। भोजन लाकर एक स्थान पर खाने लगे। कुत्तों से बचने के लिए लाठी रखने लगे। उन को लोगों ने **अर्द्धकालिक** प्रसिद्ध किया।

दुष्काल बीतने पर जब मुनि संघ लौटा, तब बहुतों ने प्रायश्चित्त लेकर अपनी शुद्धि की। शेषों ने हठ किया। शिथिलाचार चलता रहा। विक्रम सम्वत् १३६ में श्वेत वस्त्र धारण करने से श्वेताम्बर नाम पड़ा। तब से जो प्राचीन निर्ग्रंथ मत के अनुयायी थे उन्होंने अपने को दिगम्बर प्रसिद्ध किया अर्थात् जिनके साधुओं का दिशा ही वस्त्र है।

पहले श्वेताम्बरों की बहुत कम प्रसिद्धि रही। वीर सम्वत् ९०० के अनुमान गुजरात के बल्लभीपुर में श्रीयुत देवर्द्धिगण नाम के एक श्वेताम्बर आचार्य ने अपने यतियों की सभा करके प्राकृत भाषा में प्राचीन द्वादशांग वाणी के नाम से अपने आचारांग आदि ग्रंथ बनाए। ये वे नहीं हैं जिनको १८००० आदि पदों में संकलन किया गया था। इन ग्रन्थों में इन्होंने बहुत सी बातें दिगम्बरों में भेद रूप सिद्ध कीं, जिनमे से कुछ ये हैं—

१. सवस्त्र साधु होकर महाव्रत पालना।

२. भिक्षा मांग कर पात्र में लाना व एक नियत स्थान पर एक या अनेक दफे खाना।

३. स्त्री को भी मुक्ति पद होना। दृष्टान्त में १९ वें तीर्थंकर मल्लिनाथ को मल्लि तीर्थंकरी लिखना। प्राचीन जैन आम्नाय में स्त्री उस ध्यान की योग्यता नहीं रख सकती, जिस से केवलज्ञान हो सके। इसलिये स्त्री का जीव आगे पुरुष भव पाकर ही महाव्रत पाल मोक्ष जा सकता है।

४. केवली भगवान अरहंत का भी ग्रास रूप साधारण मनुष्यों के समान भोजन पान करना, मलमूत्र करना, रोगी होना। प्राचीन जैनमत में केवली परमात्मा के अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त बल प्रगट हो जाने से उनकी आत्मा में न इच्छाएं होती है और न निर्बलताएं। उनका सशरीर (अरहन्त) अवस्था में शरीर कपूरवत् बहुत ही निर्मल हो जाता है। उसमें धातु उपधातु बदल जाती हैं। तब जैसे वृक्षों का

शरीर चहुं ओर के परमाणुओं से पुष्टि पाता है, उसी तरह केवली का शरीर दीर्घ काल रहने पर भी चारों तरफ़ के शरीर योग्य परमाणुओं के ग्रहण से पुष्टि पाता है। केवली के शरीर में न रोगादि होते और न मलमूत्र होता है।

५. मूर्तियों को लंगोट सहित ध्यानाकार बनाकर भी उनके गृहस्थ के समान मुकुट आदि आभूषण पहिनाते, शृङ्गार करते, अतर लगाते, पान खिलाते हैं। दिगम्बर जैन मूर्तियाँ नग्न ध्यानाकार खड़े व बैठे आसन होती हैं। उनमे कोई वस्त्र का चिन्ह नहीं होता न वे अलंकृत की जाती हैं!

६. काल द्रव्य को कोई २ श्वेताम्बर ग्रन्थकार निश्चय से स्वीकार नहीं करते। केवल घड़ी घण्टा आदि व्यवहार काल मानते हैं। दिगम्बर जैन काल द्रव्य को द्रव्यों के परिवर्तन का निमित्त कारण मानकर अवश्य उसकी सत्ता स्वीकार करते हैं।

७. महावीर भगवान का ब्राह्मणी के यहाँ गर्भ में आना और इन्द्र के द्वारा गर्भ हरण कर त्रिशला के गर्भ मे स्थापन करना; दिगम्बर जैनी इसे स्वीकार नहीं करते। त्रिशला के गर्भ में ही वे आये थे।

८. श्री महावीर भगवान का विवाह हुआ था। दिगम्बर जैनी कहते हैं कि वे कुँवारे ही रहे और तप धारण किया।

इत्यादि कुछ बातों मे अन्तर पड़ा। सात तत्व, नौ पदार्थ, बाईस परीषह, पांच महाव्रत, आदि सर्व ही जैनी मानते हैं।

श्री उमा स्वामी महाराज सम्वत् ८१ में हुये हैं, उन्होंने जो तत्वार्थसूत्र रचा है, जिस की मान्यता दिगम्बरों में बहुत अधिक है, उसको श्वेताम्बरी भी मानते हैं। यही इस बात का प्रमाण है कि उस समय भेद बहुत स्पष्ट नहीं हुआ था, पीछे से कुछ सूत्रों में परिवर्तन हुआ है।

इनके यहाँ बड़े प्रसिद्ध आचार्य १२ वीं शताब्दि में श्री हेमचन्द्र जी हुए हैं, जिन्होंने बहुत से संस्कृत में ग्रन्थ रचे और राजा कुमारपाल जैन की सहायता से गुजरात में धर्म का बहुत विस्तार किया। तब ही से श्वेताम्बरो की बहुत प्रसिद्धि हुई है। इन्हीं में से स्थानकवासी या ढूंढिये १५ वीं शताब्दि में हुये हैं, जिन्होंने मूर्ति मानने का त्याग किया और जो सवस्त्र साधुओं को ही तीर्थङ्कर के समान मान कर पूजते हैं। अन्तर यह है कि साधु लोग मलीन वस्त्र पहिनते और मुंह में पट्टी बांधते हैं, इस भाव से कि कोई कीट न चला जावे। भोजन नीच, ऊँच जो देवे उसी से ले लेते है।

ऐन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिया जिल्द २५ ग्यारहवीं दफा सन् १९११ (Encyclopedia Brittannia Vol. 25, 11th edition 1911) में यह वाक्य जैनमत के सम्बन्ध में हैं—

The Jains are divided into two great parties, Digambars and Swetambars. The latter have only as yet been traced and that doubtfully as far back as 5th century A. D. after Christ, the former are almost certainly the same as Nirgranthas who are referred to in numerous passages of *Buddhist Pali*

Pitakas and must therefore as old as 6th. century B. C. The Nirgranthas are referred to in one of Asoka's edicts (Corpus Inscription, Plate XX).

The most distinguishing outward peculiarity of Mahavira and his earliest followers was their practice of going naked whence the term Digambar. Against this Custom Gotam Budha especially warned his followers, and it is referred to in the wellknown Greek phrase Gymnoso-phist used already by Magasthenes, which applies very aptly to Nirgranthas.

भावार्थ—जैनियों में दो बड़े भेद हैं—एक दिगम्बर दूसरा श्वेताम्बर। श्वेताम्बर थोड़े काल से शायद बहुत करके ईसा की पांचवीं शताब्दि से प्रगट हुये हैं। दिगम्बर निश्चय से करीब २ वे ही निर्ग्रन्थ हैं जिनका वर्णन बौद्धों की 'पाली' पिटकों (पुस्तकों) में आया है और ये लोग इस लिये सन् ई० से ६०० वर्ष पहले के तो होने ही चाहियें। राजा अशोक के स्तंभों में भी निर्ग्रन्थों का लेख है। (शिलालेख नं० २०)।

श्री महावीर जी और उनके प्राचीन मानने वालों में नग्न भ्रमण करने की क्रिया का होना एक बहुत ही प्रसिद्ध बाहरी विशेषता थी, जिससे शब्द दिगम्बर बना है।

इस क्रिया के विरुद्ध गौतम बुद्ध ने अपने शिष्यों को खास तौर से चिताया था, तथा प्रसिद्ध यूनानी शब्द 'जैन सूफी'

से भी यही प्रगट होता है। मेगस्थनीज़ (जो राजा चन्द्रगुप्त के समय सन् ई० से ३२० वर्ष पहले भारत में आये थे) ने इस शब्द का व्यवहार किया है। यह शब्द बहुत योग्यता के साथ निर्ग्रन्थों को ही प्रगट करता है।

इसी तरह विल्सन साहब H. H. Wilson M. A. अपनी पुस्तक बनाम "Essays and lectures on the religion of Jains" मे कहते हैं—

The Jains are divided into two principal divisons, Digambars and Swetambars. The former of which appears to have the best pretensions to antiquity and to have been most widely diffused. All the Deccan Jains appear to belong to the Digambar division. So it is said to the majority of Jains in western India. In early philosophical writings of the Hindus, the Jains are usually termed Digambars or Nagnas (naked).

भावार्थ—जैनियों में दो मुख्य भेद हैं—दिगम्बर और श्वेताम्बर। दिगम्बरी बहुत प्राचीन मालूम होते हैं और बहुत अधिक फैले हुए हैं। सर्व दक्षिण के जैनी दिगम्बरी मालूम होते हैं। यही हाल पश्चिम भारत के बहुत जैनियों का है। हिंदुओं के प्राचीन धार्मिक ग्रंथों में जैनियों को साधारणता से दिगम्बर या नग्न ही लिखा है।

(८४) श्रीमहावीर स्वामी के समय में इस भरतक्षेत्र के प्रसिद्ध राजा

जैनियों के कुछ पुराणों के देखने से जो नाम उन राजाओं के विदित हुए हैं जो श्रीमहावीर स्वामी के समय में थे, नीचे दिये जाते हैं :—

(१) मगधदेश—राजगृही का राजा श्रेणिक या बिम्ब-सार-जिसका कुल जैन था। कुमार अवस्था में बौद्ध हो गया था, फिर जवानी में जैन हो गया। यह भविष्य में होने वाले २४ तीर्थङ्करों में पहला पद्मनाभतीर्थंकर होगा। (इसका विस्तृत जीवन-चरित्र अलग पुस्तकाकार छप गया है। उसे मँगाकर पढ़ो)।

(२) सिंधुदेश—वैशाली नगर का सोमवन्शी राजा चेटक जैनी था। उसकी रानी भद्रा से निम्न १० पुत्र थे :—

धनदत्त, भद्रदत्त, उपेन्द्र, सुदत्त, सिंहभद्र, सुकंभोज, अकंपन, सुवतङ्ग, प्रभञ्जन और प्रभास।

इनमें अकंपन और प्रभास का नाम श्रीमहावीर स्वामी के ११ मुख्य साधु अर्थात् गणधरों में है।

इसकी ७ पुत्रियाँ यह थीं—

—१. प्रियकारिणी—जो नाथवंशी कुंडपुर (जिला मुजफ्फर-पुर) के राजा सिद्धार्थ जैनी को विवाही गई थी व जो श्री महावीर स्वामी की माता थी।

२ मृगावती—वत्सदेश के कौशाम्बी नगर के चंद्रवंशी राजा शतानीक जैन को विवाही गई थी।

३. सुप्रभा—जो दशार्ण देश (मंदसौर के निकट) के हेरकच्छ नगर के सूर्यवंशी जैनी राजा दशरथ को विवाही गई।

४. प्रभावती—जो कच्छ देश के रोरूक नगर के जैनी राजा उदयन को विवाही गई।

५. ज्येष्ठा—जिसको गंधार देश (कन्धार) के महीनगर के राजा सात्यक ने मांगी थी।

६. चेलना—जो राजगृह के राजा श्रेणिक या विम्बसार को विवाही गई।

७. चन्दना—जो विवाह न कर आर्यिका हो गई।

(उत्तर पुराण पर्व ७५ श्लोक १ से ३५)

(३) हेमांगदेश—राजपुर का राजा सत्यंधर व पुत्र जीवन्धर जैनी। (उत्तर पुराण पर्व ७५)

(४) विदेहदेश—राजपुर का राजा गणेन्द्र।

(उ० पु० पर्व ७५)

(५) चंपानगरी का राजा जैनी श्वेतवाहन, फिर जैन मुनि धर्मरुचि।

(उ० पु० पर्व ७६ श्लोक ८–९)

(६) सुरम्यदेश—पोदनापुर का राजा विद्रद्राज।

(७) मगधदेश—सुप्रतिष्ठ नगर का राजा जयसेन जैनी,

(उ० पु०, पर्व ७६ श्लोक २१७–२२१)

(८) पल्लवदेश—चन्द्राभा नगरी के राजा धनपति।

(क्षत्र चूड़ामणि लं० ५)

(९) दक्षिण—क्षेमपुरी का राजा नरपतिदेव।

(ज्ञ० चू० लं० ६)

(१०) मध्यदेश—हेमाभा नगरी का राजा दृढ़मित्र।

(ज्ञ० चू लं० ७ श्लोक ६८)

(११) विदेहदेश—धरणी तिलका नगरी का जैनी राजा गोविन्दराज।

(ज्ञ० चू० लं० १० श्लोक ७-८-९)

(१२) चन्द्रपुर का राजा सोमशर्म्मा।

(श्रेणिक चरित्र सर्ग २)

(१३) वेणुपद्म नगर का राजा वसुपाल।

(श्रेणिक चरित्र पर्व ५)

(१४) दक्षिण केरला का राजा मृगांक जैनी।

(श्रेणिक चरित्र पर्व ६)

(१५) हंसद्वीप का राजा रत्नचूल। ,,

(१६) कलिंगदेश के दन्तपुर नगर का राजा धर्मघोष जैनी, फिर दि० जैन मुनि हो गये। (श्रे० च० सर्ग १०)

(१७) भूमि तिलक नगर का राजा वसुपाल जैनी, पीछे यही जिनपाल नाम के मुनि हुए। (श्रे० च० सर्ग १०)

(१८) कौशाम्बी (प्रयाग के पास) के राजा चण्डप्रद्योत जैनी। (श्रे० च० सर्ग १०)

(१९) मणिवतदेश में दारानगर का जैनी राजा मणिमाली, पीछे मुनि हुए। (श्रे० च० सर्ग ११)

(२०) हस्तिनापुर का राजा विश्वसेन।

(श्रे० च० सर्ग ११)

(२१) पद्मरथ नगर का राजा वसुपाल।

(श्रे० च० सर्ग ११)

(२२) अवन्ती (मालवा) देश में उज्जयनी का राजा अवनिपाल जैनी।

(धन्यकुमार चरित्र अ० १)

(२३) मगधदेश की भोगवती नगरी का राजा कामवृष्टि।

(धन्यकुमार चरित्र अ० ४)

नोट—जिन राजाओं के जैनी होने में संशय था उन के आगे जैनी शब्द नहीं लिखा गया है।

८६. श्री महावीर स्वामी के समय में सामयिक स्थिति का दर्शन !

(१) स्त्रियो को अर्द्धांगिनी समझा जाता था व उनको सम्मानित किया जाता था।

उत्तरपुराण पर्व ७४ श्लोक २५९—

राजा सिद्धार्थ ने प्रियकारिणी को सभा में आने पर अपना आधा आसन बैठने को दिया।

(२) सात २ खन के मकान बनते थे।

महावीरचरित्र, उत्तरपुराण पर्व ७४ श्लोक २५३—

विदेह के कुण्डलपुर में सप्ततला प्रासाद थे।

(३-क) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनो मे परस्पर संबंध होते थे।

१. उत्तर पुराण पर्व ७४ श्लोक ४२४-२५—

राजा श्रेणिक ने ब्राह्मण की पुत्री से विवाह किया।

२. उत्तरपुराण पर्व ७४ श्लोक २९—

मोक्षगामी अभयकुमार इसी ब्राह्मण पुत्री के पुत्र हुए थे।

इसी स्थल पर श्लोक ४९१ से ४९५ मे वर्ण का वर्णन यह है—

वर्णाकृत्त्यादि भेदानां देहेऽस्मिन्न च दर्शनात्।
ब्राह्मणादिषु शूद्राद्यै गर्भाधान प्रवर्तनात् ॥
नास्ति जाति कृतोभेदो मनुष्याणां गवाश्ववत्।
आकृति ग्रहणात्तस्मादन्यथा परिकल्पते ॥
जाति गोत्रादि कर्माणि शुक्ल ध्यानस्यहेतवः।
येषु तेस्युस्त्रयोवर्णाः शेषा शूद्राः प्रकीर्तिता ॥
अच्छेदो मुक्ति योग्याया विदेहे जाति सन्ततेः।
तद्धेतु नाम गोत्राढ्य जीवा विच्छिन्न संभवात् ॥
शेषयोस्तु चतुर्थेस्यात् काले तज्जाति संततिः।
एवं वर्ण विभागः स्यान्मनुष्येषु जिनागमे ॥ ४९५ ॥

अर्थ—मनुष्य के शरीर में वर्ण आकृति के ऐसे भेद नहीं देखने में आते हैं, जिससे वर्ण भेद हो। क्योंकि ब्राह्मण आदि का शूद्रादि के साथ भी गर्भादान देखने में आता है। जैसे गौ घोड़े आदि की जाति का भेद पशुओं में है ऐसा जाति भेद मनुष्यों में नहीं है, क्योंकि यदि आकार भेद होता तो ऐसा भेद होता। जिनमे

जाति, गोत्र व कर्म शुक्ल-ध्यान के निमित्त है वे ही तीन वर्ण ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य हैं। इनके सिवाय शूद्र कहे गये हैं।

मुक्ति के योग्य जाति की सन्तान विदेहों में सदा चली जाती है। क्योंकि ऐसे नाम, गोत्र के धारी सदा होते रहते हैं। भरत और ऐरावत में चौथे काल में ही वर्ण की सन्तान व्यक्त रूप से चलती है, शेष कालों में अव्यक्त रूप से*। इस तरह जिन आगम में मनुष्यों के भीतर वर्ण का भेद जानना चाहिए।

३. उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ३२०-३२५—

जीवन्धर कुमार वैश्य पुत्र प्रसिद्ध थे। क्षत्रिय विद्याधर गरुड़ वेग की कन्या गन्धर्वदत्ता को स्वयंवर में वीणा बजा कर जीता और विवाहा।

४. उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ६४६-६५१—

जीवन्धर कुमार ने विदेह देश के विदेह नगर के राजा गयेन्द्र की कन्या रत्नवती को स्वयंवर मे चन्द्रकयंत्र पर निशाना लगा कर विवाहा।

५ उत्तरपुराण पर्व ७६ श्लोक ३४६-४८—

प्रीतंकर वैश्य को राजा जयसेन ने अपनी कन्या पृथ्वी-सुन्दर विवाही व आधा राज्य दिया।

६. क्षत्र चूड़ामणि लम्ब ५ श्लोक ४२-४९—

पल्लवदेश के चन्द्राभानगर के राजा धनपति की कन्या पद्मा को जीवन्धर वैश्य ने सर्प-विष उतार कर विवाहा।

---

*"शेष कालों में अव्यक्त रूप से चलती है" यह सम्मति पं० माणिकचन्द जी की है।

७. क्षत्र चूड़ामणि लम्ब १० श्लोक २३-२४—

विदेह देश की धरणीतिलका नगरी के राजा अर्थात् उस के मामा गोविन्दराज की कन्या का स्वयंवर हुआ। उसकी घोषणानुसार तीन वर्णधारी धनुषधारी एकत्र हुए। जीवन्धर ने चन्द्रक यन्त्र को वेधा और कन्या विवाही।

८. श्रेणिक चरित्र शुभचन्द्रकृत सर्ग २—

उपश्रेणिक ने भीलों के क्षत्रिय राजा यमदण्ड की तिलकवती कन्या को विवाहा जिसके पुत्र चिलाती हुए और उसी को राज्य भी मिला।

९. धन्यकुमार चरित्र छठा पर्व—

राजा श्रेणिक ने धन्यकुमार सेठ को वैश्य जानकर गुणवती आदि १६ कन्यायें विधि पूर्वक विवाहीं और आधा राज्य दिया।

(३-ख) विवाह युवाकाल में ही होते थे, बालविवाह नहीं होते थे।

१. उत्तर पुराण पर्व ७५—

मामा ने आज्ञा दी कि पुत्र व कन्या जब तक युवा न हो तबतक अलग रहें, विवाह न हों।

अभ्यर्णयौवने यावद्विवाह समयोभवेत्।
तावत् पृथग्वसे दस्मादिति मातुलवाक्यतः॥

२. क्षत्रचूड़ामणि लम्ब ८ श्लोक ६९—

तरुणा कन्या विमला को जीवन्धर ने विवाहा।

(४) समुद्र यात्रा जैनी करते थे।

१. उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ११२—

नागदत्त ने समुद्र यात्रा की, जहाज पर चढ़ कर पलास-द्वीप गये।

२. उत्तरपुराण पर्व ७६ श्लोक २५२—

प्रीत्यंकर जैन सेठ ने व्यापार के लिये समुद्र-यात्रा की।

३. क्षत्र चूड़ामणि लम्ब २—

श्री दत्त वैश्य ने व्यापारार्थ समुद्र यात्रा की *।

(५) उच्च वर्ण वाला खोटे आचरण से पतित हो सकता है।

उत्तरपुराण पर्व ७४—

एक श्रावक ने एक ब्राह्मण को जाति मूढ़ता व जाति मद हटाने को यह उपदेश किया कि—

तस्य पाखण्ड मौढ्यंच युक्तिभिः स निराकृतः।
गोमांस भक्षणागम्य गमाद्यैः पतिते क्षणात्॥

भावार्थ—गौ मांस खाने व वेश्यागमन करने आदि से ब्राह्मण पतित हो जाता है, ऐसा कह कर उसकी जाति मूढ़ता को युक्तियों से खण्डन किया।

---

* वर्तमान में भोजन शुद्धि, छः आवश्यकों का पालन, जिन चैत्यालय, साधुसङ्गति न होने से समुद्रयात्रा निषिद्ध है। यदि उक्त योग मिल जायँ तो कोई दोष नहीं है, किन्तु मद्य, मांस के अत्यधिक प्रचार होने पर उक्त बातें कहां से मिल सकती हैं। (सम्मति पं० माणिकचन्द जी)।

(६) मामी के पुत्र के साथ बहिन का विवाह होता था।

१. उत्तर पुराण पर्व ७५ श्लोक १०५—

स्वमातुलानी पुत्राय नन्दिग्राम निवासने ।

कुलवाणिज नाम्ने स्वामनुजा मदितादरात ॥१०५॥

२. क्षत्र चूड़ामणि १० लम्ब—

अपने मामा गोविन्दराज की कन्या विमला को जीवन्धर ने व्याहा।

(७) गर्भाधान आदि संस्कार होते थे।

उत्तर पुराण पर्व ७५ श्लोक २५०—

गन्धोत्कट सेठ जब जीवन्धर बालक को घर ले गया तब उसने अन्नप्रासन क्रिया की—

तस्यान्यदा वणिग्वर्यः कृतमङ्गलसत्क्रियः ।

अन्नप्राशन पर्यन्ते व्यधाज्जीवंधराभिधाम् ॥ २५० ॥

(८) गेंदक्रीड़ा भी की जाती थी।

उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक २६२—

जीवन्धरकुमार गेंद खेलते थे।

(९) कन्यायें अनेक विद्यायें सीखती थीं।

१. उत्तरपुराण श्लोक ३२५—

गरुड़वेग की कन्या गन्धर्वदत्ता वीणा बजाना जानती थी।

२. उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ३४९-३५७—

वैश्य वैश्रवणदत्त की कन्या सुरमञ्जरी ने चन्द्रोदय चूर्ण बनाया।

वैश्य कुमारदत्त की कन्या गुणमाला ने सूर्योदय-चूर्ण बनाया। दोनो वैद्य विद्या जानती थी।

(१०) दया का उदाहरण।

उत्तर पुराण पर्व ७५—

जीवन्धर कुमार ने मरते हुए कुत्ते पर दया कर उसे णमोकार मन्त्र दिया।

(११) पक्षी भी अक्षर स्वयं सीख लेते हैं।

उत्तर पुराण पर्व ७५ श्लोक ४५७—

गन्धोत्कट सेठ के पुत्र विद्याभ्यास करते थे, उनको देख कर कबूतर कबूतरी ने अक्षर सीख लिये।

(१२) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्ण वाले मुनि हो सकते हैं।

उत्तर पुराण पर्व ७६ श्लोक ११७—

जम्बूकुमार के साथ विद्युच्चोर और तीनो वर्ण वालों ने दीक्षा ली।

(१३) मोक्षगामी गृहस्थावस्था में आरंभी हिंसा के त्यागी नही होते।

१ उत्तरपुराण पर्व ७६ श्लोक २८८-८८—

मोक्षगामी प्रीतंकर वैश्य ने दुष्ट भीम को तलवार से मारा।

२. क्षत्रचूड़ामणि लम्ब ३ श्लोक ५१—

गन्धर्वदत्ता को वरते हुए मोक्षगामी जीवन्धर ने राजाओं से युद्ध किया।

३. क्षत्रचूड़ामणि लंब १० श्लोक ३७—

जीवंधर ने काष्टांगार को युद्ध में मारा, फिर लड़ाई बंद की, क्योंकि व्रती क्षत्री वृथा हिंसा नहीं करते। विरोधी के मरने पर पीछे नर-हत्या संकल्पी हिंसा है।

अन्य सग्राम संरंभ कौरवोऽमवारयत् ।
सुधा बधादि भीत्याहि क्षत्रिया व्रतिनोमताः ॥ ३८ ॥

४. श्रेणिकचरित्र भ० शुभचन्द्रकृत सर्ग ६—

मोक्षगामी जम्बूकुमार वैश्य ने हॅसद्वीप के राजा रत्नचूल पर चढ़कर केरल नगरी जा ८००० सेना का विध्वंस कर राजा को बांध लिया।

(१४) गृहस्थ लोग मणि व मंत्र के प्रयोगो को सीखते थे।

उत्तर पुराण पर्व ७५ श्लोक ३९८—

जीवन्धरकुमार मणि व मंत्र ज्ञान मे चतुर था।

(१५) राजग्रही का विपुलाचल पर्वत परम पवित्र है। वहां से अनेको ने मोक्ष प्राप्त की है।

१. उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ६८६-६८७—

जीवन्धर ने मोक्ष प्राप्त की।

विपुलाद्रौ हताशेप कर्मा शर्माग्र्य मेष्यति ।
दृष्टाष्ट गुण सम्पूर्णो निष्टितात्मा निरंजनः ॥ ६८७ ॥

२. उत्तर पुराण पर्व ७६ श्लोक ५१७—

गौतम स्वामी गणधर ने यहीं से मोक्ष प्राप्त की।

३. श्रेणिक चरित्र पर्व १४—

श्रेणिक पुत्र अभयकुमार ने विपुलाचल पर केवलज्ञान पाकर मोक्ष पाई।

(१६) वैराग्य होने पर राज्य व कुटुम्ब का मोह नहीं रहता है।

१. उत्तर पुराण पर्व ७६, श्लोक ८-२९—

चम्पानगरी के राजा श्वेतवाहन श्री वीर भगवान का उपदेश सुनकर वैराग्यवान हो जवान होने पर भी बालक-पुत्र विमलवाहन को राज्य दे मुनि हो केवली हो गये।

२. धन्यकुमार चरित्र ७वां पर्व—

धन्यकुमार सेठ व सालिभद्र सेठ ने जवानी में ही दीक्षा धारण की और घोर तप किया।

(१७) श्रेणिक का पुत्र कुणिक या अजातशत्रु जैनधर्म पालता था।

१. उत्तर पुराण पर्व ७६ श्लोक ४१-४२—

जब महावीर को मोक्ष और गौतम गणधर को केवलज्ञान हुआ, तब राजा कुणिक परिवार सहित पूजन करने को आया।

स्थास्याभ्येतत्समाकर्ण्य कुणिक चेलिनी युतः।
तत्पुराधिपतिः सर्व परिवार परिष्कृतः॥

२. उ० पु० पर्व ७६ श्लोक १२३—

जब जम्बुकुमार दीक्षा लेंगे, तब कुणिक राजा अभिषेक करावेगा।

(१८) पांच वर्ष पूर्ण होने पर बालक विद्या प्रारम्भ कर देता था ।

क्षत्र चूड़ामणि लम्ब १ श्लो० ११०-११२—

पांच वर्ष पूर्ण होने पर जीवन्धर कुमार ने आर्यनन्दि तपस्वी के पास सिद्ध पूजा करके विद्या प्रारम्भ की ।

(१९) अजैनो को उदारतापूर्वक जैनी बनाया जाता था ।

१. क्षत्र चूड़ामणि लम्ब ६ श्लोक ७-६—

जीवन्धर कुमार ने एक अजैन तपस्वी को जैनधर्म का उपदेश देकर जैनी बनाया ।

२. क्षत्र चूड़ामणि लम्ब ७ श्लोक २३-३०—

जीवन्धरकुमार ने एक ग़रीब भाई को जैनी बना कर आठ मूलगुण ग्रहण कराये तथा प्रसन्न हो अपने आभूषण उतार कर दे दिये ।

(२०) उस समय पांच अणुव्रत धारण व तीन मकार का त्याग, इन आठ मूल गुणों के धारण करने का प्रचार था ।

क्षत्र चूड़ामणि लम्ब ७ श्लोक २३—

अहिंसा सत्य मस्तेयं स्वस्त्री मितवसु ग्रहौ ।

मद्य, मांस, मधु त्यागैस्तेषां मूल गुणाष्टकम् ॥

(२१) स्वयंवर मे ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तीनों वर्णधारी एकत्र होते थे ।

क्षत्र चूड़ामणि लम्ब १० श्लोक २४—

गोविन्दराजा की कन्या के स्वयंवर मे तीनो वर्ण वाले आये ।

(२२) शत्रु को विजयकर फिर दया व नीति से व्यव-हार होता था।

१. क्षत्र चूड़ामणि लम्ब १०, श्लोक ५५-५७—

जीवन्धर ने काष्टांगार को मार कर फिर उसके कुटुम्ब को सुख से रखा तथा १२ वर्ष तक प्रजा पर कर माफ कर दिया।

"अकरामकरोदात्रीं वर्षाणि द्वादशाप्ययम"

२. श्रेणिक चरित्र सर्ग २—

राजा उपश्रेणिक ने चंद्रपुर के राजा सोमशर्मा को उद्दण्ड जान वश किया, फिर उसका राज्य उसे ही दे दिया।

(२३) लोग समय विभाग के अनुसार सर्व काम करते थे।

क्षत्र चूड़ामणि लम्ब ११—

जीवन्धरकुमार रात दिन का समय-विभाग करके धर्म, अर्थ, काम का साधन करते थे।

'रात्रिं दिव विभागेषु नियतो नियतिं व्यधात्।
कालातिपात मात्रेण कर्तव्यं हि विनश्यति ॥ ७ ॥'

भावार्थ—जो काल को लांघ कर काम करते हैं, उनका करने योग्य काम नष्ट हो जाता है।

(२४) शुद्ध भोजन राजा लोग करते थे।

श्रेणिक चरित्र सर्ग २—

भील राजा क्षत्रिय यमदण्ड ने उपश्रेणिक को भोजन के लिए कहा। तब उसके गृहस्थाचार की क्रिया शुद्ध न देख कर

भोजन न किया। जब तिलकवती कन्या ने शुद्ध रसोई बनाई, तब राजा ने भोजन किया।

(२५) पिता के लिए पुत्र का उद्यम।

श्रेणिक चरित्र सर्ग ८—

सिन्धुदेश विशालानगर के राजा चेटक के चेलना कन्या थी। वह सिवाय जैनी के दूसरे को नहीं विवाहता था। उस समय राजा श्रेणिक बौद्ध थे तथा उस कन्या के विवाहने की चिन्ता में थे। तब पिता-भक्त पुत्र अभयकुमार जैनी बन, कई सेठों को साथ ले, अनेक स्थानों में जैनपना प्रकट करते हुए चेलना को रथ में बिठा ले आये।

(२६) नियमपूर्वक व्रती न होने पर भी गृहस्थी देवपूजा आदि छः कर्म पालते थे।

श्रेणिक चरित्र सर्ग १३—

राजा श्रेणिक व्रती न होकर भी नित्य छः आवश्यक पालन करते थे।

(२७) गृहस्थ राजा लोग भी श्रावक की क्रियाओं को पालते थे।

धन्यकुमार चरित्र सकलकीर्ति कृत अ० १—

उज्जयनी का राजा अवनिपाल बड़ा धर्मात्मा था। प्रातः काल उठ सामायिक, ध्यान, फिर पूजन, मध्यान्ह में पात्र-दान करके भोजन, पर्व तिथि में उपवास करता था। बड़ा निस्पृही था। भूमि में सेठ धनपाल को जो धन मिला था वह उसे ही दे दिया था।

(२८) जैन किसान थे तथा वे त्यागी थे।

धन्यकुमार चरित्र अ० २—

जैनी कृषक का भोजन करके धन्यकुमार सेठ हल चलाने लगा। वहां सुवर्ण भरा कलश मिला। धन्य कुमार ने वह धन स्वयं न लिया, कृषक ने भी ग्रहण न किया। वादानुवाद के पीछे धन्यकुमार धन वहीं छोड़ कर चले गये।

(२९) ग्रह की स्त्रियों में भी नीति से वर्तन का प्रचार था।

धन्यकुमार चरित्र अ० ४—

अकृतपुण्य की माता बलभद्र के पुत्रों को खीर बनाकर खिलाती थी, परन्तु अपने पुत्र को बिना अपने स्वामी बलभद्र की आज्ञा के ज़रा सी भी खीर नहीं देती थी।

(३०) वैश्यो में इतनी चतुरता थी कि थोड़ी पून्जी से अधिक धन कमा सकते थे।

धन्यकुमार चरित्र अ० ६—

राजगृह के श्री कीर्ति सेठ ने यह प्रसिद्ध किया कि जो वैश्य २ दमड़ी से १००० दीनार कमावेंगा, उसे अपनी कन्या विवाहूंगा। धन्यकुमार ने फूल की माला बना कर श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार को १००० दीनार में बेच दी।

(३१) ग़रीब पिता व भाईयों का भी सम्मान करते थे।

धन्यकुमार चरित्र अ० ६—

धन्यकुमार सेठ जब श्रेणिक से सम्मानित हो राजा हो गए, तब उनके पिता व सातो भाई उज्जैनी से निर्धन स्थिति

में आए । सबका धन्यकुमार ने बहुत सम्मान किया व धनादि दिया । इन ही भाइयों ने द्वेष कर धन्यकुमार को वापी में पटक दिया था, परन्तु धन्यकुमार ने उस बात को भुला दिया ।

(३२) पक्षियों द्वारा सन्देश भेजा जाता था ।

क्षत्र चूड़ामणि लम्ब ३ श्लोक १३८-४२—

जीवन्धर ने एक तोते के द्वारा गुणमाला को पत्र भेजा था ।

(३३) धर्म कार्य करके विशेष लौकिक काम को करते थे ।

क्षत्र चूड़ामणि लम्ब १०—

जीवन्धर कुमार पात्र दान देकर फिर काष्ठांगार पर युद्ध को चढ़े ।

(३४) वैश्यों का पुत्रों के साथ व्यवहार ।

धन्यकुमार चरित्र अ० १—

धनपाल सेठ ने धन्यकुमार को विद्या, कला, विज्ञान जवान होने तक सिखाया । धन्यकुमार नित्य पूजा व दान करता था । पिता धन्यकुमार को कहता था कि प्रातःकाल धर्म क्रियाओं को करके जब तक भोजन का समय न हो व्यापार करना चाहिए । अभी तक विवाह का नाम भी न था ।

८७. श्री महावीर स्वामी के पीछे भारत में जैन राजाओं का राज्य ।

जैसे महावीर स्वामी के समय मे उनके पूर्व अनेक जैन राजा राज्य करते थे, वैसे ही उनके पीछे भी बहुत काल तक भारत

में जैन राजाओं ने राज्य किया है। उनमें के कुछ प्रसिद्ध राजाओं का यहां दिग्दर्शन मात्र कराया जाता है :—

महाराजा चन्द्रगुप्त मौर्य जैन सम्राट् थे—

इनका राज्य भारतव्यापी व बहुत परोपकार पूर्ण था। यह श्री भद्रबाहु श्रुतकेवली के शिष्य मुनि होकर दक्षिण कर्नाटक में गये और श्रवण बेलगोल (मैसूर स्टेट) में गुरु की अन्त समय सेवा की, यह बात वहां पर अङ्कित शिलालेख से भली प्रकार प्रगट है। वहाँ चन्द्रगिरि पर्वत पर चन्द्रगुप्त बस्ती नाम का जिनमन्दिर भी है। इनका पोता राजा अशोक भी अपने राज्य के २६ वर्ष तक जैनधर्म का मानने वाला था। पीछे बौद्ध मत धारी हुआ है।

देहली में जो स्तम्भ है उसके लेखों में जैनधर्म की शिक्षा झलक रही है। कल्हण कविकृत राज तरङ्गिणी में लिखा है कि अशोक ने काश्मीर में जैनधर्म का प्रचार किया था। राजा अशोक का पोता सम्प्रति भी जैनी था, जिसका दूसरा नाम दशरथ था।

उड़ीसा व कलिंग देश में जैनधर्म का राज्य बराबर चला आता था। खण्डगिरि की हाथी गुफा का लेख जो सन् ई० से पूर्व दूसरी शताब्दि का है, जैन राजा खारवेल या भिक्षु राजा या मेघवाहन का जीवनचरित्र इसमें अङ्कित है। उड़ीसा देश में जैनधर्म के राजा १२ वीं शताब्दि तक होते रहे है।

दक्षिण उत्तर कनाडा में कादम्बवंश जैनधर्म का मानने

वाला था, जो दीर्घकाल से छठी शताब्दि तक राज्य करता रहा, जिसकी राजधानी बनवासी थी। उत्तर कनाडा में भटकल और जरसप्पा मे जैन राजाओं ने १७ वीं शताब्दि तक राज्य किया है। सन् १४५० में चन्नभैरवदेवी जैन रानी का राज्य था। जिसने भटकल के दक्षिण पश्चिम एक पाषाण का पुल बनवाया था। १७ वीं शताब्दि के पूर्व जरसप्पा मे भैरवदेवी का राज्य था। गुजरात से सूरत शहर के पास रादेर मे जैन राजा दीर्घकाल से १३ वी शताब्दि तक राज्य करते थे, तब वहाँ अरब लोगो ने जैनियों को भगाकर अपना राज्य स्थापित किया।

दक्षिण व गुज़रात में राष्ट्रकूट वंश ने राज्य किया है, उसमें अनेक राजा जैनधर्म के अनुयायी थे। उनमे अति प्रसिद्ध राजा अमोघवर्ष हुए हैं, जो श्री ज़िनसेनाचार्य के शिष्य थे व अन्त में त्यागी हो गये थे। यह आठवी शताब्दि मे हुए हैं। इन्होंने संस्कृत व कनड़ी में अनेक जैनग्रन्थ बनाये हैं। संस्कृत में प्रश्नोत्तरमाला व कनड़ी में कविराज मार्ग कनड़ीकाव्य प्रसिद्ध है। इसकी राजधानी हैदराबाद स्टेट में मलखण्ड या मान्यखेट थी, जहाँ प्राचीन जिनमन्दिर अब भी पाया जाता है व कई मंदिर क़िले में दबे पड़े हैं।

बम्बई के बेलगाम ज़िले में राष्ट्र वंश ने ८ वीं शताब्दि से १३ वीं शताब्दि तक राज्य किया है, जिसके राजा प्रायः सर्व जैनधर्म के मानने वाले थे।

वहाँ के शिलालेखों से उनका जैनमंदिरों का बनवाना

प्रसिद्ध है। उनमें पहला राजा मेरड़ व उसका पुत्र पृथ्वीवर्मा था। सौदन्ती में राजा शान्ति वर्मा ने सन् ६८० में जैन मन्दिर बनवाया था। बेलगाम का क़िला व उसके सुन्दर पाषाण के मंदिर जैन राजाओं के बनवाये हुए हैं और लक्ष्मी देव मल्लिकार्जुन अंतिम राजा हुए हैं। धाड़वाड़ जिले में गङ्ग वंश के अनेक जैन राजा नौवीं दसवीं शताब्दि में राज्य करते थे। चालुक्य तथा पल्लववंश के भी अनेक राजा जैनी थे।

बुन्देलखण्ड में जबलपुर के पास त्रिपुरा राज्यधानी रखने वाले हैहय वंशी कालाचार्य या कलचूरी या चेदी वंश के राजा लोग सन् ई० २४९ से १२ वीं शताब्दि तक राज्य करते रहे। दक्षिण में भी इनका राज्य फैला था।

इस वंश के राजा प्रायः जैनधर्म के मानने वाले थे। मध्य-प्रांत में अब भी एक जाति लाखों की संख्या में पाई जाती है, जिनको जैन कलवार कहते हैं। ये हैहयवंशी या कलचूरी वंशी प्राचीन जैन हैं। (देखो सी. पी. सेन्सस रिपोर्ट सफा २३०)

गुजरात में अनहिलवाड़ा पाटन प्रसिद्ध जैनराजाओं का स्थान रहा है। पाटन का संस्थापक राजा वनराज जैनधर्मी था। इसने सन् ७८० तक वहां राज्य किया। इसका वंश चावड़ा था, जिसने सन् ९५६ तक राज्य किया। फिर चालुक्य या सोलंकी वंश ने सन् १२४२ तक राज्य किया। प्रसिद्ध जैनराजा मूलराज, सिद्धराज व कुमारपाल हुए हैं।

८८. जगत की रचना

क्योंकि जगत् छः द्रव्यों का समुदाय है और सर्व द्रव्य सत् रूप नित्य हैं, इससे जगत् सत् रूप नित्य है। क्योंकि सर्व ही द्रव्य जगत में काम करते हुए बदलते रहते हैं व परिवर्तित होते रहते हैं, इससे यह जगत भी परिवर्तनशील अर्थात् अनित्य है। इस नित्यानित्यात्मक जगत् की रचना को जैन आगम किस तरह बताता है, इस बात का जानना हर एक जैनधर्म के जिज्ञासु को आवश्यक होगा। इसलिए हम इस प्रकरण में वह वर्णन संक्षेप मे करेंगे।

वर्तमान भूगोल की समालोचना करके जैन आगम मे कहे हुए भूगोल वर्णन के सिद्ध करने का प्रयास पूर्ण सामग्री व पूर्ण पर्याप्त ज्ञान के अभाव से हम नहीं कर सकते। इतना अवश्य जानना चाहिये कि जगत मे ऐसा परिवर्तन हज़ारो लाखों वर्ष में हो जाता है कि जहां भूमि है वहां पानी आ जाता है व जहां पानी है वहाँ भूमि बन जाती है।

वर्तमान प्रचलित भूगोल देखी हुई ज़मीन का है। जैन जगत् की रचना का वर्णन सदा स्थिर रचना (जो कहीं कहीं बदलते रहने पर भी अपनी मूल स्थिति को नहीं बदलती है) को मात्र बतलाने वाला है तथा जो वर्तमान भूगोल है वह बहुत थोड़ा है और जैन भूगोल बहुत बड़ा है।

पाश्चिमात्य विद्वान खोज कर रहे हैं। संभव है अधिक भूमि का पता लग जावे। इसलिये पाठकों को उचित है कि

जैन जगत् की रचना के ज्ञान को प्राप्त करके उसके प्रमाणभूत होने के लिये भूगोलवेत्ताओं की खोज की राह देखें। जैनशास्त्रों मे सजीव वृक्ष, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि में जीवपना बतलाया है। सायंस (विज्ञान) ने पृथ्वी व वृक्ष में जीव है यह बात तो सिद्ध कर ही दी है, संभव है शेष तीन में भी जीवपना कालांतर में सिद्ध हो जाय। इसी तरह भूगोल की रचना के सम्बन्ध में भी संतोष रखना चाहिये।

यह जगत् आकाश, काल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पुद्‌गल और जीव इन छः द्रव्यों का समुदाय है। इनमें क्षेत्र की अपेक्षा आकाश सबसे बड़ा है, अनन्त है, मर्यादारहित है। उसके मध्य में जितनी दूर तक आकाश में शेष जीवादि पांच द्रव्य पाए जाते हैं उस क्षेत्र को लोक (Universe) कहते हैं, तथा उतने आकाश के विभाग को लोकाकाश कहते हैं, शेष खाली आकाश को अलोकाकाश कहते हैं।

इस लोक की लम्बाई चौड़ाई, ऊंचाई व आकार इसी तरह का जानना चाहिये जैसा कि सामने दिया है। यह लोक डेढ़ मृदंग के आकार है। आधे मृदंग के ऊपर सारा मृदंग रख देने से लोक का आकार बन जाता है। अथवा एक पुरुष पैरों को फैलाकर व दोनों हाथों को कमर में बांका करके लगा लेवे, उसके आकार के समान लोक का आकार है। एक राजू माप है, जो असंख्यात योजन की समझनी चाहिये। यह लोक पूर्व से पश्चिम नीचे सात राजू चौड़ा है।

नक्शा जम्बूद्वीप
लवण
समुद्र
विजयार्द्ध
ऐरावत
क्षेत्र
पुण्डरीक
शिखरी
सुवर्णकूला नदी
हैरण्यवत क्षेत्र
रूप्यकूला नदी
महापुण्डरीक
रुक्मी पर्वत
नारी नदी
नरकान्ता नदी
रम्यक क्षेत्र
केशर
नील पर्वत
उत्तर
कुरुक्षेत्र
मेरु
सीता नदी
सीतोदा नदी
देव
कुरुक्षेत्र
तिगंछ
निषध पर्वत
हरिवर्ष क्षेत्र
हरित नदी
हरिकान्ता नदी
महापद्म
महाहिमवन् पर्वत
हैमवत क्षेत्र
रोहित नदी
रोहितास्या नदी
पद्म
हिमवन् पर्वत
भरत
क्षेत्र
विजयार्द्ध
आर्य खण्ड
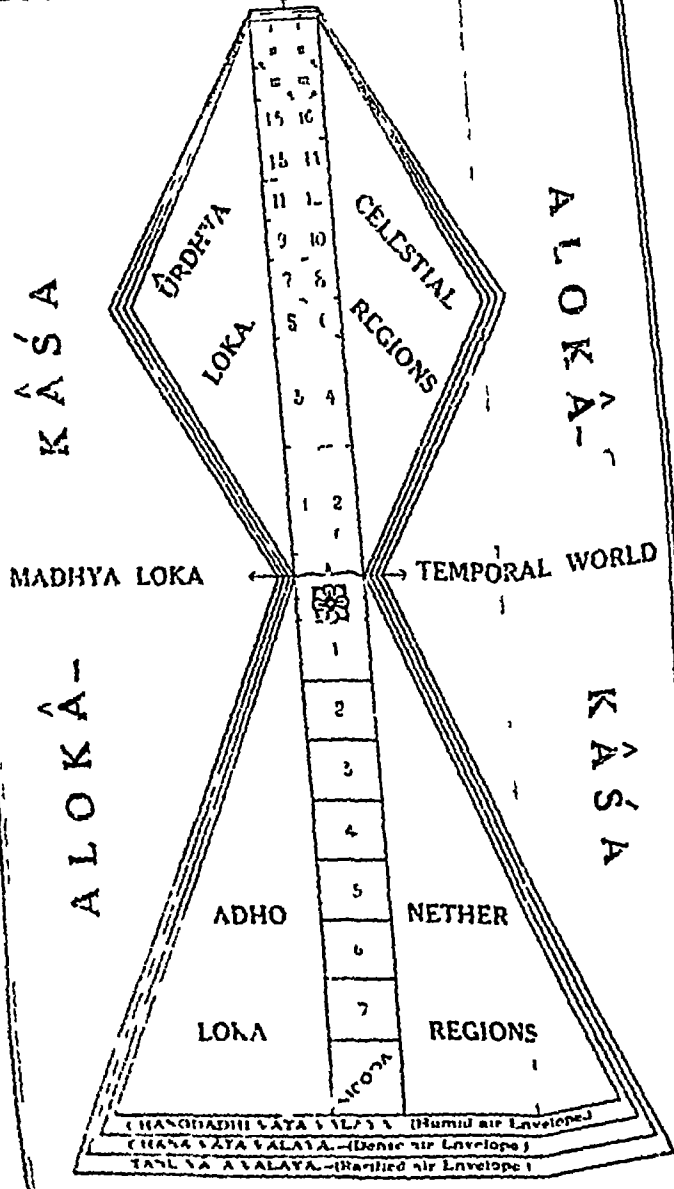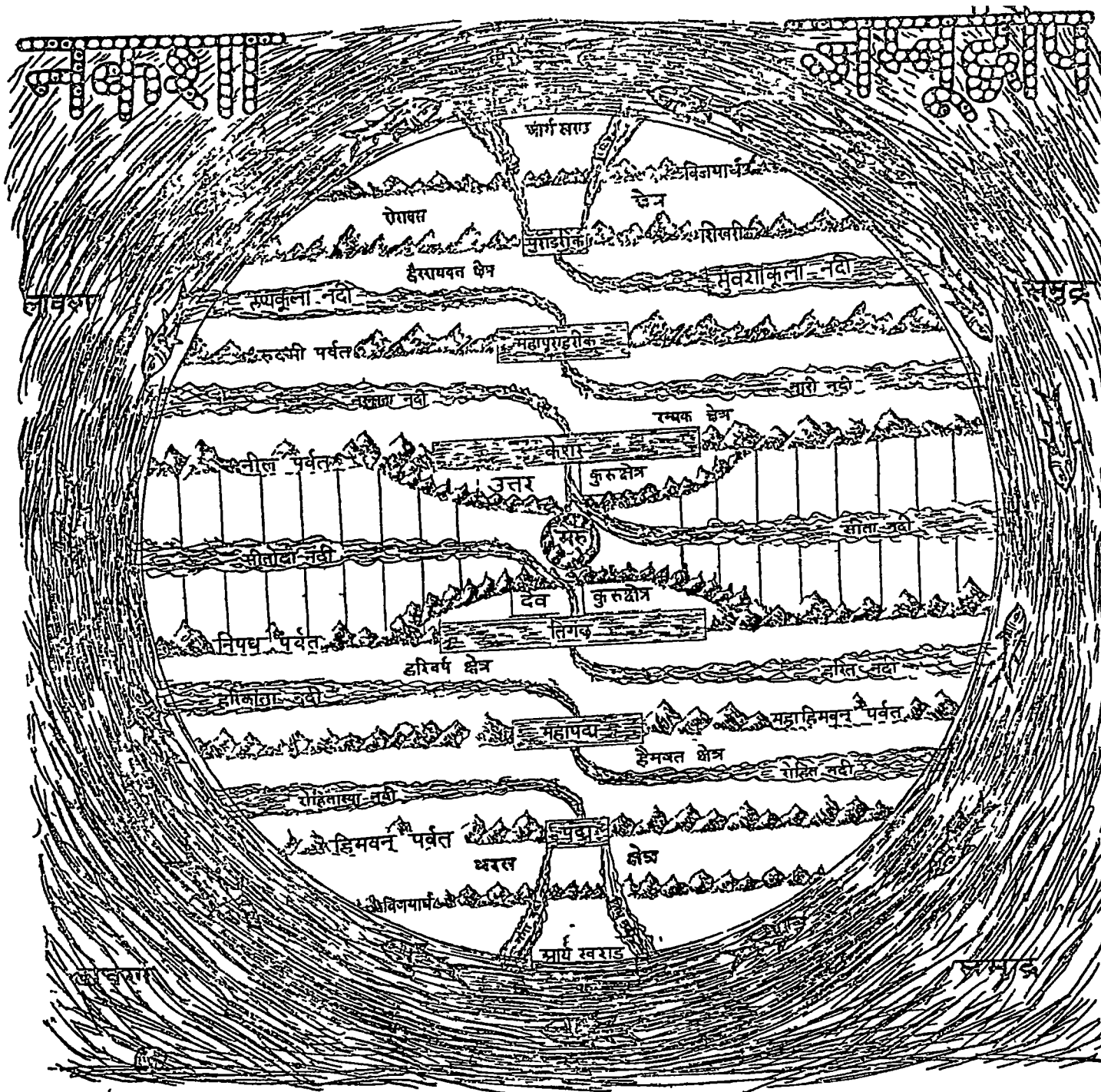
फिर घटते हुये ऊपर को मध्य में एक राजू चौड़ा है। फिर ऊपर को बढ़ता हुआ शेष आधे के आधे में पांच राजू चौड़ा है। फिर घटते हुए अन्त मे ऊपर को एक राजू चौड़ा है। दक्षिण उत्तर बराबर सात राजू लम्बा है। ऊंचाई इस लोक की चौदह राजू है। इसका घनक्षेत्रफल सर्व ३४३ (तीनसोतैंतालीस) घनराजू प्रमाण है। इसका हिसाब इस तरह है—

$$\frac{७+१}{२}\times७\times७=\frac{८\times७\times७}{२}=१९६ \text{ घनराजू}$$

शेष आधे के आधे का घनफल यह है :—

$$\frac{१+५}{२}\times\frac{७}{२}\times७=\frac{६\times७\times७}{४}=\frac{१४७}{२}$$

शेष ऊपर का आधा भी $\frac{१४७}{२}$ है।

$$१९६+\frac{१४७}{२}+\frac{१४७}{२}=३४३ \text{ घनराजू हुआ।}$$

इस लोक में ८ पृथ्वियां हैं। सात नीचे हैं। उनके नाम मध्यलोक से पाताल तक रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा, महातमप्रभा हैं। ये एक दूसरे से कुछ कम एक एक राजू के अन्तर पर हैं तथा पूर्व पश्चिम लोक के एक ओर से दूसरी ओर तक चली गई हैं। इनकी मोटाई इन्हीं राजू में गर्भित है।

सातवीं पृथ्वी के नीचे एक राजूस्थान और है। इसको प्राग्भारा कहते हैं। फिर लोक का अन्त है।

एक पृथ्वी ऊर्ध्व लोक के अन्त में है।

इस लोक को तीन तरह की पवन वेढ़े हुये है। पहिले घनोदधि पवन गाय के मूत्र समान वर्णवाली है। उसके ऊपर घनवात मूंग अन्न वर्णवाली है, फिर उसके ऊपर तनुवात है, उसका वर्ण अव्यक्त है। इसके ऊपर मात्र आकाश है।

यह तीन तरह की पवन आठों पृथ्वियों के भी हर एक के नीचे है। इनकी मोटाई लोक के नीचे तथा ऊपर एक राजू तक की ऊंचाई तक, नीचे व बग़ल में हर एक पवन २०००० (बीस हज़ार) योजन मोटी है। फिर एक दम घट कर सातवीं पृथ्वी के पास क्रम से सात, पांच तथा चार योजन क्रम से मोटी है। फिर क्रम से घटते हुए पहली पृथ्वी के पास पाँच, चार, तीन योजन क्रम से मुटाई है। यहां तक सात राजू की ऊंचाई हो गई, फिर क्रम से बढ़ते हुये ३॥ राजू ऊंचा जाकर पांचवें स्वर्ग के पास सात, पांच, चार योजन मुटाई, फिर घटते हुये आठवीं पृथ्वी के पास पांच, चार, तीन योजन की मुटाई है।

लोक के ऊपर दो कोस घनोदधि, १ कोस घनवात तथा ४२५ धनुष कम १ कोस अर्थात् १५७५ धनुष तनुवात मोटी है।

यह गणना प्रमाणांगुल से है, जो साधारण उत्सेधांगुल से ५०० (पांच सौ) गुणा है। आठ आड़े जौ का एक अङ्गुल (उत्सेध अङ्गुल), २४ अङ्गुल का एक हाथ, ४ हाथ का एक धनुष, २००० धनुष का एक कोस, ४ कोस का एक योजन छोटा। इससे ५०० गुना बड़ा योजन होता है।

यहां जो कोस कहा है वह ५०० कोस के बराबर है व जो धनुष कहा है वह ५०० धनुष के बराबर है।

इस लोक के मध्य में नाली के समान एक राजू लम्बा चौड़ा व चौदह राजू ऊंचा जो क्षेत्र है उसको त्रसनाली कहते हैं, क्योंकि द्वीन्द्रियादि त्रसजीव इसके भीतर ही जन्मते हैं, इसके बाहर नहीं जन्मते, जब कि स्थावर जीव सर्व स्थानों में जन्मते व मरते हैं।

मनुष्य, पशु, नारकी और देव चारों गति के त्रसजीव इतने ही क्षेत्र में पाये जाते हैं। इसके बाद तीन सौ उनतीस (३२९) घनराजू में नहीं पाए जाते। त्रसनाली का क्षेत्रफल १४ राजू है। अतः तीन सौ तेतालीस में से १४ घटाने पर ३२९ घनराजू में केवल स्थावर पाए जाते हैं।

अधोलोक का वर्णन—नीचे की सात पृथ्वियों के नाम, ऊपर से नीचे तक क्रम से धम्मा, वंशा, मेघा, अञ्जना, अरिष्टा, मघवी तथा माघवी भी प्रसिद्ध हैं। इनकी हर एक की मुटाई क्रम से एक लाख अस्सी हज़ार (१८००००), बत्तीस हज़ार (३२०००), अट्ठाईस हज़ार (२८०००), चौबीस हज़ार (२४०००), बीस हज़ार (२००००), सोलह हज़ार (१६०००), आठ हज़ार (८०००) योजन है।

पहली पृथ्वी के निम्न तीन भाग हैं—

१. खरभाग—जो १६००० योजन मोटा है।

२. पंकभाग—जो ८४००० योजन मोटा है।

३. अब्बहुलभाग—जो ८००० योजन मोटा है।

खरभाग में भी एक २ हज़ार मोटी १६ पृथ्वियों के भाग हैं, पहले भाग को 'चित्रा' पृथ्वी व अन्त के भाग को 'शैला' पृथ्वी कहते है।

खरभाग व पंकभाग में देव रहते हैं। अब्बहुलभाग में पहला नर्क है। आगे को छः पृथ्वियों में छः नर्क और हैं। इन सात नर्कों में नारकियों के उपजने व रहने योग्य क्षेत्रों को बिले कहते हैं। वे कोई संख्यात कोई असंख्यात योजन चौड़े हैं। सातों नरकों में कुल ८४ (चौरासी) लाख बिले नीचे प्रमाण है.—

पहला नर्क—३० लाख
दूसरा नर्क—२५ लाख
तीसरा नर्क—१५ लाख
चौथा नर्क—१० लाख
पाँचवां नर्क—३ लाख
छठा नर्क—५ कम एक लाख
सातवां नर्क—केवल पाँच

पहली पृथ्वी से पांचवीं के ३ चौथाई भाग तक बहुत उष्णता है, फिर सातवी तक बहुत शीत है। जो प्राणी अत्यन्त परिग्रह में मोही, अन्यायकर्त्ता व हिंसक हैं, वे इन नरकों में जाकर अन्तर्मुहूर्त के भीतर पैदा हो जाते हैं। इन का शरीर वैक्रियिक होता है, जिसमें बदलने की शक्ति है। इनके उपजने

के स्थान ऊँट आदि के मुख के सदृश छत में छींके के समान होते हैं। वहां से गिर कर गेंद के समान उछलते हैं। इन का शरीर पारे के समान होता है जो टुकड़े २ होने पर फिर मिल जाता है। इन नारकियों के अत्यन्त क्रोध होता है, परस्पर एक दूसरे को कष्ट देते हैं। आपही कभी सिंह, नाग आदि रूप धर लेते हैं, स्वयं ही शस्त्र रूप होकर मारते हैं। उनको भूख, प्यास बहुत लगती है। वे वहां की दुर्गंधित मिट्टी को खाते व वैतरणी नदी का खारी पानी पीते हैं, परन्तु भूख प्यास मिटती नहीं हैं।

ये नारकी दुःख सहते और बिना आयु पूरी हुए मर नहीं सकते हैं। इनकी उत्कृष्ट आयु क्रम से एक, तीन, सात, दश, सत्रह, बाईस व तेतीस सागर है। जघन्य आयु पहले नर्क में दश हजार वर्ष हैं। पहले नर्क में जो उत्कृष्ट है, वह दूसरे मे जघन्य है। तीसरे नर्क तक असुर कुमार देव भी जाकर नारकियों को लड़ाते हैं।

इनके शरीर की ऊंचाई पहले नर्क में कम से कम तीन हाथ व अधिक से अधिक ७ धनुष, ३ हाथ ६ अंगुल है। आगे के नरकों में इसकी दूनी २ ऊंचाई अर्थात् १५ धनुष, २ हाथ १२ अंगुल, ३१ धनुप १ हाथ, ६२॥ धनुप, १२५ धनुष, २५० धनुष तथा ५०० धनुप है।

खरभाग पङ्कभाग में भवनवासी देवों के सात करोड़ बहत्तर लाख भवन हैं। उन हर एक में एक एक जिन मन्दिर है। ये भवनवासी निम्न दश जातियों के होते हैं :—

असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार, दिक्कुमार, अग्निकुमार और वातकुमार।

नारकियों के देह भी मनुष्य के समान होते हैं, परन्तु भयावने व कुरूप होते हैं तथा देवों के शरीर भी मनुष्य समान होते है, परन्तु वैक्रियिक बड़े सुन्दर होते हैं। इन में से केवल असुरकुमार पङ्कभाग में रहते है।

व्यन्तरजाति के देव आठ प्रकार के होते हैं—

किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच। इन में राक्षस जाति के देव पङ्क भाग में रहते है, शेष खरभाग में रहते हैं। बहुत से व्यन्तर मध्यलोक में भी रहते हैं। इन दोनों की जघन्य आयु दश हजार वर्ष की है तथा उत्कृष्ट आयु भवनवासी देवों की एक सागर व व्यन्तरों की एक पल्य होती है।

इन्हीं दश प्रकार भवनवासी व आठ प्रकार व्यन्तरों में दो दो इन्द्र व दो दो प्रतीन्द्र होते हैं, जो राजा के समान हैं। इसी तरह ४० इन्द्र भवनवासी के व ३२ इन्द्र व्यन्तरों के जानने चाहियें। भवनवासियों में असुरकुमारों का शरीर पचीस धनुष, शेष का दश धनुष ऊंचा होता है।

व्यन्तर देवों का शरीर भी दश धनुष ऊँचा होता है।

मध्यलोक

पहली रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग की पहली पृथ्वी चित्रा है। यह एक राजू लम्बा चौड़ा क्षेत्र है—इसमें अनेक महा द्वीप और समुद्र हैं। मुख्य महाद्वीपों और समुद्रो के नाम हैं— जम्बूद्वीप, लवणोदधि, धातुकी द्वीप, कालोदधि, पुष्करवरद्वीप व समुद्र, वारुणीवर द्वीप व समुद्र, क्षीरवर द्वीप व समुद्र, घृतवर द्वीप व समुद्र, क्षौद्रवर द्वीप व समुद्र, नंदीश्वर द्वीप व समुद्र, अरुणवर द्वीप व समुद्र, अरुणाभासवर द्वीप व समुद्र, कुण्डलवर द्वीप व समुद्र, शङ्खवर द्वीप व समुद्र, रुचिकवर द्वीप व समुद्र, भुजगवर द्वीप व समुद्र, कुशागवर द्वीप व समुद्र, क्रौंचवर द्वीप व समुद्र, स्वयंभूरमण द्वीप व समुद्र।

जम्बूद्वीप में सात क्षेत्र हैं—भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत, ऐरावत।

जम्बूद्वीप में छः महापर्वत हैं जो इन क्षेत्रों को अलग २ करने वाले हैं—हिमवन, महाहिमवन, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी। इनके वर्ण क्रम से सुवर्ण, चांदी, ताया हुआ सोना, नीलरत्न, चांदी व सोने के समान हैं।

इन सात क्षेत्रों में जो विदेहक्षेत्र है, उसके मध्य में बहुत ऊँचा व सुन्दर सुदर्शन मेरु है—यह मध्यलोक के मध्य में है। इसके ऊपर पाँडुक वन है। उसमें पांडुक शिला है, जिस पर जन्म लेने वाले तीर्थंकरों का अभिषेक इन्द्रादि देव करते हैं।

छः पर्वतों पर छः महाद्रह हैं—पद्म, महापद्म, तिगंछ,

केशर, महापुण्डरीक, पुण्डरीक। इनसे चौदह महानदियां निकली हैं, जो पर्वत से गिर कर क्रमशः दो दो नदियां सातों क्षेत्रों में क्रम से बहती हैं—महागंगा, महासिंधु, रोहित, रोहितास्या, हरित्, हरिकांता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकांता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता, रक्तोदा।

इस मध्यलोक में दो प्रकार की व्यवस्था है—कहीं कर्मभूमि है, कहीं भोगभूमि है। जहां असि, मसि, कृषि, वाणिज्य आदि कर्मों से परिश्रम करके उदर पोषण किया जावे, वह कर्म, भूमि है और जहां कल्पवृक्षादिकों से भोग्य-पदार्थ प्राप्त हो सकें व स्त्री पुरुष का युगल साथ पैदा हो, वह युगल एक दूसरे युगल को उत्पन्न करके साथ ही मरे, उसे भोग भूमि कहते है।

जम्बूद्वीप के भरत और ऐरावत क्षेत्र में तथा विदेह क्षेत्र मे कर्मभूमि है। शेष चार क्षेत्रों मे भोगभूमि है।

इन तीनो कर्मभूमि के क्षेत्रों में आर्य-खण्ड और म्लेच्छ खण्ड हैं। जिस क्षेत्र के रहने वाले किसी धर्म पर विश्वास रखते हैं उसे आर्य-खण्ड कहते हैं व जिस क्षेत्र के रहने वाले धर्म का बिलकुल भी विचार नहीं करते हैं, परलोक, पुण्य, पाप व परमात्मा आत्मा आदि को कुछ भी नहीं समझते हैं—केवल शरीर में या इंद्रियें हैं उनकी इच्छानुसार भोग विलास करने में व भोगों के लिये सामग्री एकत्र करने में लीन रहते हैं, वह क्षेत्र म्लेच्छ खण्ड कहलाता है। भरत व ऐरावत

हर एक में एक एक आर्य खण्ड व पांच २ म्लेच्छ खण्ड हैं। विदेह में ३२ आर्य खण्ड व १६० म्लेच्छ खण्ड हैं।

ज्योतिषी देव

सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र व तारे ऐसे पांच तरह के होते हैं—ये सब मध्यलोक में ऊपर को तरफ हैं—ज्योतिषी देवों का शरीर सात धनुष ऊँचा होता है व आयु उत्कृष्ट १ पल्य व जघन्य-पल्य का आठवां भाग है। इनके विमान सदा बने रहते हैं। उनमें देव पैदा होते हैं व मरते हैं। इनके विमानों में, तथा भवनवासी, व्यंतर तथा ऊर्ध्वलोक में रहने वाले कल्पवासी देवों के विमानों में जिन मन्दिर हैं।

ऊर्ध्व लोक का वर्णन

मेरु के तले तक नीचे से ७ राजू ऊंचा है, फिर मेरु के तले से ऊपर तक सात राजू ऊंचा है। मेरु तल से डेढ़ राजू तक सौधर्म ईशान स्वर्गों के विमान हैं। उसके ऊपर १॥ राजू में सनत्कुमार महेन्द्र स्वर्ग हैं। फिर आधे आधे राजू में ६ युगल अर्थात् ब्रह्म ब्रह्मोत्तर, लांतव कापिष्ट, शुक्र महाशुक्र, सतार सहस्रार, आनत प्राणत, आरण अच्युत स्वर्ग हैं। ऐसे ६ राजू में १६ स्वर्ग हैं। फिर एक राजू में ९ ग्रैवेयक, ९ अनुदिश व पांच अनुत्तर विमान और सिद्धक्षेत्र हैं।

(नक़शा देखो)

१६ स्वर्गों में १२ कल्पवासी देव हैं। इन स्वर्गों में

इंद्रादि १० पदवियां हैं। इनमें १२ इन्द्र होते हैं अर्थात् पहले चार स्वर्गों के चार इन्द्र, बीच के ८ के ४ और अंत के चार के चार इन्द्र होते हैं। सोलह स्वर्ग के ऊपर २३ विमानों में अहमिन्द्र होते हैं। वे अपने विमान मे सब बराबर के होते हैं।

पांच अनुत्तर के नाम ये हैं—विजय, वैंजयन्त, जयन्त, अपराजित, सर्वार्थसिद्धि।

इनमें सर्व विमानो की संख्या इस तरह पर है:—

१ स्वर्ग मे	३२ लाख
२ "	२८ लाख
३ "	१२ लाख
४ "	८ लाख
५-६ "	४ लाख
७-८ "	५० हज़ार
९-१० "	४० हज़ार
११-१२ "	६ हज़ार
१३-१६ "	७००
३ अधो ग्रैवेयक में	१११
३ मध्य "	१०७
३ ऊर्ध्व ग्रैवेयक मे	९१
९ अनुदिश मे	९
५ अनुत्तर में	५

कुल विमान—८४९७०२३ हर एकमें एक २ जिन मंदिर है।

इनकी आयु नीचे प्रमाण है :—

१–२ स्वर्ग में	उत्कृष्ट आयु		२ सागर
३–४	”	”	७ सागर
५–६	”	”	१० ”
७–८	”	”	१४ ”
९–१०	”	”	१६ ”
११–१२	”	”	१८ ”
१३–१४	”	”	२० ”
१५–१६	”	”	२२ ”

नौ ग्रैवेयक में क्रम से २३ से ३१ सागर तक।

नौ अनुदिश में ३२ सागर

पांच अनुत्तर में ३३ सागर

पहिले दूसरे स्वर्ग में जघन्य आयु १ पल्य है। पहिले युगल स्वर्ग में जो उत्कृष्ट आयु है, वही दूसरे युगल स्वर्ग में जघन्य है। इसी तरह आगे हैं। सर्वार्थसिद्धि में ३३ सागर से कम आयु नहीं है।

इनका शरीर बहुत सुन्दर वैक्रियिक होता है। ऊँचाई नीचे प्रमाण है :—

१—२ स्वर्ग में	७॥ हाथ की
३—४ ”	६ हाथ की
५—८ स्वर्ग में	५ हाथ की

९-१० स्वर्ग में	४ हाथ की
११-१२ ”	३।। हाथ की
१३-१६ ”	३ हाथ की
३ अधो ग्रैवेयक में	२।। हाथ की
३ मध्य ग्रैवेयक में	२ हाथ की
३ ऊर्ध्व ग्रैवेयक में	१।। हाथ की
९ अनुदिश, ५ अनुत्तर में	१ हाथ की

स्वर्गों मे देवियों की जघन्य आयु एक पल्य से कुछ अधिक व उत्कृष्ट ५५ पल्य है।

स्वर्ग के देवों में तथा व्यन्तर, भवन व ज्योतिषियों में नीचे ऊँचे पद के भी धारी होते हैं। वे पदवियाँ निम्न दश हैं:—

१. इन्द्र—राजा के समान, २. सामानिक—पिता व भाई समान, ३. त्रायस्त्रिंश—मन्त्री के समान, ४. पारिषद्—सभासद समान, ५. आत्मरक्ष—शरीर-रक्षक, ६. लोकपाल—छोटे गवर्नर के समान, ७. अनीक—सेना का रूप रखने वाले, ८ प्रकीर्णक—प्रजा के समान, ९ आभियोग्य—वाहन बनने वाले, १० किल्विषिक—छोटे देव।

व्यन्तर ज्योतिषियों में त्रायस्त्रिंश व लोकपाल यह दो पद नहीं होते हैं।

आठवीं पृथ्वी पैंतालीस (४५) लाख योजन चौड़ी अर्ध चन्द्राकार सिद्धशिला है। इस ही की सीध में तनुवातवलय के

बिल्कुल ऊपरी हिस्से में ठीक बीच में सिद्धों का स्थान है, क्योंकि जहाँ तक धर्मद्रव्य है, वहीं तक मोक्ष प्राप्त जीवों का गमन हो सकता है। पैंतालिस लाख योजन का ढाई द्वीप है। ढाई द्वीप से ही सिद्ध हुए हैं, होते हैं, व होंगे। इससे सिद्धक्षेत्र सिद्धों से परिपूर्ण भरा है।

देवों के इन्द्रियसुखों के भोगने की शक्ति अधिक है, शरीर को बदलने व अनेक रूप करलेने की शक्ति है, बहुत दूर तक जानने व जाने की शक्ति है, इस कारण जो जीव पुण्यात्मा हैं वे देवगति मे जन्म पाते हैं। जो जीव अन्यायी, हिंसक, पापी हैं, वे नर्कगति में जन्मते हैं। जिनके पाप कर्म हैं वे मध्य-लोक में पंचेन्द्रिय पशु होते हैं। जिनके पुण्य कर्म हैं, वे मनुष्य होते हैं। इस तरह यह जगत की रचना पुण्य-पाप के फल से विचित्र है। जो सर्व कर्म रहित हो जाते हैं वे सिद्ध होकर अनन्तकाल तक सिद्धक्षेत्र में तिष्ठते हैं।

पांचवें स्वर्ग के अंत में लौकान्तिक देव रहते हैं जो वैरागी होते हैं, देवी नहीं रखते। इन में सब बराबर हैं, आठ सागर की आयु होती है, तीर्थङ्कर के तप समय वैराग्य भावना भाते वक्त तीर्थंकर की स्तुति करने आते हैं। ये एक भव लेकर मोक्ष जाते हैं।

सर्व ही चार प्रकार के देवों के श्वांस लेने व आहार की इच्छा होने का हिसाब यह है कि जितने सागर की आयु होगी उतने पक्ष पीछे स्वांस लेगे व उतने हजार वर्ष पीछे भूख लगेगी। भूख लगने पर कण्ठ मे से स्वयं अमृत झर जाता है,

जिससे भूख मिट जाती है। वे बाहरी कोई पदार्थ खाते पीते नहीं हैं।

यह वर्णन श्री नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती कृत त्रिलोकसार से दिया गया है।

८९. जैनधर्म को हर एक हितेच्छु प्राणी पाल सकता है

जैनधर्म आत्मा की शुद्धि का मार्ग है, जैसा कि पूर्व में दिखाया जा चुका है। मनवाला विचारवान प्राणी, देव, नारकी, पशु या मनुष्य चाहे अमेरिका का हो या यूरोप का, एशिया का का हो या कहीं का भी हो, नीच हो या ऊंच, सब कोई इस धर्म का स्वरूप समझ कर उस पर विश्वास ला सकते हैं।

मूल बात विश्वास करने की यह है कि आत्मा शक्ति से परमात्मा है। कर्म बन्धन जड़ पदार्थ का जो संयोग है उसके मिटने पर यह आत्मा परमात्मा हो सकता है। तब अनन्तकाल तक अनन्तज्ञानी व अनन्त सुखी रहेगा।

रागद्वेष मोह से कर्म का बन्ध होता है, वीतराग भाव से कर्मबन्ध कटता है। वीतरागभाव पाने के लिये वीतराग-सर्वज्ञ, वीतराग साधु व वीतराग निर्ग्रंथ जैनधर्म की सेवा करनी उचित हैं।

संसार सुख तृप्तिकारक नहीं है, आत्मीकसुख ही सच्चा सुख है। इस श्रद्धान का पाना ही सम्यग्दर्शन (Right

Belief) है, जिसे हर कोई समझदार धारण कर सकता है। फिर वह अपने आचरण को ठीक करता है, जिसके लिये बताया जा चुका है कि उसको आठ मूल गुण पालने चाहियें।

एक ही उद्देश्य को लेकर आचार्यों ने ४-५ प्रकार से आठ मूलगुणों का वर्णन किया है। सबसे बढ़िया है—मद्य, मांस, मधु का त्याग तथा स्थूल हिंसा झूठ चोरी कुशील इन चारों का त्याग व परिग्रह का प्रमाण।

जिनसेनाचार्य जी ने मधु के स्थान मे जुए का त्याग रख दिया। पीछे के आचार्यों ने पांच पाप त्याग के स्थान में उन पांच फलों का त्याग रख दिया, जिनमे कीड़े होते हैं; जैसे बड़फल, पीपलफल, गूलर, पाकर और अन्जीर, जिससे लोग सुगमता से धारण कर सकें।

जो कोई जैनी हो उसे कम से कम दो मकार तो त्याग ही देना चाहियें—एक तो मदिरा दूसरा मांस। ये दोनों मनुष्य शरीर के बाधक हैं व अप्राकृतिक आहार हैं।

नशा पीने से शरीर व मन अपने क़ाबू मे नहीं रहते, अनेक रोग हो जाते हैं। मांस की भी किसी मानव के लिये जरूरत नहीं है। इस में शक्ति-वर्धक अन्श भी बहुत थोड़े हैं।

The Toiler and His Food by Sir William Earn Shaw Cooper C. I. E' नाम की पुस्तक में लिखा है कि जब बादाम आदि में १०० में ९१, मटर चने चावल में ८७, गेहूँ में ८६, जौ में ८४, घी में ८७, मलाई में ६९ अन्श शक्ति है, तब

मांस में २८, अन्डे में २६ अन्श है । बड़े २ प्रवीण डाक्टरों का मत है कि मनुष्य के लिये इसकी जरूरत नहीं ।

Dr. Josiah Oldfield D. C. L. M. A. M. R. C. S. R. C. P. senior physician Margaret Hospital, Bromloy कहते हैं :—

Today there is the scientific fact assured that man belongs not to the flesh-eater but to the fruit-eaters. Flesh is unnatural food & therefore tends to create functional disturbances.

भावार्थ—विज्ञान ने यह विश्वास आज दिला दिया है कि मनुष्य मांसाहारियों में नहीं, किन्तु फलाहारियों में है । मनुष्य के लिये मांस अस्वाभाविक आहार है, जिससे शरीर में बहुत उत्पात हो जाते हैं ।

विदेशों के बड़े २ लोग मांस नहीं खाते थे । यूनान के पैथोगोरस, प्लेटो, अरिष्टाटल, साक्रेटीज, पारसियो के गुरु जोरस्टर, ईसाई पादरी जेम्स, मेन्यू पेटेर । अनेक विद्वान् जैसे मिल्टन, इंजाक, न्यूटन, वेनजामिन फ्रैंकलिन, शैल्ली, एडीसन ।

अमेरिका व यूरोप में लोग दिन पर दिन मांस छोड़ते जाते हैं । कुछ लोग कहते हैं कि ठण्डे देश में मांस बिना चल नहीं सकता, सो जिनराजदास थियोसोफिस्टने ता० २ सितम्बर सन् १९१८ को सिद्ध किया है कि वे इङ्गलैंड में १२ वर्ष शाकाहार पर रहे और अमेरिका के चिकागो व कैनेडा में भी

उन्होंने जाड़े शाकाहार पर काटे हैं तथा मांसाहारियां की अपेक्षा भले प्रकार जीवन बिताया है।

जो मदिरा मांस छोड़ देगा; वह धीरे २ और भी बातों को धार लेगा। पहिले भी जैसा कहा जा चुका है कि फिर उसको निम्न छः बातो का अभ्यास करना चाहिये :—

(१) देवपूजा (२) गुरुसेवा (३) शास्त्र पढ़ना (४) इन्द्रिय दमन या संयम (५) तप या ध्यान (६) दान।

यदि किसी देश में किसी समय किसी आवश्यक को न पाल सके तो भावना भावे। जितना भी पालेगा, वैसा ही फल मिलेगा। प्रयोजन यह है कि इन कामो में प्रेम रखकर यथा शक्ति अभ्यास करे।

वास्तव मे जो राजा जैनधर्मी होगा, वह कभी अन्यायी व निर्दयी न होगा। वह अपनी प्रजा को सुखी बनाने की चेष्टा करेगा। यदि प्रजा जैनधर्मी होगी तो एक दूसरे को सता कर कोई काम न करेगी। वह सब खेती बाड़ी आदि का काम करते हुए भी परस्पर नीति व दया के व्यवहार से सुख शांति का वर्तन रख सकती है। इस लिये हर एक देशवासी को उचित है कि इस धर्म को धारण कर आत्मकल्याण करे।

❀ इति समाप्तम् ❀

अपूर्व अंग्रेज़ी ग्रन्थ

1. The Key of Knowledge 3rd. Edn.	Rs.	10 0 0
2. The Confluence of Opposites 2nd. Edn.	Rs.	2 8 0
3. The Jain Law, annotated.	Rs.	7 8 0
4. What is Jainism ?	Rs.	2 0 0
5 The Practical Dharma 2nd. Edn.	Rs.	1 8 0
6. The Sanyas Dharma.	Rs.	1 8 0
7 The House Holder's Dharma.	As.	0 12 0
8. Jain Psychology.	Rs.	1 8 0
9. Faith, Knowledge & Conduct.	Rs.	1 8 0
10. The Jain Puja (with Hindi & Sanskrit Padya)	As.	0 8 0
11. Rishabh Deo—The Founder of Jainism		4 8 0
12. " (Ordinary Binding)	Rs.	3 0 0
13. Jainism, Christianity and Science	Rs.	3 6 0
14 Jain Penance.	Rs.	2 0 0
15. Lifting of the Veil.	Rs.	3 6 0
16. " (Ordinary Binding)	Rs	2 0 0
17. Jain Logic or Nyaya.	As.	0 4 0
18. Where The Shoe Pinches.	As.	0 8 0
19. Jain Culture.	Rs.	1 0 0
20. Omniscience	As.	0 8 0
21. Christianity Rediscovered.	Rs.	1 0 0
22. Right Solution	As.	0 4 0
23. Glimpses of a Hidden Science.	Rs.	1 0 0
24. The Mystry of Revelation	Rs.	1 0 0
25. Christianity from Hindu Eyes.	Rs.	1 0 0
26. Atma Dharma	As.	0 8 0